इकाई–1 प्राकृतिक जीवन की अवधारणा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 प्राकृतिक जीवन
1.4 प्रकृति के आधार भूत तत्व–पंचतत्व
1.5 प्राकृतिक आहार–विहार
1.6 प्राकृतिक जीवन शैली से आरोग्यता की प्राप्ति
1.7.1 स्वास्थ्य स्वाभाविक है
1.7.2 प्राकृतिक जीवन से दीघार्यु की प्राप्ति
1.7 कुदरती इलाज के आश्चर्यजनक प्रभाव
1.8 प्रकृति के साहचर्य में जियें
1.8.1 प्राकृतिक सौन्दर्य
1.8.2 प्राकृतिक रूप से स्वस्थ मनुष्य की पहचान
1.8.3 प्रकृति की ओर वापसी
1.9 सारांश
1.10 शब्दावली
1.11 अभ्यास प्रश्न
1.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

आज की तेज रफतार जिन्दगी में स्वस्थ जीवन व्यतीत करना एक चुनौती बन गया है। इसमें अनुचित खान–पान, रहन–सहन की भूमिका प्रमुख है यद्यपि हम अपने दैनिक कार्यकलापों से स्वयं को स्वस्थ रख सकते हैं किन्तु स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी के अभाव में प्रायः ऐसा सम्भव नहीं हो पाता, और अज्ञान वश मनुष्य अपने स्वास्थ्य के साथ ऐसा व्यवहार भी करता है जो प्रकृति के प्रतिकूल है और ऐसे में उसका स्वास्थ्य प्रभावित होता है। स्वस्थ जीवन जीना और दीर्घ आयु प्राप्त करना कौन मनुष्य नहीं चाहता है **जीवेम शरदः शतम्** स्वास्थ्य की इसी अवधारणा को व्यक्त करता है।

1.2 उद्देश्य–

- प्राकृतिक जीवन को स्पष्ट करना।
- प्रकृति के आधार भूत तत्व (पंचतत्व) का वर्णन करना।

- प्रकृति के साहचर्य में जीवन को स्पष्ट करना।
- प्राकृतिक जीवनशैली से आरोग्यता की प्राप्ति करना।
- प्राकृतिक आहार–विहार को वर्णित करना।
- कुदरती इलाज के आश्चर्यजनक प्रभाव को स्पष्ट करना।

1.3 प्राकृतिक जीवन

मनुष्य प्रकृति की सर्वोकृष्ट कृति है। प्रकृति के नियमों के अनुसार जीवन व्यतीत करने वाला मुनष्य हमेशा स्वस्थ रहता है। कुछ लोगों का भ्रम है कि प्राकृतिक जीवन का तात्पर्य जंगली जीवन व्यतीत करना तथा कच्चे खाद्य पदार्थ का सेवन करना है। वास्तव में प्राकृतिक जीवन पद्धति एक सहज सरल सामान्य, कम खर्चीली तथा जन सामान्य के लिए उपयोगी है। प्राकृतिक चिकित्सा एक चिकित्सा पद्धति नहीं है अपितु जीवन जीने की कला है जिसे जीवन पद्धति भी कहते है। प्राकृतिक नियमानुसार जीवन को स्वस्थ बनाने के लिए निम्नलिखित बिन्दु बताये गये है–

प्रातःकालीन टहलना– वायु जीवन का आधार है। शरीर तभी स्वस्थ रह सकता है जब शरीर के सभी कोषाणु में आवश्यक वायु आपूर्ति होती रहे। प्रातःकाल की वायु सबसे लाभदायक और स्वास्थ्प्रद होती है। प्रातःकालीन वातावरण में सूर्य की अल्ट्रावायलेट किरणों में निर्मल वायु की दृष्टि से ऑक्सीजन का बाहुल्य रहता है। प्रातःकाल टहलने से व्यक्ति इस प्राणवर्धक ऑक्सीजन से सम्पर्क, पौष्टिक भोजन से भी अधिक स्वास्थ्यवर्धक है। मानव शरीर के विभिन्न अंगों की सफाई के लिए फेफड़ों को स्वच्छ और सक्रिय रखना महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। सांस लेने से वायु फेफड़ों में जाती है उससे फेफड़े प्राण तत्व को ग्रहण कर लेते है तथा जो अनावश्यक तत्व रह जाते है उसे फेफड़े बाहर निकाल देते हैं। अतः प्रातःकाल का टहलना आवश्यक है। लेकिन आज न तो किसी के पास प्रातःकाल टहलने का समय है और इसके साथ ही साथ प्रदूषित वातावरण के कारण शुद्ध वायु कम होती जा रही है ऐसी स्थिति में रोग होना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है।

उषापान (जल पीने के नियम)– प्राकृतिक नियमों के अनुसार जल पीने से शरीर की सफाई का कार्य सुचारू रूप से चलता रहता है। प्रातःकाल उठकर जल का सेवन करना शरीर तथा मन दोनों के लिए आवश्यक होता है लेकिन आज प्रातःकाल चाय पीने का प्रचलन हो गया है तथा ये प्यास बुझाने के लिए उपयोग में लायी जाने लगी है परिणाम स्वरूप अनेक प्रकार के रक्त सम्बन्धी व पाचन सम्बन्धी विकार उत्पन्न हो रहे है।

भोजन सम्बन्धी नियम– आहार स्वस्थ रहने का महत्वपूर्ण आधार है। प्राकृतिक नियम के अनुसार प्राकृतिक ताजा भोजन, सलाद, हरी सब्जियां, अंकुरित आदि है जिसके सेवन से रक्त शुद्ध तथा शक्तिवर्धक होता है। आज प्राकृतिक भोजन मसालेयुक्त कड़वे खट्टे मांसाहारी भोजन, जंकफूड की आदत बढ़ती जा रही है। यदि रोगों को दूर करना है तो शाकाहारी भोजन करना आवश्यक है। भोजन करने का एक निश्चित समय होना चाहिए तभी भोजन शरीर के लिए लाभकारी होता है। और भोजन के समय शान्त चित होकर भोजन करना चाहिए। अपितु आज सबसे अधिक शीघ्रता भोजन करने में की जाती है। जिसके कारण पाचन के लिए समुचित इन्जाइमस भोजन के साथ नहीं मिल पाते। इसी कारण आज अधिकांशता मनुष्य पेट के रोग से ग्रस्त रहते है। इसके लिए आवश्यक है कि प्राकृतिक नियम को अपनाये और रोग मुक्त हो जाये।

विश्राम के नियम–विश्राम कहते है काम के बाद आराम करना, दिनभर परिश्रम करने के बाद जब व्यक्ति शारीरिक रूप से थकान अनुभव करें तो उसे आराम करना चाहिए। शरीर की थकावट दूर होना और मस्तिष्क की शक्ति या शरीर और मन को कुछ समय के लिए विराम देना ही विश्राम कहलाता है। परन्तु आज जब हम आराम करते है उस वक्त विश्राम की मानसिक दशा को हम भूले रहते है। विस्तर शैय्या पर पड़े रहने की हालत में भी हमारे शरीर विशेषकर मस्तिष्क में तनाव बना रहता है जो मन की चंचल अवस्था के कारण होता है। यह विश्राम नहीं है, जैसे बच्चा बेफिक्री से देह, मस्तिष्क को शिथिल किये शैया पर पड़ा रहता है यही विश्राम उत्तम और सही है। परिश्रम में सोई हुई जीवनी शक्ति को पुनः अर्जित करने के लिए ही विश्राम की आवश्यकता है प्राकृतिक चिकित्सा की भाषा में इसे आरोग्य मूलक शिथिलता कहते है। लेकिन आज व्यक्ति शरीर में जब तक शक्ति रहती है तब तक विश्राम करना नहीं चाहता। मानसिक शान्ति के लिए सर्वोच्च सत्ता की याद भी नहीं करता परिणाम स्वस्थ्य सदैव अतृप्त बना रहता है।

सोने के नियम– सोना एक तरह का सूक्ष्म स्नान है जिससे मनुष्य शरीर में ताजगी या स्फूर्ति आती है और यह काम में खर्च हुई शक्ति को पुनः प्राप्ति के साधन है। प्राकृतिक नियम है रात को जल्दी सोना तथा प्रातः काल जल्दी उठना। इससे शरीर स्वस्थ रहता है। लेकिन आज देर राम तक जगना तथा प्रातःकाल देर तक सोना लोगों की आदत बनती जा रही है। जिसके कारण नींद पूरी नहीं हो पाती है और आवश्कता से कम सोने से रक्त में एल्कोहल की मात्रा बढ़ जाती है। फलस्वरूप कई बीमारियां हो जाती है।

डॉ0 नैथालीन के अनुसार– अनिद्रा पागलपन का पहला लक्षण है यदि समय रहते इसका उपचार नहीं किया जाये तो उच्च रक्तचाप, मोटापा, हृदयरोग, मधुमेह, चिड़चिड़ापन आदि हो सकते है।

सकारात्मक विचार– विचारो की शुद्धता सम्बन्धी नियम की भी आवश्कता है शरीर विज्ञान से सिद्ध कर दिया है कि शरीर को स्वस्थ रखने के लिए मनुष्य के विचारों को विधेयात्मक चिन्तन होना आवश्यक है उसे सदैव सकारात्मक मनोवृत्ति रखनी चाहिए। क्योंकि भावनाओं और विचारों में ऊर्जा होती है अपने विचारों को नयी दिशा देकर हम कार्य करे। आज व्यक्ति नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाता चला जा रहा है। दूसरे की सहायता के स्थान पर हानि पहुँचाने की अधिक सोचता है। इसके परिणाम स्वरूप उनकी अपनी विचार शैली दूषित हो जाती है। नकारात्क विचारों से चंचला बढ़ती है, और सकारात्मक विचारों से दूर होती है।

कार्य का नियम–प्राकृतिक जीवन पद्धति में प्रत्येक कार्य के समय का निर्धारण करती है। कार्य स्थल पर परस्पर प्रेम सहयोग तथा आत्मीयता का भाव रखने की सलाह देती है। व्यक्ति उसी स्थान पर ठीक प्रकार से मन लगाकर काम कर सकता है जहाँ उसकी प्रतिष्ठा हो। वातावरण शान्त हो तथा उन्नति के अवसर हो। आज इन सभी कारणों का अभाव होता चला जा रहा है। प्रत्येक क्षण व्यक्ति चिन्ता भयभीत एवं शंकालु रहता है। वह अपने कार्यों को पूरा न करने में तथा दूसरो का धोखा देने में अपनी शान समझता है।

सामाजिक तथा नैतिक व्यवहार सम्बन्धी – मनुष्य को सुख–दुःख, लाभ–हानि सभी परिस्थियों में अपने को नियन्त्रित रखना चाहिए। जहाँ तक हो सके मानव की सेवा करना अपना धर्म समझना चाहिए। अपने माता–पिता, वृद्ध, गुरू आदि का सम्मान करना चाहिए। अधिक स्वार्थी नहीं होना चाहिए। सादा जीवन उच्चविचार मे विश्वास रखना चाहिए। सच्चाई में विश्वास करना चाहिए तथा सदैव अच्छी संगति करनी चाहिए। लेकिन आज इन

नियमों का उल्लंघन हो रहा है इसी कारण वास्तव में आज संसार दुःखालय, होता जा रहा है शरीर तथा मन दोनो ही अस्वस्थ्य होते जा रहे है क्योंकि जैसी पृष्ठिभूमि होगी उसी अनुरूप परिणाम मिलेगा।

1.4 प्रकृति के आधार तत्व पंचमहाभूत

मानव शरीर की रचना पाँच तत्वों – मिट्टी, जल, वायु, अग्नि और आकाश से हुई है। इन पाँच महाभूतों का वर्णन स्थान–स्थान पर मिलता है। जैसे तुलसीकृत रामायण में लिखा है– **'छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित यह अधम शरीरा।'** अधम का तात्पर्य भौतिक अर्थात् भौतिक शरीर की रचना पाँच तत्वों से मिलकर हुई है। ये ही प्राकृतिक उपचार के साधन हैं। इनमें से चार तत्व, पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि भोजन की श्रेणी में आते है। और पाँचवा तत्व आकाश उपवास के द्वारा प्राप्त किया जाता है। शरीर की रचना में प्रमुख तत्व आकाश है, और इसकी महत्वपूर्ण भूमिका जीवनी शक्ति की वृद्धि करने में देखी जा सकती है। प्राचीन भारतीय धर्मग्रन्थों एवं शास्त्रों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है। मिट्टी, जल और वायु अग्नि तत्व शरीर निर्माण में प्रत्यक्ष परिलक्षित होते है। जबकि अति उपयोगी एवं प्रभावकारी आकाश तत्व अप्रत्यक्ष रूप से शरीर को निर्मल, शुद्ध एवं दीर्घजीवी बनता है। जब तक इन पाँचों तत्वों का समुचित संतुलन बना रहता है। जब तक इन पाँच तत्वो का समुचित संतुलन बना रहता है तब तक व्यक्ति निरोगी रहता हैं यहॉ पर इन पॉच महाभूतों का वर्णन प्रथक–प्रथक कर रहे हैं।

पृथ्वी– मानव का निर्माण इसी से होता है, इसीलिए पृथ्वी को माता कहते हैं। इसका सम्बन्ध जल, वायु, अग्नि तथा आकाश से हैं। मानव के जीवन के लिए समस्त खाद्य पदार्थ चाहे अनाज हो या विविध प्रकार की फल–सब्जी अथवा पशुओं द्वारा दिया गया दूध, दही–मक्खन आदि सब इसी की देन है। मिट्टी और मानव का सम्बन्ध शाश्वत है और यही कारण है कि मिट्टी जीवन के लिए अनिवार्य है। इसमें अनेकानेक गुण विद्यामान है। दुर्गन्ध मिटाने के लिए मिट्टी अति उत्तम वस्तु है। मिट्टी में सर्दी और गरमी रोकने की असीमित शक्ति होती है। विलक्षण विद्रावक क्षमता के कारण बडे से बड़े फोडे पर मिट्टी रखने से वह उसे पका देती है, बहा देती है तथा घाव को भर भी देती है। मिट्टी में विषादि को शोषण करने की क्षमता होती है। इसमें रोगों को दूर करने की क्षमता होती है, क्योंकि मिट्टी में संसार के सभी वस्तुये, रसायनिक मिश्रण मिले होते हैं, जबकि किसी भी दवाओं के मिक्सचर में उतने रसायनिक नहीं हो सकते हैं ।

जल– जल सभी प्राणियों का आधार है। यह सभी– प्राणियों की अमूल्य औषधि है। प्रत्येक जीव जन्तु तथा प्रत्येक वनस्पति में जल की पर्याप्त मात्रा विद्यमान होती है। क्योंकि कोई भी शारीरिक क्रिया चाहे वह भोजन पाचन की हो, रक्त संचार की हो, इस दृव्य के बिना सम्भव नहीं हो सकती है। यह संसार का अनिवार्य तत्व है, जिसमें असीम शक्ति निहित है और जिसका उपयोग मानव विभिन्न प्रकार से करता चला आ रहा है। चिकित्सा के रूप में भी जल का उपयोग सृष्टि के प्रारम्भ से ही होता आया है। व्यक्ति यदि शुद्ध जल का समुचित और संतुलित उपयोग करता रहे, तो वह पूर्ण शक्ति, स्फूर्ति एवं स्वास्थ्य का उपयोंग करते हुये दीर्घजीवी और निरोगी रह सकता है।

अग्नि– अग्नि का तात्पर्य उष्मा या सूर्य से है, और जिसके अभाव में जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। सूर्य की उपासना का तात्पर्य यही रहा होगा। क्योंकि सृष्टि के

सभी पदार्थ सूर्य–रश्मि के विभिन्न प्रकार के संयोग से ही उत्पन्न होते है। इसमें स्वास्थ्यवर्धक शक्ति होती है। कहा जाता है कि जहाँ सूर्य प्रकाश का प्रवेश नहीं होता है, वहाँ डाक्टर का प्रवेश होता है। इस कहावत में तथ्य है क्योंकि रोग के कीटाणु अंधकार में ही बढ़ते हैं, प्रकाश उनके लिए काल है। सूर्य प्रकाश से शरीर में प्राण का संचार होता है। विभिन्न रोगों में सूर्य किरण और रंगीन रश्मि चिकित्सा बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई है।

वायु– वायु प्राणों का सबसे मूल आधार है। इसके बिना व्यक्ति कुछ मिनट ही जीवित रह सकता है। अतः अन्न जल शुद्धि की अपेक्षा प्राणदायक वायु की शुद्धि अधिक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है। वायु की सहायता से फेफड़े रक्त को शुद्ध कर देते हैं। इसका उपचार कार्य में भी उपयोग करते हैं। बीमारी को दूर करने के लिए वायु स्नानों तथा मंत्रों द्वारा ठंढी गरम हवा की शरीर पर फेंक कर उपचार कार्य किया जाता है। प्रातः भ्रमण, सायं–भ्रमण, वायु स्नान के ये दो रूप बहुत लाभकारी है।

आकाश–आकाश तत्व पाँचवाँ, परन्तु प्रधान तत्व होता है। आकाश का अर्थ है खालीपन अथवा शून्य। जिस प्रकार मछली पानी में और पानी मछली में होता है, उसी प्रकार मानव आकाश में और आकाश मानव में होता है। मानव शरीर के अंदर खाली जगह के रूप में आकाश का निर्माण किया है। शरीर के भीतर असंख्य जीवित कोष हैं, जो गतिमान है। रक्त संचार तथा वायु संचार के लिए शरीर में रिक्त स्थान अर्थात् आकाश की आवश्यकता होती है। इसी कारण उपवास का महत्व सभी धर्मों में बताया गया है। क्योंकि उपवास से आकाश तत्व की प्राप्ति होती है।

मानव रोगों के उपचार के लिए यह जान लेना आवश्यक होता है, कि शरीर के किस अंग में कौन सा पंच तत्व अधिक प्रभावकारी है। यदि इसकी जानकारी प्राकृतिक चिकित्सक को होती है, तो वह उपचार योजना बनाने में शत–प्रतिशत सफल होगा।

1.5 प्राकृतिक आहार –विहार

शारीरिक स्वास्थ्य रक्षा के लिए सब से महत्वपूर्ण और आवश्यक आहार है। आहार ही जीवन का आधार है। प्राकृतिक आहार ही मनुष्य शरीर यंत्र के लिए सर्वोत्तम है। जब तक मनुष्य प्राकृतिक आहार को नहीं अपनाता उसका निरोग रहना असम्भ्व है। फल, दूध, तरकारिया, अनाज मनुष्य के प्राकृतिक आहार है।

आहार और स्वास्थ्य– स्वास्थ्य पर ही जीवन निर्भर है। किसी यंत्र के लिए जिस प्रकार पेट्रोल की आवश्यकता होती है उसी प्रकार मानव शरीर यंत्र के स्वास्थ्य की सुदृढ़ता और दीर्घ आयु के लिए यह आवश्यक है कि क्या खायें और क्या न खाये और आहार कैसा हो । यदि आहार उत्तम हो तो मनुष्य किसी भी रोग से ग्रस्त नहीं हो सकता और उसकी शक्ति बुढ़ापे तक स्थिर रह सकती है। दांत और आंखों की रोशनी (शक्ति) अन्तिम श्वास तक ठीक रह सकती है। मानव शरीर पर आहार का बहुत प्रभाव पड़ता हे।

डॉ0 ई राट जर्मनी के अनुसार कि सौ प्रतिशत में से 99.9 प्रतिशत रोग आहार खराब से उत्पन्न होते है यदि अपने स्वास्थ्य को रोग से सुरक्षित रखना चाहते है और लम्बी आयु के इच्छुक है तो प्राकृतिक आहार और सन्तुलित आहार को ग्रहण करना चाहिए।

भोजन का उद्देश्य भूख को शान्त करना या जिह्वा की परितृप्ति नहीं है बल्कि इसका उद्देश्य शरीर पोषण के साथ–साथ मानसिक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य में भी वृद्धि हो, क्योंकि शरीर, मन और आत्मा तीनों ही स्वास्थ्य के प्रमुख स्तम्भ हैं। जब तक तीनों

स्वस्थ नहीं होंगे, तब तक पूर्ण स्वास्थ्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। भारतीय शास्त्रों में भोजन को तीन भागों में विभक्त किया गया है। सात्विक, राजसिक और तामसिक। जो शारीरिक मानसिक तथा आध्यात्मिक रूप से अच्छा स्वास्थ्य चाहते है उन्हें सात्विक आहार करना चाहिए। जिनका उद्देश्य शारीरिक व मानसिक दोनों प्रकार से स्वस्थ रखना हो तो राजसिक भोजन करें। आहार शुद्ध होने पर मन की शुद्धि होती है व्यक्ति को अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण रहता है तथा एकाग्रता आती है। शरीर के लिए हितकर भोजन वह है जो शरीर को बल देने वाला हो, क्षय का निवारण करने वाला हो,उचित ताप पैदा करने वाला हो सुपाच्य हो अनुत्तेजक हो तथा स्मरण शक्ति आयु, सत्व, साहस, दया, सहयोग आदि बढ़ाने वाला हो ।

आहार चिकित्सा–आहार प्रत्येक प्राणी का जीवन है तथा आहार का सीधा सम्बंध उसके शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ से होता है । प्रत्येक भोजन में भिन्न –भिन्न पोषक तत्व उपस्थित होते है तथा प्रत्येक पोषक तत्व शारीर में अलग अलग रूप से कार्य करता है । यदि प्रत्येक व्यक्ति कुछ पोषक तत्वो को कम या इसके विपरीत कुछ पोषक तत्वो को अधिक परिणाम में लेने लगे तो भी शरीर के उपर उसका विपरीत प्रभाव दिखाई देने लगता है। अतः उपयुक्त पोषक तत्वो को उचित परिणाम भोजन द्वारा ग्रहण करना पूर्ण रूप से स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक है । इन आहारो को साधाारणः तीन भागों में बांटा गया है।

- **शुद्धिकरण आहार–**यह आहार है जो रस नीबू खाए, रस कच्चा नारियल पानी, सब्जियों के सूप छाछ आदि।
- **शान्तिकारण आहार–**फज, सलाद, उबली भाप में बनायी गयी सब्जियां, अंकुरित अन्न सब्जियों की चटनी आदि।
- **पुष्टिकारक आहार–**सम्पूर्ण आटा बिना पालिश किया हुआ, चावल कम दालें, अंकुरित अन्न, दही आदि। यह आहार क्षारीय होने के कारण स्वस्थ शरीर का शुद्धिकरण, रोग मुक्त करने तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में सहायक होते है। आवश्यकत है आहार का आपस में मेल हो। स्वस्थ रहने के लिए हमारा भोजन 20 प्रतिशत अम्लीय और 80 प्रतिशत क्षारीय अवश्य होना आवश्यक है। इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा में आहार को मूलभूत औषधि माना गया है।

प्राकृतिक आहार एवं दिनचर्या– स्वास्थ्य के लिए आहार का प्रथम स्थान है क्योंकि लिया गया आहार सप्त धातुओं (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा एवं वीर्य) में परिवर्तत होकर शरीर का पोषण, शक्ति क्षतिपूर्ति करता है। आहार से शरीर बनता है और स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन निवास होता है। ''जैसा खाओ अन्न वैसा बने मन''। गीता में तीन प्रकार के आहारों का वर्णन किया गया है सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी।

सात्विक आहार–आयु, उत्साह, बल आरोग्य, सुख, प्रीति बढ़ाने वाले रसदार चिलने चिरस्थायी सात्विक आहार है।

राजसिक आहार–कड़वे, खट्टे, नमकीन, अति गर्म, नीक्ष्ण, रूखे रजोगुणी आहार है तथा दुःख व शोक प्रदान करने वाले है।

तामसिक आहार–बासी, नीरस, अति गरम, तीक्ष्ण तमोगुणी आहार है। उपर्युक्त आहार में जीवन तत्व को धारण करने की क्षमता है इसलिए आहार में सर्वात्तम आहार सर्वोत्तम आहार का प्रयोग उपयोगी है। यदि आहार में कोई मूलभूत परिवर्तन न किया जाये तथा प्रकृति ने पदार्थ को जिस रूप में दिया है उसको न बिगाड़ कर प्रयोग करे तो यह हमारा प्राकृतिक

आहार होगा। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए पूर्णायु तक जीवन यापन के लिये तीन प्रमुख नियमो का पालन करना आवश्यक है क्योकि ये शरीर अथवा जीवन के तीन उपस्तम्भ है– आहार, निद्रा, ब्रह्मचर्य ।

निद्रा–जब इन्द्रिया एवं मन थक जाये तब इन्द्रियों को उनके विषय से हटाने पर स्वाभाविक निद्रा आती है। यथा समय निद्रा पुष्टि, बल, अवसाद, अग्नि प्रदीप्त चेतनता और धातुसम्य करती है। भोजन के उपरान्त वायु पित्त व कफ को हरती है नींद न आने से भी अंगो में दर्द, सिरभारी, जमहाई और शरीर में जड़ता पैदा होती है ।

ब्रह्मचर्य– ब्रह्मचर्य मनुष्य को चरित्रक एवं नैतिक रूप से उन्नत करता है। शरीर की इन्द्रियों के सिर्फ भौतिक सुख के लिए अपने विषयों में लिप्त करना ब्रह्मचर्य के तोड़ना है। ब्रह्मचर्य बनाये रखने के लिए भोजन से तीक्ष्ण और अम्ल पदार्थों का सेवन बंद कर देना चाहिए। उचित रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करने से धर्म, यश एवं आयु की वृद्धि होती है।

दिनचर्या– प्रत्येक मनुष्य को ब्रह्ममुहूर्त में उठकर धर्म और अर्थ का चिन्तन करना तथा शरीर के रोग उनके कारणों का विचार करना तथा वेद के रहस्यों का भी चिन्तन करना चाहिए। प्रातः ब्रहामुहूर्त में बिस्तर अवश्य छोड़ देना चाहिए। चौबीस घंटो में ब्रहामुहूर्त ही सर्वश्रेष्ठ है। मानव जीवन बडें भाग्य से प्राप्त होता है। शारीरिक स्वास्थ्य मन बुद्धि आत्मा सभी की दृष्टि से ब्रहामुहूर्त में उठना चाहिए। इस समय प्रकृति मुक्त हस्त से स्वास्थ्य प्रसन्नता मेंधा बुद्धि की वर्षा करती है । दिनचर्या के पालनीय नियम आत्मबोध की साधना, पृथ्वी मॉ को नमस्कार, मल त्याग, दंत धावन मालिस, व्यायाम, प्रातः भ्रमण, वस्त्र धारण, स्वाध्याय भोजन आदि। रात्रि के भोजन के पचने के बाद ब्रह्ममहूर्त में उठकर वेगो को त्यागने वाले का शरीर तो निर्मल बनता है तथा वह दीघार्यु भी होता है। शरीर से मलों को त्यागने के बाद अपने बल की मर्यादा में रहकर जो व्यक्ति उचित योगासन, व्यायाम करता है उससे उसकी शक्ति में वृद्धि व चेहरे पर क्रान्ति आ जाती है। यदि उचित प्रकार से किया गया व्यायाम गुणहीन व्यक्ति के व्यक्तित्व में निखार ला देता है। अत्याधिक व्यायाम करने से क्षय अधिक प्यास, अरूचि वमन, रक्तपित्त, चक्कर, सुस्ती, ज्वर खासी एवं श्वास कष्टो से पीड़ित होता है इसलिए व्यायाम करना चाहिए।

प्राकृतिक आहारों के स्वास्थ्य प्रद गुण– प्राकृतिक आहार स्वास्थ्य को ठीक रखते है। यदि स्वास्थ बिगड़ जाये तो प्रकृति के आहार सर्वोत्तम औषधि का काम करती है। इन में विभिन्न प्रकार के नमक और विटामिन पाये जाते है जो रोगों को दूर करते है और विकृत तत्व के शरीर से बाहर निकालते है। प्राकृतिक आहार दो श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते है। एक विकृत तत्व को विहर्गत करने वाले और दूसरे शरीर की शक्ति को कायम रखने वाली तरकारियाँ और फल शरीर से विकृत तत्व को दूर करने में सर्वश्रेष्ठ आहार है । इन से दूसरे दर्जे पर दूध ऐसा प्राकृतिक आहार है जो शरीर को विकृत तत्व से शुद्ध करता है और शक्ति देता है। अनाज या बीज शरीर से विकृत तत्व को बाहर निकालने के गुण नहीं रखते। ये शरीर को बलवान और सुदृढ़ बनाते है। इसलिये रोगों को दूर करने के लिये अनाज और बीज के लिये कोई स्थान नहीं। सब्जी और फलों में से सब्जियाँ को सबसे अधिक महत्व प्राप्त है। दूसरा दर्जा फलों को और तीसरा दूध को प्राप्त हैं। तरकारियाँ प्रकृति की सर्वोत्तम औषधि है। इन में कीटाणुओं को दूर करने वाले तत्व रक्त को शुद्ध करने वाले गुण तथा विटामिन प्रचुर मात्राा में पाये जाते है। जो प्रत्येक प्रकार के रोगों के निवारण की क्षमता रखते है।

प्राकृतिक विहार—प्राकृतिक आहार—विहार का हमारे जीवन में विशेष महत्व है। स्वास्थ्य और सुख की लालसा मानव में स्वाभाविक है परन्तु आधुनिक जीवन की आपाधापी तथा खान—पान, आहार—विहार एवं परिश्रम आदि आवश्यक क्रियाओं में प्रकृति के साधारण नियमों का निरन्तर दीर्घाकलीन उल्लंघन करने से शरीर रोगी हो जाता है। प्राकृतिक चिकितसा के नियमों को अपनाकर ही हमें अपने आपके स्वस्थ और निरोग रख सकते है। इसके लिए हमें प्राकृतिक आहार विहार का पालन करना चाहिए जो निम्नलिखित है—विहार का अभिप्राय है हमारा रहन—सहन, खान—पान, टहलना, घूमना—फिरना, बैढ़ना आदि।

- प्रतिदिन सूर्योदय से पूर्व ही बिस्तर छोड़ देना चाहिए। सुबह के समय सोकर उठते समय बायीं ओर करवट उठना चाहिए। इससे स्वास्थ्य ढीक रहता है।
- सुबह के समय खाली पेट चाय पीना बहुत हानिकारक होता है। तांबे के बर्तन में रखा हुआ पानी चार गिलास की मात्रा में सुबह के समय शौच करने से पूर्व पीने से कब्ज, बवासीर, तथा कफ से होने वाले रोग नहीं होते है तथा बहुत से रोगों से छुटकारा मिल जाता है।
- सूर्य की ओर मुख करके मलमूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से चर्मरोग हो जाते है।
- सप्ताह मे एक बार पूरे शरीर में तैल की मालिश अवश्य करनी चाहिए।
- सुबह के समय टहलने से हमारा शरीर चुस्त और दुस्त बना रहता है।
- अपने मन में सकारात्मक विचारों को लाना चाहिए। इससे मानसिक तनाव नहीं होता हे। जिससे हमें मानसिक शक्ति मिलती है और मन प्रसन्न रहता है। हमें अपने मन में निराशा को स्थान नहीं देना चाहिए। तथा हमेशा आशावान बने रहना चाहिए क्योंकि आशावान व्यक्ति ही इच्छित वस्तु को प्राप्त करता है। प्राकृतिक दिनचर्या और आहार विहार को अपनाने से स्वस्थ जीवन आरोग्यता और दीघार्यु की प्राप्ति निश्चित होती है।

1.6 प्राकृतिक जीवन शैली से आरोग्यता की प्राप्ति

मनुष्य प्रकृति का एक हिस्सा है और प्राकृतिक जीवन जीने वाला मनुष्य स्वस्थ निरोगी जीवन एवं दीर्घायु प्राप्त करता है। परन्तु आज हम प्रकृति से दूर होते जा रहे है और हम प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करते है। प्रकृति के नियमों का उल्लघंन एवं अवहेलना ही समस्त बीमरियों का मूल कारण है। य खान, पान, कार्य तथा विश्राम, सॉस लेने—छोड़ने, सोने जागने या वैचारिक सम्बन्धी किसी भी असन्तुलन के कारण हो सकता है। अतः रोगो का प्रमुख कारण आप्राकृतिक जीवन शैली है। जब तक मनुष्य अपनी पूर्व अभ्यस्त जीवनचर्या को बदलेगा नही तब तक उसका रोग मुक्त होना सम्भव नहीं इसके लिए आवश्यक है कि वह प्राकृतिक जीवन शैली को अपनाएं जैसे प्रातःकाल उठना, अंकुरित भोजन, व्यायाम, सन्तुलित एवं प्राकृतिक आहार, पूर्ण निद्रा, समय का पालन आदि महत्वपूर्ण साधन है जिनके स्वास्थ्य एवं आरोग्यता की प्राप्ति हो सकती है।

1.6.1 स्वास्थ्य स्वाभाविक है—

स्वस्थ रहना मनुष्य का स्वाभाविक अधिकार है। ईश्वर ने हर मनुष्य को ऐसे साधन देकर भेजा है कि वह निरोग और स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सके। परन्तु मनुष्य ने आप्राकृतिक जीवन को अपनाकर अपने आप को कमजोर और रोगी बना लिया है। स्वाभाविक स्वास्थ्य आज दुर्लभ हो गया है। प्राकृतिक नियमों के अनुकूल आचरण, या जीवन व्यतीत किया

जाए तो मनुष्य हमेशा स्वस्थ रहता है। यदि देखा जाए तो सृष्टि के समस्त जीव जन्तुओं में मनुष्य को छोड़कर सभी प्राणी प्राकृतिक जीवन जीते एवं स्वस्थ और निरोग रहते है।यदि प्रकृति के नियमों का अतिक्रमण न करें प्रकृति के नियमों का पालन ईमानदारी से किया जाये तो स्वाभाविक रूप से अपनी पूरी आयु प्राप्त की जा सकती है।

स्वामी षिवानन्द जी कहते है कि–प्रकृति का स्वभाव अत्यन्त कठोर और दयालु है वह अत्यन्त न्यायप्रिय है न्याय में क्षमा करना नहीं जानती। जो प्रकृति के नियम तोड़कर अस्वाभाविक जीवन व्यतीत करते है वह साहसी प्रतीत होते है दण्ड में भी प्रकृति हमें सुधारने का काम करती है।

1.6.2 प्राकृतिक जीवन से दीर्घायु की प्राप्ति– आजकल प्रत्येक प्राणी चिन्ताओं और तनाओं से घिरा हुआ है इन दोनों प्रमुख पाटों के बीच पिसता हुआ चला जा रहा है शारीरिक या मानसिक भोग–विलास के प्रसाधनों में इतनी विपुलता हो गयी है कि सामान्य मानव मानसिक शक्ति और शारीरिक स्वास्थ्य से दिनो दिन विमुख और वंचित होता जा रहा है। घृणा, भय और ईर्ष्या ये सभी रोगों के जनक है। इनसे बचने के लिए हमें प्रकृति की शरण लेनी चाहिए प्रकृति के बनाये नियमों का पालन करने से प्रत्येक प्राणी हमेशा स्वस्थ और दीर्घायु रह सकता है इसलिए प्राकृतिक जीवन जीने की कला सीखनी चाहिए ।

प्रकृति के नियम पालन करने से रोगी व्यक्ति पुनः स्वास्थ्य और आरोग्य प्राप्त कर सकता है। दुबले–पतले जर्जरित शरीर पुनः हष्ट पुष्ट और सशक्त बन सकता है। जो कार्य पौष्टिक दवाईयाँ भी नहीं कर सकती है वह प्रकृति के नियमानुसार रहने से अनायास ही प्राप्त हो सकता है। यदि प्राकृतिक जीवन अपनाया जाय तो सौ वर्ष तक जीवित रहना कोई बड़ी बात नहीं। हमारे ऋषि–मुनियों ने इसी प्रकृति के सानिध्य में रहते हुए दीर्घ जीवन को प्राप्त किया। भारत वर्ष में एक सौ चालीस वर्ष की आयु तक कई व्यक्ति जीते हैं यदि स्वाभाविक रीति से हम जीते चले और प्रकृति के नियमों का पालन करते चले तो आयु क्षीण– न होगी। दीर्घायु प्राप्त करने की लिए प्राकृतिक नियमों का पालन अत्यन्त आवश्यक है।

1.7 कुदरती इलाज का आश्चर्यजनक प्रभाव

संसार में मनुष्य की उत्पत्ति में प्रकृति के विशेष नियम या दैवी–विधान का प्रभाव स्पष्ट रूप से पाया जाता है। जो व्यक्ति इन नियमों और सिद्धान्तों को समझ कर अपना रहन–सहन तदुनुकूल रखते है वे सदैव स्वास्थ्य युक्त और सुखी जीवन व्यतीत करते है। अस्वस्थता तथा रोग हमारे अनियमित अथवा विपरीत रहन–सहन के ही परिणाम होते है। अप्राकृतिक अथवा अति मात्रा में किए गये आहार विहार के परिणाम से शरीर में मल की वृद्धि होने लगती है। विषाक्त विजातीय दृव्य उत्पन्न होकर विभिन्न अवयवों में जमा होने लगते हैं रक्त संचार में बांधा पड़कर मल का बाहर निकलना कम होने लगता है और अन्त में जल यह विजातीय दृव्य शरीर की सहन शक्ति से अधिक बढ़ जाता है तो वह ज्वर, दस्त, खाँसी आदि रोग उत्पन्न कर देता है। पर ये रोग भी आरम्भिक दशा में मनुष्य इस बात के रहस्य को न समझकर दुर्घटना के समान मानकर उसे दवा या अन्य आप्राकृतिक उपायों से मिटाने की कोशिश करते है जिसका परिणाम और भी बुरा होता है तथा सरल रोग जटिल रोग का रूप धारण कर लेता है। ऐसी स्थिति में जो व्यक्ति अपना जीवन सुख और शान्ति से व्यतीत करने की अभिलाषा रखते है तो प्रथम प्रकृति के अनुसार अपना खान–पान रखे और अनजाने में या लापरवाही से प्रकृति विरूद्ध चलकर शरीर में विजातीय दृव्य और रोग

के उत्पन्न कर लिया तब भी फिर पीछे की तरफ लौटे अर्थात् अप्राकृतिक आदतों और कार्यों को त्याग कर शुद्ध प्राकृतिक मार्ग पर चलना आरम्भ करें ।

यह बात तो सभी जानते है कि हमारा शरीर प्रकृति के पंचतत्वों आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी से मिलकर बना हैं इन्हीं के द्वारा हमारे देखते–देखते हाथ भर के बालक से बढकर साढ़े तीन हाथ का युवक बन जाता है इसलिए सम्बन्ध रखने वाली की भी समानता उत्पन्न हो भी आवश्यकता आन पड़े तो उसके लिए पंचतत्वों की सहायता लेनी चाहिए। इन तत्व का परिणाम और क्रम ढीक रहने से ही स्वस्थ अवस्था कायम रहती है। और इनमें गडबड़ी हो जाने से परिणाम घट बढ़ जाने से रोग पैदा हो जाता है। जब हम जान जाते है कि अमुक रोग अमुक तत्व के कमी या अधिकता से पैदा हुआ है तो उसी तत्व का प्रयोग करके रोग से सहजता पूर्वक बचा सकता है ।कुदरती हलाज के मूल तत्व पंचमहाभूत है इनमें सबसे आवश्यक तत्व वायु है उसके बिना जीवन का एक क्षण भी अस्तित्व नहीं। वायु जीवन है। अग्नि तत्व शरीर को शक्ति पहुँचा है। जल से रक्त संचालन का कार्य ठीक प्रकार चलता है। जिससे मनुष्य स्वस्थ्य और दीर्घ जीवन व्यतीत करता है ।

1.8 प्रकृति के साहचर्य में जियें

प्रकृति के विशाल प्रांगण में नाना प्रकार के जीव–जन्तु जलचर, थलचर और नभचर है। प्रत्येक का शरीर जटिलताओं से परिपूर्ण है। उसमें अपनी–अपनी विशेषतायें और योग्यताएँ है, जिनके बल पर वे पुष्पित एवं फलित होते है, यौवन और बुढ़ापा पाते है जीवन का पूर्ण सुख प्राप्त करते है। प्रकृति में हर प्रकार की प्रचुरता है। आनन्द स्वास्थ्य आरोग्य की इतनी अधिकता है कि उसकी कोई सीमा बंधन नही कर सकते। स्वास्थ्य की उस अधिकता के कारण ही प्रकृति के अनेक पशु–पक्षी, जीव–जन्तु जीवन का आनन्द लेते है जल, वायु, प्रकाश भोजन से जीवन तत्व खींचकर के दीर्घ जीवन के सुख को प्राप्त करते है । प्रकृति के कण–कण में फल–फूल पेड–पौधे तथा जल के प्रत्येक बूंद में आरोग्य भरा हुआ है वायु के प्रत्येक अंश को जिसे हम अन्दर खीचते है, जल के प्रत्येक घूंट में जिसे हम पीते है फल और तरकारियों के कण –कण में स्वास्थ और बल हमारे लिए संचित है। प्रकृति के पास जीवन को सर्वांगरूप से स्वस्थ रखने के लिए सभी उपकरण है।

प्रकृति में किसी भी लक्ष्य की पूर्ति के लिए सभी साधन विद्यमान है। बाह्य उपचार की आवश्कता नहीं है उसके लिए सभी उपकरण एकत्रित कर सकते है। तरह–तरह की जड़ी–बूटियाँ एवं पौष्टिक पदार्थ है। मिट्टी से लेकर धूप, जल, वायु, सूर्य की किरणें इत्यादि में यह शक्ति है कि वे हमारे शरीर को सबल और स्वस्थ बना सके।

स्वास्थ्य से पवित्र विचार आते है, मन प्रसन्नता से परिपूर्ण रहता है कार्य करने में मन लगता है, आलस्य, उदासी नहीं सताती है। इस प्रकार प्रकृति की छत्रछाया में रहकर ऋषियों ने बड़ी बारीकी से खोजे की । अपने प्राचीनतम वेद पुराणों के माध्यम से ज्ञान–विज्ञान की धारा को सम्पूर्ण विश्व तक पहुँचाया। परन्तु आज की भौतिकता ने हमारी जीवन शैली को काफी प्रभावित किया है। जिसके कारण हम प्रकृति से काफी दूर चले गये है आप्राकृतिक चीजो से लगाव बढ़ रहा है जिसके दुष्प्रभावों में हम इतने जकड़ गये है। लौटने में कठिनाई महसूस कर रहे है। नित नई । बीमारियों के मकड़जाल में फंसते ही जा रहे है। अतः हमें प्रकृति के सानिध्य में रहना चाहिए।

1.8.1 प्राकृतिक सौन्दर्य– प्रकृति में वास्तविक सौन्दर्य है । आज कल के फैशन के भार से युक्त पुरूष या स्त्री को लोग सुन्दर समझते है उसकी प्रशंसा करते नहीं थकते। यह भ्रम है वास्तविक सौन्दर्य तो पूर्ण रूप से विकसित, परिपुष्ट और स्वस्थ शरीर में है। इसके लिए प्रकृति के नियमों का पालन करना, व्यायाम, प्राकृतिक भोजन के द्वारा शरीर को संतुलित रूप में विकसित किया जा सकता है एवं शक्ति अर्जन की जा सकती है और तभी हम सुन्दर बन सकेंगे क्योंकि प्रकृति में वास्तविक सौन्दर्य विद्यमान है।

1.8.2 प्राकृतिक रूप से स्वस्थ मनुष्य की पहचान– प्रकृति ने मनुष्य को विश्व का सबसे सुन्दर शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक शक्तियों से सम्पन्न स्वस्थ, सशक्त, सुडौल, दीर्घ जीवी प्राणी बनाया है। आरोग्य और उत्तम स्वास्थ्य का मार्ग उसने बड़ा सरल और सीधा बताया है। जिसे मनुष्य तो क्या अल्प बुद्धि पशु पक्षी भी उसे भली भॉति समझ सकते है।

शारीरिक अवस्था–स्वस्थ मनुष्य का आधार संतुलित होना चाहिए। शरीर की मशीन का प्रत्येक कल पुर्जा ढीक से काम करता हो। ललाट, नेत्र, चमकदार रक्त की लालिमा हो, सिकुड़न का नाम न हो, पांव व जांघ मजबूत और शरीर का भार वहन कर सकने वाली हो। शरीर श्रम व मौसम के परिवर्तनों को सम्हाल सके, रोग से लड़ सके, अमाशय अपना कार्य उचित ढंग से करता है।

आन्तरिक अवस्था–पाचन क्रिया अपना कार्य करे, शुद्ध लाल खून निर्मित हो, और शरीर से मल विसर्जन कार्य अपनी स्वाभाविक गति से होता रहे। जो भोजन खाया जाय वह शरीर को परिपुष्ट एवं स्वस्थ रखे। अपच या दस्त से न निकल जायें। कभी अपच, कभी कब्ज, पेट दर्द इत्यादि न हो। खाया हुआ भोजन चार पांच घण्टे में पच जाय। खाना खाते समय रूचि एवं स्वाद स्वास्थ्य के सूचक है। भोजन के उपरान्त आलस्य या नींद नहीं आनी चाहिए। चटपटी चीजों पर मन न चले साधारण भोजन में ही मजा आये।

हृदय तथा फेफड़े–शरीर के दो महत्वपूर्ण अंग हृदय तथा फेफड़े है। स्वस्थ मनुष्य में ये दोनो ही बड़े अनिवार्य है। तेज भागने में आप हाफ जाये, नासिका में से श्वसन न लेने लगे यह स्वस्थ फेफड़े की पहचान है, सुसुप्तावस्था में मुंह से श्वास लेने की आदत कमजोर फेफडे की निशानी है। स्वस्थ फेफड़े बाहर से स्वच्छ वायु अन्दर लेकर रक्त की सफाई से सहायता करते है और अशुद्ध वायु को बाहर निकाल देते है। हृदय दूषित रक्त की सफाई निरन्तर किया करता है। स्वस्थ फेफड़े और मजबूत हृदय मनुष्य को परिश्रमी और स्वस्थ बनाते है। युवकों में हृदय की गति प्रति मिनट 72 होनी चाहिए।

मल–विसर्जन कार्य– शरीर में जो कूड़ा करकट गंदगी एकत्रित होती रहती है, उसे निकालने के लिए प्रकृति ने कई द्वार बना रखें है। मलमार्ग, मूत्रमार्ग, यकृत, त्वचा, फेफड़े के अतिरिक्त, हमारे नेत्र और कान भी स्वास्थ्य के शत्रु, शरीर के अंग प्रत्यंगों में उत्पन्न हुए विकारों को निकाला करते है। जब तक हमारे शरीर के ये विकार स्वाभाविक गति से स्वयं बाहर न निकलते रहे, तब तक हम अपनी मल–विसर्जन इन्द्रियों को स्वस्थ नहीं कह सकते हैं।

यदि मल विसर्जन कार्य में किसी भी प्रकार पीड़ा होती है, तो आप स्वस्थ नहीं है। यदि मल या मूत्र के साथ रक्त आता है, तो उसके दो कारण हो सकते है– 1. या तो शरीर के उस भाग में कुछ चोट, घाव या सूजन आ गई है, अथवा 2. आन्तरिक रूप से कुछ विकार हो गया है। मलमूत्र करने के पश्चात् एक प्रकार से शान्ति होनी चाहिए। यदि रक्त या पीब आवे, मल मार्ग से कीडे आवे तो आन्तरिक विकारों के सूचक है। मूत्र

विसर्जन से यदि गर्मी या जलन हो, रक्त या पीब आवें पेशाब गाढ़ा लसदार हो वीर्य आवे, तो शरीर को रोगी समझना चाहिए।

मानसिक स्थिति–स्वस्थ मनुष्य मधुर, तृप्त और उत्साही होता है। चिन्ताएं उसे नहीं सताती, चिडचिड़ापन, क्रोध, उतावलापन, उदासी, निरूत्साह, ये सब शरीर में संचित नाना प्रकार के विकारों के घोतक है। अशान्त चित्त, अशुद्ध विचारों से मुक्त मन, अतृप्त काम वासना से भरा हुआ अन्तःकरण मानसिक विक्षुब्धता के प्रतीक है । अहंकार एक प्रकार की मानसिक बीमारी है। चिन्ता की व्यग्रता, अतृप्त वासनाएं, विह्न बाधाओं से मिथ्या डर, कुत्सित कल्पनाएं, कायरता आदि सब गिरे हुआ स्वास्थ्य की निशानी है। इसके विपरीत निर्बल शरीर में भव बाधा, भूत प्रेत, के भय, विकार, काम–वासनाएं, क्रोध, ईर्ष्या, मोह इत्यादि भरें पड़े रहते है।

1.8.3 प्रकृति की ओर वापसी– प्रकृति संसार की सर्वोत्तम चिकित्सक है। आधुनिक सभ्यता एवं कृत्रिम जीवन क्रम से जो प्राणी जितने दूर है वे उतने ही स्वस्थ्य और निरोग है। प्रकृति के समीप में रहने वाले जीव–जन्तुओं यदा–कदा ही बीमार पड़ते है। और यदि पड़ते है तो बिना किसी दवा के शीघ्र ढीक हो जाते हैं। खाना–पीना छोड़ देते है तथा प्रकृति को अपना उपचार करने के लिए स्वतन्त्र रूप से समर्पित करते है। फलतः सदा निरोग और स्वस्थ रहते है। मनुष्य में भी कितनी ही अविकसित पहाड़ी और जंगती जातियाँ ऐसी है जिसे प्रकृति का सान्धिय अधिक प्राप्त है। असुविधाओं में रहते हुए भी वे सर्वाधिक स्वस्थ और दीर्घजीवी होते है। परन्तु आहार विहार की विकृति के कारण रोग उत्पन्न होते है उसे प्राकृतिक आहार–विहार से ठीक किया जा सकता है क्योंकि शरीर में रोग निरोधक शक्ति मौजूद है। वह बाहर से होने वाले विषाणुओं से भली प्रकार निपटने में समर्थ है और भीतर उत्पन्न होन वाले उपद्रवों को निकाल बाहर करने की क्षमता भी उसमें विद्यमान है। बीमारी के दिनों अनावश्यक श्रम से शरीर को बचाये रखें और प्रकृति को अपना कार्य करने दें। शरीर के भीतर रोग निरोधक शक्ति का विपुल भण्डार भरा पड़ा हैं। जिसके द्वारा भीतर से उत्पन्न हुए अथवा बाहर से प्रवेश पाकर पहुँचे हुए रोग कीटाणुओं का विनाश निरन्तर होता रहता है।

अभ्यास प्रश्न

1. **पंचतत्व कितने है?**

अ. 6 ब. 7

स. 4 द. 5

2. **आरोग्यता कहते है?**

अ. निरोग रहना ब. बीमारी

स. रोगी द. दवा

3. **प्राकृतिक जीवन जीने से मनुष्य को प्राप्त होता है?**

अ. शारीरिक स्वास्थ्य ब. आरोग्यता

स. दीघार्यु द. उपर्युक्त सभी

4. **गीता में कितने प्रकार के आहार का वर्णन किया है?**

अ. 3 ब. 4

स. 2 द. 6

5. **कुदरती इलाज के मूल तत्व कौन है?**

अ. पंचमहाभूत ब. प्राणायाम
स. आसन द. बंध

1.9 सारांश

प्रकृति के नियमानुसार जीवन जीने को प्राकृतिक जीवन कहते है। इसके अंतर्गत प्रातःकालीन टहलना, उषापान करना, प्राकृतिक भोजन का सेवन करना, थकान होन पर आराम करना, रात में जल्दी सोना व सुबह जल्दी उठना, विचारों को सकारात्मक रखना, सादगी भरा जीवन जीना सम्मिलित है। मानव शरीर की रचना पृथ्वी, वायु, अग्नि व आकाश से हुई है जब तक हन पांचों तत्वों का संतुलन बना रहतो हैं तब तक शरीर निरोगी रहता है। जीव–जन्तुओं की तरह मनुष्य को प्रकृति के साहचर्य में रहना चाहिए। प्राकृतिक जीवन शैली का पालन करने से मनुष्य को आरोग्यता की प्राप्ति होती है, दीघार्यु की प्राप्ति होती है इसलिए मनुष्य को प्रकृति की ओर वापसी करनी चाहिए। प्राकृति आहार ग्रहण करना चाहिए। कुदरती इलाज का प्रभाव आश्चर्यजनक होता है।

1.10 शब्दावली

पंचतत्व – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश
साहचर्य – सानिध्य
दीघार्यु – लम्बा जीवन
विहार – रहन–सहन
आरोग्यता – निरोग रहना

1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. द
2. अ
3. द
4. अ
5. अ

1.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य–जीवेम शरदः शतम् वाडमय 41, अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा।
2. डॉ0 नरेन्द्र देव– आहार–विहार से स्वास्थ्य संवर्धन
3. डॉ0 दौलत राम शर्मा एम. डी. प्राकृतिक चिकित्सा–डॉ0 दौलत राम शर्मा 78 जी. बी. रोड दिल्ली

1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्राकृतिक जीवन से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिए।
2. प्रकृति के आधार भूत तत्व (पंचतत्व) का संक्षेप में वर्णन कीजिए?
3. प्राकृतिक आहार–विहार का वर्णन कीजिए?

इकाई –2 प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ, परिभाषा एवं इतिहास

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ एवं परिभाषा

2.3.1 प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ

2.3.2 प्राकृतिक चिकित्सा की परिभाषा

2.4 प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास

2.4.1 भारत में प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास

2.4.2 आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा का जन्म एवं विकास

2.4.3 पाश्चात्य देशों में प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहसा

2.4.4 भारत में प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास

2.5 महात्मा गाँधी जी का महत् तत्व चिकित्सा पर विचार एवं महत्वपूर्ण योगदान

2.6 प्राकृतिक चिकित्सा पराभव एवं पुनरूथान

2.7 सारांश

2.8 शब्दावली

2.9 अभ्यास प्रश्न

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

2.12 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति भारत की अपनी प्राचीन चिकित्सा पद्धति है। प्राकृतिक चिकित्सा एक चिकित्सा दर्शन है इसके अर्न्तगत रोगों का उपचार लाभ का आधार है। इसमें रोगाणुओं से लड़ने की स्वाभाविक शक्ति है प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली चिकित्सा की एक रचनात्मक विधि है जिसका लक्ष्य प्रकृति के प्रचुर मात्रा में उपलब्ध तत्वों के उचित इस्तेमाल द्वारा रोग का मूल कारण समाप्त करना। प्राकृतिक चिकित्सा न केवल उपचारात्मक विधि है अपितु यह एक जीवन पद्धति भी है। इस चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य सही दिशा का ज्ञान कराना। जिससे पूर्व स्वस्थ जीवन एवं प्रसन्नता प्राप्त हो सके। मनुष्य आज ऐसी अनेको शारीरिक व्याधियों से ग्रस्त हो रहा है जिसका प्रमुख कारण है आप्राकृतिक जीवन शैली। जबकि मनुष्य स्वास्थय की रक्षा तथा रोग की मुक्ति प्राकृतिक जीवन शैली से ही कर सकता है और जिससे वह आजीवन स्वस्थ सुखी व प्रसन्न रह सकता है।

2.2 उद्देश्य

1. प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ व परिभाषा स्पष्ट करना।
2. भारत में प्राकृतिक चिकित्सा के इतिहास का वर्णन करना।
3. आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा के जन्म एवं विकास का वर्णन करना।
4. पाश्चात्य देशों में प्राकृतिक चिकित्सा के इतिहास का वर्णन करना।
5. भारत में प्राकृतिक चिकित्सा के शिक्षण–प्रशिक्षण को वर्णित करना।
6. प्राकृतिक चिकित्सा के पराभव एवं पुनरूत्थान को स्पष्ट करना।

2.3 प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ एवं परिभाषा

2.3.1 प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ– हमारे पूर्वज एवं ऋषि–मुनियों के द्वारा आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व वर्तमान में उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों से परिचित हो गये थे। इसी कारण उन्होंने विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों की खोज की थी जिससे शरीर में रोग के लक्षण न उत्पन्न हो, और यदि किसी भूल के कारण रोग हो जाए तो प्राकृतिक तत्वों द्वारा जैसे– धूप, मिट्टी, जल, हवा, जड़ी बूटियों आदि द्वारा तुरन्त उन पर नियन्त्रण प्राप्त कर लिया जाय। इसी पद्धति को प्राकृतिक चिकित्सा के नाम से जाना गया है।

प्राकृतिक चिकित्सा में उपचार की तुलना में स्वास्थ्यवर्धन पर अधिक महत्व दिया जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा स्वस्थ जीवन जीने की एक कला विज्ञान है। मनुष्य प्रकृति का एक हिस्सा है और उसका शरीर इन्ही पंचतत्वों से बना है पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। प्राकृतिक चिकित्सा का यह अटल सिद्धांत है कि मानव शरीर में स्थित एक ही विजातीय द्रव्य अनेकों रोगों के रूप में तथा विभिन्न नामों से प्रकट होता है। शरीर में रोग केवल एक है जो हमारे शरीर में मल के रूप में जमा है और वही मूलतः रोग की जड़ है, इसकी उपज हमारे अप्राकृतिक जीवन यापन से होती है। अव्यवस्थित जीवन शैली से शरीर में दूषित मल विजातीय द्रव्य एकत्र होने लगते हैं और परिस्थिति वायु प्रकृति (जीवनी शक्ति आदि) के अनुसार अलग–अलग लोगों में इन विजातीय द्रव्यों का बहिष्करण भिन्न भिन्न तरीकों से होता है अर्थात् अलग अलग रोग परिलक्षित होते हैं जैसे बुखार जुकाम आदि। इन सबकी एक ही चिकित्सा है विजातीय द्रव्यों का निष्कासन। वास्तव में आहार विहार एवं रहन–सहन की अनियमितता तथा असंयम के कारण ही रोगों का प्रादुर्भाव होता है। संयमित और नियमित जीवन से मनुष्य रोग मुक्त हो जाता है। वास्तव में प्राकृतिक चिकित्सा एक चिकित्सा पद्धति नहीं अपितु जीवन जीने की कला है जो हमें आहार, निद्रा, सूर्य का प्रकाश, पेयजल, विशुद्ध हवा, सकारामकता एवं योग विज्ञान का समुचित ज्ञान कराती है। प्राकृतिक चिकित्सा से रोग ठीक किये जाते हैं पर यदि प्रकृति के अनुसार जीवन जिया जाय तो रोग होंगे ही नहीं। प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा जीवन निरोगी बनाया जा सकता है। प्राकृतिक चिकित्सा उतनी ही पुरानी है जितनी कि प्रकृति। इसके पॉच आधार हैं। प्राकृतिक चिकित्सा वास्तव में जीवन यापन की सही पद्धति को कहते हैं। यह ठोस सिद्धांतों पर आधारित एक औषधि रहित रोग निवारक पद्धति है। ''प्राकृतिक चिकित्सा व्यक्ति को उसके शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक तलों पर प्रकृति के रचनात्मक सिद्धांतों के अनुकूल निर्मित करने की एक पद्धति है। इसमें स्वास्थ्य संवर्धन रोगों से बचाव व रोगों को ठीक करने के साथ ही आरोग्य प्रदान करने की अपूर्व क्षमता है।''

2.3.2 प्राकृतिक चिकित्सा की परिभाषा– प्राकृतिक चिकित्सा सभी चिकित्सा प्रणालियों में सर्वाधिक पुरानी चिकित्सा पद्धति है। प्राचीन काल से पंचमहाभूतों– पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश तत्व की महत्ता की है। प्राकृतिक चिकित्सा न केवल उपचार की पद्धति है अपितु यह एक जीवन पद्धति है इसे बहुधा औषधि विहीन उपचार पद्धति कहा जाता है। यह पूर्णरूप से प्रकृति के सामान्य नियमों के पालन पर आधारित है।प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी विभिन्न विद्वानों का मत–

- **कुने लुईस 1967–** ''प्राकृतिक प्रणाली जिसका कि चिकित्सा के रूप में उपयोग करते हैं तथा जो दूसरी पद्धतियों से गुण में बहुत अच्छी है, बिना औषधि या आपरेशन के उपचार की आधार की शिक्षा है।''
- **जुस्सावाला जे0एम0 (1966)–**''प्राकृतिक चिकित्सा एक विस्तृत शब्द है जो रोगोपचार के सभी प्रणालियों के लिये उपयोग किया जाता है जिसका उद्‌देश्य प्राकृतिक शक्ति एवं शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता के साथ सहयोग करना है। यह व्याधि से मुक्त कराने का एक भिन्न तरीका है जिसका जीवन स्वास्थ्य एवं रोग के संबन्ध में अपना स्वयं का एक दर्शन है।
- **बेनजामिन हेरी–** ''प्राकृतिक चिकित्सा व्याधि से मुक्त करने तथा रोग का दर्शन है।'' प्राकृतिक चिकित्सा शरीर की स्वयं की आंतरिक सफाई एवं शुद्धिकरण की स्वीकृति देती है। इस प्रकार यह अशुद्धता एवं अनुपयोगी पदार्थ जो कि अधिक वर्षों के कारण एकत्र हो गया तथा जो सामान्य कार्य में बाधा उत्पन्न करता था उसें निकाल फेंकता है।
- **महात्मा गांधी–**''प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति से रोग मिट जाने के साथ ही रोगी के लिये ऐसी जीवन पद्धति का आरम्भ होता है जिसमें पुनः रोग के लिये कोई गुंजाइश ही नहीं रहती।''
- **पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य–** ''प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ है प्राकृतिक पदार्थों विशेषतः प्रकृति के पांच मूल तत्वों द्वारा स्वास्थ्य रक्षा और रोग निवारक उपाय करना।''
- **विलियम ओसलर–** प्रकृति जिसे आरोग्य नही कर सकती उसे कोई भी आरोग्य नहीं कर सकता है।
- **महात्मा गाँधी–** ''जिसे हवा, पानी और अन्न का परिणाम समझ में आ गया वह अपने शरीर को स्वस्थ रख सकता है उतना डाक्टर कभी भी नहीं रख सकता।''
- **प्रो0 जीसेफ स्मिथ एम.डी.–** दवाओं से रोग अच्छा नहीं होता बल्कि केवल दबाता है। रोग हमेशा प्रकृति अच्छा करती हैं।
- **हिपोक्रेटस–** ''प्रकृति रोग मिटाती है, डाक्टर नहीं।

अतः कहा जा सकता है कि प्राकृतिक चिकित्सा रोगों को दबाती नहीं वरन् उसकी जड़ को खत्म करने में सक्षम है।

2.4 प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास

2.4.1 भारत में प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास– प्राकृतिक चिकित्सा उतनी ही पुरानी है जितनी की प्रकृति स्वयं है और उनके आधार भूत तत्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश। प्रकृति के तत्व जिनसें जीवन की उत्पत्ति होती है सदैव वही तत्व रोगों को दूर करने में सहायक रहे। प्राचीन काल से ही तीर्थ स्नान पर घूमना, उपवास रखना, सादा भोजन

करना, आश्रमों में रहना, पेड़ पौधों की पूजा करना, सूर्य, अग्नि, तथा जल की पूजा करना आदि कर्म के अंग माने जाते रहे है यदि किसी प्राकृतिक नियमों को तोड़ने में कोई कभी अस्वस्थ हो जाता था तो उपवास, जड़ी–बूटियों तथा अन्य प्राकृतिक साधनों का प्रयोग करके स्वस्थ हो जाता है। वेदकाल के वेद तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थों में इसके सन्दर्भ मिलते है।

वायु तत्व–

''पद दौ वात ते ग्रेहअमृतस्य निधिर्हित तहोनो देहि जीवसे''

अर्थात्! हे वायु तेरे घर जो है वे अपूर्व अमृत का खजाना है उसमें से हमारे दीर्घ जीवन के लिए थोड़ा सा भाग प्रदान करे।

सूर्य तत्व–

''सवितानुः सवितु सर्वातीत सवितोनाराजतां दीर्घमायु''

अर्थात्! वह श्रेष्ठ प्रकाश जो विश्व को प्रकाशित कर रहा है हमें सद्बुद्धि और दीघायु प्रादन करे।

सूर्य आत्मा जगतस्वस्थष्च।

अर्थात् सूर्य संसार के समस्त पदार्थों की आत्मा है।

जल तत्व–

''सन्नो देवीर भस्तमायोषवन्तुपीतयेषं शयोरीशभवन्तु''।

(ऋग्वेद 10/4/4)

अर्थात्! हे ईश्वर दिव्य गुण वाला जल हमारे लिए सुखकारी हो जो हमें अभीष्ट पदार्थ प्राप्त कराये। हमारे पीने के लिए ये सम्पूर्ण रोगों का नाश करे तथा रोग से पैदा होने वाले भय को न पैदा होने दे, हमारे सामने बहे।

पृथ्वी तत्व–

''अधतेडीप च भूतनित्यन्नत्व मुच्यते
तैत्तिरीयक वेदान्ते तस्य भावोऽनुचिन्तयताम्
अध्यते विधिवद् मुक्तमति भोकतरमन्यथा''।

(तैतरीय उपनिषद)

अर्थात् भोजन जो खाया जाता है और भोजन खाने वाला जो भी खाता है भोजन का यह महत्व विचारणीय है विचित्र रीति से किया गया भोजन खाने वाले द्वारा खाया जाता है परन्तु जो गलत विधि से खाया जाता है ऐसा भोजन खाने वाले को खा जाता है पहले प्रकार का भोजन मनुष्य को आयुष एवं स्वास्थ्य प्रदान करता है जबकि दूसरे प्रकार के भोजन का विपरीत प्रभाव पड़ता है। वैदिक सभ्यता के बाद पुराण काल में प्राकृतिक चिकित्सा प्रचलित थी राजा दिलीप ने दुग्ध कल्प, फल जल सेवन (रहना) लाभ प्राप्त किया।

आयुर्वेद के अनुसार–

वायु तत्व

दध्यान्ते ध्यायमाननां धातू नाहि यथा मलाः।
तर्थोन्द्रयाणि दध्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहत।।

(ऋग्वेद–10/86/3)

अर्थात्! धातुओं को आग में डालने से जैसे उनके मल नष्ट हो जाते है वैसे ही प्राणायाम से मनुष्य के समस्त रोग दूर हो जाते है। वायु हमारे ह्रदयों में शक्ति पैदा करे। वह सुख देने वाला होकर हमारे पास बहती रहे जब हमारी आयु को दीर्घ करें।

सूर्य तत्व–

"कफीयतोदभवा रोगान वात, रोगास्तथैव च।
तत्सवनान्न रोजित्वा जीवेच्च शरदाषतम्।।"

अर्थात् सूर्य रश्मियों के दैनिक प्रयोग से मनुष्य कफ पित्त व वायु दोष से उत्पन्न सभी रोगों से मुक्त होकर सौ वर्ष तक जीवित रह सकता है।

"ददुविस्फोट कुष्टहन कामला शोध नाषकः।
ज्वादि सार शूलना हारको नात्रसंषयः।।"

अर्थात् सूर्य रश्मियाँ दाद, कुष्टपूर्ण दाने, कोढ़, जलशोथ, अति उदरशूल जैसे रोगों को नष्ट कर देती है इसमें सन्देह नहीं।

जल तत्व–

दीपनं वृष्य दृष्टातायुष्यं स्नानमोजो बल।
प्रदम् कडमलश्रम स्वेदन्द्रोतऽदाह पायुत।
रक्त प्रसादन चापि सवेन्द्रिय विषोधनम्।।

अर्थात् स्नान, ओज, आयु, जीवनी शक्ति को बढ़ाता है। थकावट, पसीना, चर्म रोग, मल और उसकी दुर्गन्ध आलस्य, प्यास, जलन तथा पाप का नाश करता है साथ रक्त को शुद्ध करता है एवं सम्पूर्ण इन्द्रियों को स्वच्छ व निर्मल कर देता है।

पृथ्वी तत्व–

पृथ्वी न चाहारसमं किंचिद् भैषज्य मुकलभ्यते।
शक्यतेऽयन्नं मात्रेण नरः कुर्त निरामयः।।
भेषजो नोपन्नोऽसि निराहारो न शक्यते।
तस्याद् भिषग्भिराहारो महा भैषन्यमुच्यते।।

अर्थात्! भोजन से बढ़कर दूसरी दवा नहीं है केवल भोजन सुधार से मनुष्य के सारे रोग दूर हो जाते है दवा कितनी दी जाए पर यदि रोगी के भोजन में उचित सुधार न किया जायेगा तो कुछ लाभ नहीं होगा मनुष्य जो खाता है वह भैषज्य नही महा भैषज्य है। **पद्यपथ्यं किमौषधया, यदि पथ्यं किमौषधैः।** अर्थात् यदि रोगी का पथ्य ठीक नही है तो औषधीय दिये जाने का कोई अर्थ नहीं और यदि ठीक है तब भी औषधि निरर्थक है। भोजन सुधार से मनुष्य के सारे रोग दूर हो जाते है, दवा कितनी ही दी जाए पर रोगी के भोजन में उचित सुधार नहीं किया जायेगा तो कुछ लाभ नहीं होगा। मनुष्य जो खाता है भोजन नहीं महाभैषज है। **सदा पथ्यं किमौषधया यदिपथ्यं किमौषधैः।** अर्थात् यदि रोगी का पथ्य ठीक नहीं है तो औषधि लिए जाने का कोई अर्थ नहीं और यदि पथ्य ठीक है तो भी औषधि निरर्थक है।

पुराण काल–वेदकाल के बाद पुराण काल में प्राकृतिक चिकित्सा का उपयोग रोगों को दूर करने तथा स्वास्थ्य वर्धन के लिये किया जाता था। प्रारम्भ में कोई औषधि चिकित्सा नहीं थी लोग लंघन (उपवास) को ही अचूक औषधि मानते थे। इस सम्बन्ध प्रसंग आता है कि राजा दिलीप दुग्धकल्प एवं फल सेवन तथा राजा दशरथ की रानियों ने फल द्वारा संतान लाभ प्राप्त किया। उपवास सभी रोगों से मुक्त होने का सहज उपचार माना जाता है।

त्रेतायुग में रावण के समय जड़ी–बूटी का औषधि के रूप में प्रयोग होने लगे क्योंकि भोग–विलासी होने के कारण रावण को प्राकृतिक चिकित्सा में कष्ट होता था उसने वैधों का लघंन (उपवास) के बिना चिकित्सा की विधि खोजने का आदेश दिया तभी से औषधि चिकित्सा का आरम्भ हो गया।

महाबग्ग बौद्ध ग्रन्थ–इस ग्रन्थ में वर्णन किया गया है कि एक बार भगवान बुद्ध श्रावस्ती नगर से राजगृह जाते हुए कलंद निवास नामक संघ मे रूके थे। वहाँ एक बौद्ध भुक्षु को सांप ने काट लिया उसकी सूचना भगवान बुद्ध को मिली उन्होंने सलाह दी कि विष नाश करने के लिए चिकनी मिट्टी, गोबर, गौमूत्र और राख का उपयोग किया जाए इस प्रकार किया जाय इस प्रकार के प्रसंग से ज्ञात होता है कि भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों को प्राकृतिक चिकित्सा से सही करते, करवाते थे।

सिन्धुघाटी की सभ्यता– इस काल में भी प्राकुतिक चिकित्सा का उपयोग होता था। मोहन जोदड़ो में पाये गये पुराने स्नानगार जिस में गरम, ठण्डा दोनों ही प्रकार के स्नान का प्रबन्ध था। इससे यह स्पष्ट होता है कि 350 ई0 पूर्व जल चिकित्सा महत्वपूर्ण स्थान रखती थी।

मिस्र यूनानी व यहूदी जातियाँ– जल से चिकित्सा होती थी। 2000 वर्ष यूनान एक व्यक्ति बुकरात ने जल और सूर्य चिकित्सा द्वारा लोगों का ज्वर, रक्तविकार, चर्मरोग आदि को ठीक करने के लिए प्रसिद्ध थे।**रोम में** 800 वर्ष पूर्व सूर्य चिकित्सा होती थी ।

2.4.2 आधुनिक प्राकुतिक चिकित्सा का जन्म एवं विकास–ईसा के जन्म के 400 वर्ष पूर्व ग्रीस के हिप्पोक्रेटीज प्राकृतिक चिकित्सा के जनक कहे जाते है। उनके समय तक दौ सौ पैसठ औषधियों का अविष्कार हो चुका था ये उनकी लिखी पुस्तकों से ज्ञान होता है लेकिन ये औषधियाँ मुख्यतः कुछ नये रोगों में ही प्रयोग की जाती थी। यदपि हिप्पोक्रेटीज इन औषधियों में विश्वास रखता था , उनकी धारणा थी कि प्रकृति में रोग निवारण शक्ति है। तथा नये–नये रोग स्वयं ही शरीर में एक प्रकृति तरीके से उभार लाकर शरीर के भागों में से एक अधिक के द्वारा विकारों के बाहर कर देते है। उनका कहना था कि चिकित्सक का कर्त्तव्य है कि वह रोगी में आये बदलाव का अनुमान पहले से कर ले जिससे वह उन प्राकृतिक तरीको को सहज सफल होने में सहायता दे तथा रोगी चिकित्सक की मदद से रोग निवारण कर सके।

हिप्पोक्रेटीज को जल चिकित्सा का पूरा–पूरा ज्ञान था उन्होंने शीतल तथा उष्ण दोनों प्रकार के जल का उपयोग अल्सर, ज्वर और अन्य रोगों में किया। उन्होंने कहा कि शीतल जल का स्नान लघु कालीन होना चाहिए उसके तुरन्त बाद या घर्षण स्नान करना चाहिए। लघुकालीन शीतल स्नान से शरीर गरम रहता है इसके विपरीत उष्ण जल से स्नान से इसके विपरीत प्रभाव पड़ता है।

यूनान के स्पार्टन नामक जाति में शीतल जल से स्नान करने का कानून बना था वहाँ बड़े–बड़े स्नानगार में शीतल और उष्ण वायु स्नान की व्यवस्था की।

फादर नीप ने प्राकृतिक चिकित्सा का उपयोग बड़े उत्साह से किया और जड़ी बूटी व जल के प्रयोग सम्बन्धी बहुमूल्य अविष्कार किये। मध्यकाल में अरा के चिकित्सकों ने जल चिकित्सा को महत्व दिया।

रेजेज ने ज्वर के ताप को कम करने के लिए बरफीला जल थोड़ा पानी की सलाह दी।

एवी सेना कब्ज निवारण हेतु शीलत जल का स्नान तथा मिट्टी को लाभकारी बताया।

कुलेन चिकित्सक के रूप में जल के सन्दर्भ में कुछ व्यवस्थिति अवलोकन प्रस्तुत किये। उन्होंने ज्वर के उपचार के लिए जल के सम्बन्ध में कहा कि जब प्रतिक्रिया की दिशा को कम करने के लिए जल का उपयोग किया जाता है तो उसका प्रभाव शान्तिदायक होता है लेकिन जब हृदय और धमनियों के कार्यों को बढ़ाने के लिए तथा सबल देने के लिए जल का उपयोंग किया जाता है तो वह टॉनिक का कार्य करता है। जल रोग निवारण और स्वास्थ्य संवर्धन के लिए उपयुक्त माना जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति भारत की प्राचीनतम चिकित्सा पद्धति है किन्तु बीच में इस चिकित्सा प्रणाली के संसार से लोप हो जाने के बाद उसके पुर्नरूथान का श्रेय पाश्चात्य देशों को दी है इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता। प्राकृतिक चिकित्सा के पुनरूथान में मदद देने वाले अनेक प्राकृतिक चिकित्सक थे और ये लोग वह थे जो औषधियों द्वारा रोगों का उपचार करते—करते अपनी आयु के एक बड़े भाग को समाप्त कर देने पर भी शान्ति नहीं पा सके। उनके स्वयं के प्राण प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा बचे थे। इस सम्बन्ध में निम्नवत जानकारी है।

2.4.3 पाश्चात्य देशों में प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास–

डाक्टर फ्लायर इग्लैण्ड के लिचफील्ड निवासी थे। लिचफील्ड के एक स्त्रोत के पानी में कुछ किसानों को नहाते देखकर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त देखा और इस सम्बन्ध में उन्होंने खोज की और जल चिकित्सा आरम्भ की।

सन् 1667 में सर जान फ्लोयर ''हिस्ट्री आफ कोल्ड बायिंग'' नामक पुस्तक लिखी जिसमें इन्होंने शीतल जल के महत्व स्नान पर विस्तार से प्रकाश डाला। उन्होंने कहाँ कि शीतल जल के स्नान देने से पहले रोगी को पसीना अवश्य आना चाहिए। इसके लिए रोगी को एक गीला चादर लपेट कर कम्बल से ढक देना चाहिए। इसके बाद पसीना आ जायेगा, तब स्नान कराना चाहिए। उन्होंने इग्लैण्ड के लिचफील्ड में वाटर क्योर केन्द्र बनाया इसमें दो कमरे हुआ करते थे। एक कमरे में रोगी को उष्ण स्नान तथा शुष्क लपेट पसीना लाने के लिए दी जाती थी। दूसरे कमरे में शीतल जल की स्नान करवाया जाता था। दोनों कमरे एक दूसरे से बिल्कुल आस—पास थे।

आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा के प्रणेता विनसेन्ज प्रेविनज माने जाते है। जो कि फादर ऑफ वाटर थरैपी माने जाते है। इनका जन्म जर्मनी के सिलेसियन पहाड़ की तलहटी मे एक गाँव में 1752 में एक गरीब परिवार में हुआ था। बड़े होने पर चरवाहे का काम करते हुए एक लगड़ी हिरनी को बुरी तरह घायल देखा वह हिरनी झरने के नीचे आधे घण्टे पानी में खड़े होने के बाद पानी से निकलकर जिधर से आयी थी उधर ही चली गयी। दूसरे दिन भी वह हिरनी करीब उसी समय आयी और इस बार आधे घण्टे से अधिक समय तक पानी में रहने के पश्चात पुनः चली गयी। प्रिस्निज ने देखा कि तीन सप्ताह तक हिरनी इसी प्रकार आती रही। उन्होंने लगड़ी हिरनी झरने में नहाने से उसकी चोट को ठीक होता हुआ देखकर आश्चर्य चकित हुए।

प्रिस्निज जी सोलह वर्ष के थे जब एक दिन जंगल से लकड़ी काटकर लौटते समय बर्फ गिरने लगी। वह आधी तूफान में फसकर चार पसलियां टूट गयी। उन्होंने अपनी चिकित्सा हिरनी की तरह जल से की। इन्होंने गीली पट्टी बाधकर ठीक किया। सूती कपड़े की गद्दी पानी में भिगोकर अपने अंग पर रखने लगे और गद्दी सूख जाती तो फिर से उसे पानी में भिगोकर रख लेते। इस तरह कुछ समय के पश्चात वह बिल्कुल स्वस्थ हो गये।

इनका जल चिकित्सा पर गहन विश्वास हो गया। इन्होंने 1829 में जल चिकित्सा प्रणाली की स्थापना की। जिससे इनके पास दूर–दूर से रोगी आने लगे। प्रिस्निज की चिकित्सा में विशेष जल के व्यवहार और सादा भोजन था। इनका आधारभूत सिद्धान्त पसीना निकाल कर ठण्डे जल का प्रयोग था। इसके बाद रोगी की प्रतिरोधक क्षमता शक्ति को भी बढ़ाने में सहायता करने लगा। प्रिस्निज के बाद जोहान्स स्क्राथ ने शोध से कार्य को आगे बढ़ाया।

जोहान्स स्क्राथ–प्रिस्निज के काल है इन्होंने एक साधु के उत्साहित करने पर अपनी चोट को जल चिकित्सा से सही किया था बाद में जानवरों पर सिद्धस्य हो जाने पर मनुष्यों पर जल चिकित्सा का प्रयोग किया। इनकी ख्याति बढ़ने पर ऐलोपैथिक चिकित्सा में विश्वास रखने वाले लोगों ने षडयंत्र करके इन्हें जेल भिजवा दिया। जेल से बाहर आकर 1849 में जब एक घायल सिपाही को कुछ ही दिनों में ठीक कर दिया तो इनका यश बढ़ने लगा। इनकी चिकित्सा प्रणाली को ''स्क्राथ चिकित्सा'' कहते है। **इमेन्युल स्क्राथ** यह जोहान्स के पुत्र थे इन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा अनेक रोगियों का उपचार किया।

फादर सेबस्टिन नीप जो देवरिया के रहने वाले थे इन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा का बहुत प्रचार किया तथा जल का सफल प्रयोग किया। इन्होंने एक स्वास्थ्य ग्रह 45 वर्ष तक चलाया अनेकों संस्थायें जर्मनी में इस चिकित्सा प्रणाली से चल रही है। जल चिकित्सा पर पुस्तक भी लिखी है।

अर्नाल्ड रिचली एक व्यापारी थे। इन्होंने जब प्राकृतिक चिकित्सा के गुणों को देखा और सुना तो उससे प्रभावित होकर इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया और वायु चिकित्सा, जल चिकित्सा पर कार्य किया।

क्राफोर्ड ने भी 1781 में शीतल जल के शरीर पर प्रभाव का अध्ययन किया तथा उपचार हेतु उपयोग भी किया।

डॉ0 हैलरी बेन्जामिल प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योग दिया। उनके द्वारा रचित पुस्तक **इवरी बडी गाइड टू नेचर क्योर** एक प्रसिद्ध पुस्तक है।

डॉ0 मेकफेडन ने प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने ''फास्टिंग फार हेल्थ'' तथा ''मेकफेडन इन्साइक्लोपीडिया फार फिजिकल क्योर'' जैसी अनेकों पुस्तक लिखी।

डॉ0 लाकेट ने अपने अनुभव पर भाप स्नान द्वारा पसीना निकालने की नयी विधि अपनायी गयी।

एडोल्फ जूस्ट इन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा की सुप्रसिद्ध पुस्तक ''रीटर्न टू नेचर'' लिखी। इन्होंने बताया कि मिट्टी के प्रयोग द्वारा समस्त रोगों को दूर किया जा सकता है। इन्होंने अपने आप मालिश करने की क्रिया को भी जन्म दिया।

रावर्ड हावर्ड यह प्राकृतिक आहार के अच्छे ज्ञाता माने जाते है।

सेलमन आपके प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार में महत्वपूर्ण योगदान दिया इनकी लिखी पुस्तक स्वास्थ्य और दीर्घायु आज भी लोकप्रिय है।

डॉ0 केलाग ने **रेषनल हाइड्रोथेरेपी** पुस्तक लिखी और प्राकृतिक चिकित्सा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। डॉ0 केलाग ने मालिश, धूप चिकित्सा, आहार चिकित्सा आदि अनेक विषयों पर अनेकानेक पुस्तक लिखी। सभी चिकित्सा प्रणालियाँ जैसे आहार चिकित्सा, जल चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, विघुत चिकित्सा, द्वारा रोगों का उपचार होता है वहाँ यह भी बताया जाता है कि उत्तम स्वास्थ्य तथा लम्बी आयु कैसे प्राप्त करें।आज अमेरिका में

प्राकृतिक चिकित्सा एक चिकित्सा विज्ञान के रूप में कई विश्वविद्यालय में पढ़ाई जा रही है तथा उनके चिकित्सीय महत्पपूर्ण योगदान दे रहे है। डॉ0 जानबेल द्वारा रचित पुस्तक ''बाथ'' एक प्रसिद्ध कृति है।

स्टैनली लीफ का सन् 1892 ई0 में रूस के एक गाँव में जन्म हुआ। और इनका जीवन दक्षिण अफ्रीका में बीता और जब बड़े हुए तब अमेरिका जाकर मैकफेडन के प्राकृतिक शिक्षालय में भर्ती होकर प्राकृतिक चिकित्सा की शिक्षा प्राप्त की। इग्लैण्ड से निकलने वाली मासिक पत्र ''हेल्थ फार आल'' के सम्पादक तथा दो प्रसिद्ध पुस्तक भी लिखी। Dite Refrom simplified और How to feed children from Infency on word !

वेनेडिक्ट लुस्ट अमेरिका के एक जाने माने प्राकृतिक चिकित्सक रहे है उन्होंने ''नीप वाटर क्योर'' नामक एक मासिक पत्रिका निकाली तथा न्यूयार्क में नैच्यूरोपेथी स्कूल आफ कैरोप्रेक्टि्स की भी स्थापना की।

आस्ट्रिया के फ्रंन प्रान्त के अर्न्तगत टेल्डास– नामक स्थान पर सन् 1848 ई0 में धूप और वायु का जो संसार में सर्वप्रथम अपने ढंग का प्राकृतिक चिकित्सा भवन या बाद में लगभग सभी प्राकृतिक चिकित्सकों ने इसी आधार पर चिकित्सा ग्रहों का निर्माण कराया। अपने 67 वर्ष की लम्बी आयु का उपयोग किया और मरने के समय तक स्वस्थ और स्फूर्तिवान बने रहे।

लुई कुने–प्राकृतिक चिकित्सा को विकास एवं उन्नति के शिखर पर पहुँचाने का श्रेय प्रिस्निज, नीप एवं कूने तीनों को है। परन्तु कुने के विशेष योगदान की वजह से आज प्राकृतिक चिकित्सा को कुने चिकित्सा प्रणाली के नाम से भी जाना जाता है।

लूई कूने का जन्म जर्मनी के लिपजिंग नगर में एक जुलाहे के घर हुआ था। इनके माता पिता की मृत्यु एलोपैथ चिकित्सकों के उपचार के मध्य हुई 20 वर्ष की अल्पायु में ही इन्हे भी मस्तिष्क एवं फुस्फुस के भयंकर रोग के साथ–साथ आमाशय का फोड़ा हो गया जो कि किसी भी डाक्टर से ढीक नहीं हुआ जीवन से ऊबकर अंत में सन् 1864 में इन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा की शरण ली और बहुत जल्दी स्वास्थ्य प्राप्त किया।परिणामतः ये प्राकृतिक चिकित्सा के भक्त बने और निरन्तर अध्ययन मनन के बाद 10 अक्टूबर 1883 ई0 में लिपजिंग स्थित प्लास प्लेट्ज स्थान पर एक निज का स्वास्थ्य ग्रह खोल दिया। कुने की जर्मन भाषा में लिखी अनेक पुस्तकों में the science of facial expression और New science of healing जिनका हिन्दी रूपान्तर सस्ता साहित्य मंडल दिल्ली एवं आरोग्य मंदिर गोरखपुर ने क्रमशः आकृति से रोगी की पहचान एवं रोगों की नई चिकित्सा नाम से किया है ये पुस्तकें विश्व प्रसिद्ध है। फ्रेच, ग्रीक, इंग्लिश आदि कई भाषा में इन पुस्तकों के अनुवाद हो चुके है तथा अन्य भाषाओं में हो रहे है।कुने प्राकृतिक चिकित्सा सिद्धान्तों में रोगों का कारण एक ही है, शरीर में विजातीय द्रव्य का इक्कठा होना मुख्य कारण है इनके उपचार के तरीकों में सूर्य चिकित्सा, भाप स्नान, कटिस्नान प्रमुख है।

Schweninger ऐलोपैथिक डाक्टर ने बाद में प्राकृतिक चिकित्सा बने। इन्होंने The Doctor नामक एक सुप्रसिद्ध पुस्तक लिखकर वर्तमान में प्रचलित जहरीली तथा प्राण घातक औषधियों द्वारा चिकित्सा विधि की बड़ी कटु आलोचना की।

2.4.4 भारत में प्राकृतिक चिकित्सक का इतिहास – प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति भारत की अपनी प्राचीन चिकित्सा पद्धति है–भारत में प्राकृतिक चिकित्सा आधुनिक काल में लूई कुने की प्रसिद्ध पुस्तक New science fo Healing के भारतीय भाषा में अनुवाद के साथ

आरम्भ हुई। इस पुस्तक का तैलगू भाषा में श्री वेंकट चेलापति शर्मा ने वर्ष 1904 में तथा बिजनौर निवासी कृष्ण स्वरूप क्षेत्रीय ने 1904 के लगभग हिन्दी तथा कई भाषाओं में अनुवाद किया। इन पुस्तकों के प्रभाव से कई लोग इनकी चिकित्सा विधियों में रूचि लेने लगे थे भारतीय पृष्ठभूमि में पले और बड़े हुए लोगों के लिए कुने के सिद्धान्तों तथा उनकी चिकित्सा विधियों के मर्म की समझना और अभ्यास में लाना सरल था इसलिए बहुत शीघ्र ही चिकित्सा पद्धति लोकप्रिय होने लगी और नाना प्रकार की असाध्य तथा जीर्ण रोगों से पीड़ित रोगी लाभान्वित होने लगे।

हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी भी प्राकृतिक चिकित्सा के अनुयायी थे इन्होंने इस चिकित्सा पद्धति का बहुत गहराई से अध्ययन किया और उसे सर्वप्रथम आने ऊपर फिर अपने परिवारजनों और आश्रम वासियों पर प्रयोग किया। वह अन्त मं इस नतीजे पर पहुँचे कि भारत जैसे देश के निवासियों के स्वास्थ्य के संवर्धन के लिए प्राकृतिक चिकित्सा सर्वाधिक उपयुक्त पद्धति है। उन्होंने पूजा के समीप उरूली कांचन में एक प्राकृतिक चिकित्सालय की भी स्थापना की जो अभी चल रहा है। देश के कई प्राकृतिक चिकित्सक इस पद्धति के प्रचार में लग गये और सराहनीय कार्य किया जिनका विवरण इस प्रकार है–

कृष्ण स्वरूप क्षेत्रिय (1868–1932) यह बिजनौर उत्तर–प्रदेश के निवासी थे तथा इन्होंने लूई कुने की प्रसिद्ध पुस्तक छमू`बपमदबम व`िभ्मंसपदह की अंग्रेजी भाषा से उर्दू तथा अपने समय सविस्तर अनुवाद किया जो बहुत लाकप्रिय हुआ तथा इन पुस्तकों से विशष मार्गदर्शन प्राप्त कर चिकित्सकों ने हजारों रोगियों को सफल उपचार किया है। आज अपने समय के प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सकों में से एक थे।

सन्त विनोवा भावे – महात्मा गाँधी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी आचार्य विनोवा भावे प्राकृतिक चिकित्सा जीवन और शिक्षण के लिए तन मन से समर्पित रहे उन्होंने अपने गीता प्रवचन और राम–नाम एक चिंतन पुस्तक में प्राकृतिक जीवन के मूलभूत आदर्शों का बड़े सुन्दर ढंग से विवेचन किया है। अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा के अनेक राष्ट्रीय सम्मेलनों में उन्होंने देश में प्राकृतिक चिकित्सकों का विशेष मार्गदर्शन किया उनकी ''गाँवों की स्वास्थ्य योजना'' पुस्तक स्वास्थ्य के लिए एक मार्गदर्शिका है।

पं0 जवाहर लाल नेहरू– भी प्राकृतिक चिकित्सा में विश्वास रखते थे तथा दवाओं के प्रयोग से दूर रहते थे। वे अपने अत्यन्त व्यस्त समय में सभी इसके लिए नियमित समय निकालते थे।

श्री मोररजी देसाई– भारत रत्न की उपाधि से विभूषित श्री मोरारजी देसाई भारत की उन महान विभूतियों में संलग्न है जिन्होंने विदेश में उच्च शिक्षा प्राप्त कर अंग्रेजी शासन में एक उच्च अधिकारी के पद को त्याग कर भारत के स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया और भारत के प्रधानमंत्री के उच्चतम पद पर रहते हुए भी भारतीय चिकित्सा पद्धति की महान सेवा की आप अखिल भारतीय चिकित्सा परिषद के शीर्षस्थ नेताओं में एक है नवजीवन प्रकाशन ने प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान पर आप द्वारा लिखित एक उपयोगी पुस्तक का प्रकाशन किया है।

डॉ0 लक्ष्मी नारायण चौधरी– ये राजस्थान में नीम का थाना में रहते थे। ये एक सिविल सर्जन थे लेकिन एलोपैथी के दुशप्रभावों से रोगियों को पीड़ित देख प्राकृतिक चिकित्सा की ओर आकर्षित हुए और आने आखिरी श्वास तक सैकड़ो रोगियों को प्राकृतिक चिकित्सा से रोग मुक्त किया तथा प्राकृतिक चिकित्सा की अनेक पुस्तकें भी लिखी है यह अपने देश के प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक हुए है।

डॉ0 जानकी शरण वर्मा– ये उत्तर प्रदेश के निवासी थे इनकी पुस्तक रोगों के अचूक चिकित्सा ओर अचूक चिकितस के प्रयोग'' प्राकृतिक चिकित्सा के सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों में से है। जिनके भारत के प्रसिद्ध लीडर प्रेस ने कई संस्सकरण प्रकाशित करे है। हिन्दी भाषा प्राकृतिक चिकित्सों की ओर प्राकृतिक चिकित्सा प्रेमियों में शायद की कुछ ऐसा व्यक्ति हो, जिससे डॉ0 जानकी शरण वर्मा की दो दुर्लभ पुस्तकों का मार्गदर्शन प्राप्त न किया हो। वे एक सफल चिकित्सक भी थे लेकिन अपनी इन पुस्तकों के कारण उनका नाम प्राकृतिक चिकित्सा कि इतिहास में सदा अमर रहेगा।

डॉ0 वालेष्वर प्रसाद सिंह– ये महात्मा गाँधी से विशेष प्रेरणा लेकर समर्पित भाव से जीवन–पर्यन्त प्राकृतिक चिकित्सा की सेवा करते रहे, उन्होंने भारत के कोने कोने में प्राकृतिक चिकित्सा के शिवरों का आयोजन कर हजारों लोगों को रोगमुक्त किया तथा अनेक युवकों को प्रशिक्षण देकर सुयोग्य प्राकृतिक चिकित्सक बनाया। जिनमें से ख्याति प्राप्त शिष्य महात्मा जगदीश्वरानंद जी डॉ0 बिट्ठलदास मोदी जी है। मासिक पत्रिका जीवन सखा का सम्पदान भी किया।

डॉ0 विट्ठलदास मोदी– ये भारत विख्यात संख्या आरोग्य मंदिर गोरखपुर के संस्थापक तथा संचालक थे तथा प्रसिद्ध 'आरोग्य' मासिक पत्रिका के वे सम्पादक है और अनेक प्राकृतिक चिकित्सा के ग्रन्थों के यशस्वी लेखक थे, 90 वर्ष के आयु में 23 मार्च 2000 को इनका शरीर शांत हो गया।

डॉ0 शरण प्रसाद– आपने अनेक वर्षों तक भारतीय चिकित्सा विद्यापीठ ''कलकत्ता'' में प्राचार्य एवं मुख्य चिकित्सक के रूप में कार्य किया इसके पश्चात् कई वर्षों तक गाँधी जी द्वारा संस्थापित निसर्गों उपचार केन्द्र उरूली कांचन के मुख्य चिकित्सक रहे, तथा गुजरात प्रदेश में प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान के ओनरेटी निर्देशक के पद पर आसीन रहे, इन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा के अनेक प्रामाणिक ग्रन्थों का लेखने किया जिन्हें सर्व सेवा संघ वाराणसी ने प्रकाशित किया।

2.5 महात्मा गाँधी जी महत् तत्व चिकित्सा पर विचार एवं महत्वपूर्ण योगदान

वर्तमान शताब्दी में उन्हें भारत का प्रथम प्राकृतिक चिकित्सक कहा जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा का मूलाधार ईश्वर श्रद्धा अथवा महत्व है। महात्मा गाँधी जी का मानना था कि श्रद्धा से मनुष्य रोग मुक्त हो जाता है उसका रहस्य यही है कि ईश्वर जिसकी हम उपासना करते है स्वयं स्वस्थ सत्य तथा प्रेम है और वह तो डाक्टर है इसीलिए रामनाम का आश्रय लेने से हर प्रकार रोग शोक दूर होने में देर नहीं लगती है। गाँधी जी का कहना था कि प्राकृतिक चिकित्सा भारतवासियों के लिए उपयुक्त है और इसका जन–जन तक प्रचार–प्रसार होना चाहिए। एक साप्ताहिक पत्रिका '**नवजीवन**' तथा हरिजन में प्राकृतिक चिकित्सा के सम्बन्ध में लेख अनेकों लिखे और कई पुस्तके भी लिखी। और 1940 ई0 में पूना के समीप उरूली कांचन में एक प्राकृतिक चिकित्सालय की स्थापना की। आज वह बहुत बड़ा प्राकृतिक चिकित्सालय है। उस चिकित्सालय के प्रथम चिकित्सक थे।महात्मा गाँधी जी के प्रयासों से प्रशरित होकर प्राकृतिक चिकित्सा के अनेकों प्रमियों ने प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार में कार्य प्रारम्भ किया।

प्राकृतिक चिकित्सा का भारत में षिक्षण प्रशिक्षण– आज वर्तमान समय में पाँच वर्षीय डिग्री कोर्स भारत के विभिन्न प्रान्तों में लगभग 25 से अधिक प्राकृतिक चिकित्सा अध्ययन केन्द्र है। इसके अतिरिक्त अनेक संस्थायें डिप्लोमा कोर्स चला रही है।

राष्ट्रीय प्राकृतिक चिकित्सा संस्थान पूना–राष्ट्रीय प्राकृतिक चिकित्सा संस्थान बापू भवन पूना में स्थित है। इस संस्था पर 1929 से 1952 तथा डॉ0 विनोबा मेहता के द्वारा प्राकृतिक चिकित्सालय चलाया जाता था। गाँधी जी यहाँ आकर ठहरते थे तथा सलाह मशविरा देते थे। डॉ0 मेहता ने भारत सरकार को ''बापू भवन'' में महात्मा गाँधी की स्मृति में राष्ट्रीय प्राकृतिक चिकित्सा संस्थान स्थापित करने के लिए आग्रह किया।

भारत सरकार ने डॉ0 मेहता का सुझाव मान लिया और 29 सितम्बर 1984 को एक स्वतन्त्र संस्था के रूप में भारत सरकार राष्ट्रीय प्राकृतिक चिकित्सा संस्थान बनाया तथा यह संस्थान निरन्तर प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग के विकास क्षेत्र में महत्वपर्ण योगदान निभा रहा है।

2.6 प्राकृतिक चिकित्सा का पराभव एवं पुनरूथान–

1. औषधि चिकित्सा का आरम्भ हो जाने पर प्राकृतिक चिकित्सा लुप्त होती गई और औषधि चिकित्सा का क्रमशः विकास होता गया।
2. प्राकृतिक चिकित्सा से धीरे–धीरे लाभ सामने आता है। औषधि चिकित्सा प्रणाली का अत्यधिक सुविधाजनक होना और तत्कालीन लाभ प्राप्त होना भी इसका एक कारण माना जाता सकता है।
3. औषधि के आदी हो जाने पर प्राकृतिक चिकित्सा हेतु स्वयं को अक्षम समझने के बाद प्राकृतिक चिकित्सा का लोप हो गया।
4. परन्तु वर्तमान समय में प्राकृतिक चिकित्सा का पुनरूथान हो रहा है क्योंकि औषधि से बीमारी दब जाती है पूर्णतया समाप्त नहीं होती।
5. औषधि अत्यन्त मंहगी है।
6. इसके विपरीत परिणाम होने के आ रहते है। इसी कारण औषधि चिकित्सा का लोप होने लगा तथा पुनः लोगों में प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति जागरूकता बढ़ने लगी।

अभ्यास प्रश्न

1. प्राकृतिक चिकित्सा कहते है?

अ. पंचतत्व चिकित्सा को   ब. कुण्डलिनी को

ब. आसन को   स. पंचकोश को

2. भारत के प्राकृतिक चिकित्सक का नाम है?

अ. जोहान्स स्क्राथ   ब. महात्मा गाँधी

स. एलोल्फ जुस्ट   द. लुई कूने

3. महात्मा गाँधी ने किस चिकित्सा तत्व का वर्णन किया है?

अ. जलतव   ब. वायुतत्व

स. सूर्यतत्व   द. महत्तत्व

4. डॉ0 बिट्ठलाल मोदी जी किस संस्था के संस्थापक थे?

अ. आरोग्य मन्दिर गोरखपुर   ब. प्राकृतिक चिकित्सा पूना

स. प्राकृतिक चिकित्सा परिषद दिल्ली   स. इनमें कोई नही

5. लुई कुने कहाँ के निवासी थे?

अ. फ्रांस ब. जर्मनी
स. अमेरिका द. इंग्लैण्ड

2.7 सारांश

प्राकृतिक तत्वों जैसे– धूप, मिट्टी, जल, हवा आदि द्वारा रोग पर तुरन्त नियंत्रण प्राप्त करने की पद्धति को प्राकृतिक चिकित्सा कहते है। प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति रोगों को जड़ से समाप्त करने में सक्षम है। प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति प्रकृति जितनी ही पुरानी है प्राचीनकाल से ही प्रकृति की पूजा की जाती रही है। ईसा के जन्म के 400 वर्ष ग्रीस के हिप्पोक्रेटिज प्राकृतिक चिकित्सा के जनक कहे जाते हैं। पाश्चात्य देशों में भी प्राकृतिक चिकित्सा का विकास हुआ। भारत में यथा–महात्मा गाँधी, विनोबा भावे आदि। वर्तमान शताब्दी में महात्मा गाँधी को भारत का प्रथम प्राकृतिक चिकित्सक कहा जाता है। महात्मा गाँधी ने प्राकृतिक चिकित्सा में महत् तत्व द्वारा चिकित्सा पर बल दिया। भारत में अनेंकों स्थानों पर प्राकृतिक चिकित्सा का शिक्षण–प्रशिक्षण होता है। औषधि चिकित्सा के आरम्भ से प्राकृतिक चिकित्सा का पराभव हो गया था परन्तु वर्तमान समय में पुनः प्राकृतिक चिकित्सा का पुनरूत्थान हो रहा है।

2.8 शब्दावली

औषधि	–	दवाई
मिताहार	–	संतुलित आहार
पाश्चात्य	–	पश्चिमी
पुनरूत्थान	–	दोबारा विकास होना

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

1. अ
2. स
3. द
4. अ
5. स

2.10 सन्दर्भ गन्थ सूची

1. डॉ0 हेनरी लिंडलार, एम. डी.– प्राकृतिक चिकित्सा दर्शन एवं व्यवहार–केन्द्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद् नई दिल्ली– 110058
2. डॉ ओ0 पी0 सक्सेना– वृहद् प्राकृतिक चिकित्सा– हिन्दी सेवा संस्थान ट्रांसफार्मर के सामने हालनगंज मथुरा 281001

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न–

1. प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ व परिभाषा समझाइयें?
2. भारत में प्राकृतिक चिकित्सा के इतिहास का वर्णन कीजिए।
3. आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा जन्म एवं विकास का वर्णन कीजिएं
4- पाश्चात्य देशों में प्राकृतिक चिकित्सा के इतिहास को वर्णित कीजिए?

इकाई –3 प्राकृतिक चिकित्सा के मूलभूत सिद्धान्त

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 प्राकृतिक चिकित्सा के दस आधारभूत सिद्धान्त
3.4 वर्तमान युग में प्राकृतिक नियमों के सम्बन्ध में जानकारी का अभाव
3.5 प्राकृतिक चिकित्सा की विधि का महत्व
3.6 सारांश
3.7 शब्दावली
3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्राकृतिक चिकित्सा में स्वास्थ्य संवर्धन, रोगों से बचाव व रोगों को ठीक करने के साथ ही आरोग्य प्रदान करने की अपूर्व क्षमता है। अगर उसे अच्छी तरह से अपनाया जाय तो रोगों का निराकरण बिना खर्च के किया जा सकता है। प्राकृतिक चिकित्सा मनुष्य जीवन को सही दिशा संकेत करती है। यह वह चिकित्सा पद्धति है जो हमें दीर्घ जीवन का वास्तविक रहस्य समझती है।

प्राकृतिक चिकित्सा में समस्त बीमारियों का मूल कारण प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करना ही माना जाता है। प्रकृति की इच्छानुसार मनुष्य को पृथ्वी के साथ निकट सम्बन्ध रखना चाहिए। नंगे पाव ही घास पर चलने से शक्ति प्राप्त होती है। स्वच्छ वातावरण में टहलने से ताजी हवा मिलती है सुबह शाम स्वच्छ हवा में दीर्घ श्वासोच्छवास की कसरते करने से फेफड़े सशक्त बनते है। इस प्रकार अधिकाधिक प्रकृति से सम्बन्ध बनाकर रखने से स्वस्थ्य एवं निरोगी जीवनयापन व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है।

3.2 उद्देश्य

1. प्राकृतिक चिकित्सा के मूलभूत सिद्धान्तों को विस्तृत विर्णन करना।
2. वर्तमान युग में प्राकृतिक नियमों के सम्बन्ध में जानकारी के अभाव का स्पष्ट करना।
3. प्राकृतिक चिकित्सा की विधि के महत्व का वर्णन करना।

3.3 प्राकृतिक चिकित्सा के दस मूलभूत सिद्धान्त

मनुष्य प्रकृति का एक हिस्सा है। उसका शरीर इन्हीं प्रकृति तत्व से बना है। प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त नितान्त मौलिक है इनके अनुसार प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करने से रोग पैदा होते है तथा प्राकृतिक नियमों का पालन करते हुए पुनः निरोग हो सकते है। मनुष्य शरीर में स्वाभाविक रूप एक ऐसी प्रकृति प्रदत्त पायी जाती है जो सदैव भीतरी और बाहरी हानिकारक प्रभावों से मानव की रक्षा करती है जिसको नियमियता कहा जाता है और साधारण लोग जिसे जीवनी शक्ति के नाम से पुकारते है वही शक्ति सब प्रकार के रोगों के कारणों को स्वयंमेव दूर करती है। वह निरन्तर शरीर का पुननिर्माण करती रहती

है और जो टूट फूट हो जाती है। उसकी मरमत का भी ध्यान रखती है साथ ही शरीर भीतर से अस्वाभाविक तत्व पैदा हो जाते है या बाहर से पहुँच जाते है उन्हें निकालने का भी प्रयत्न करती रहती है। रोग मनुष्य के लिए अस्वाभाविक अवस्था है जब वह प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन या विरूद्ध मार्ग पर चलने लगता है तो उसके शरीर मे विजातीय द्रव्य की मात्राा बढ़ने लगती है जिसके परिणाम स्वरूप शरीर में तरह–तरह के विष उत्पन्न होने लगते है और वातावरण मे पाए जाने वाले हानिकारक कीटाणुओं का भी उस पर आक्रामण होने लगता है इससे शरीर का पोषण और सफाई करने वाले यन्त्र निर्बल पड़ने लगते है। उनके कार्यों में त्रुटि होने लगती है और मनुष्य रोगी हो जाता है। शरीर के भीतर रोग निरोधक शक्ति भरी पड़ी है जिसके द्वारा शरीर मे उत्पन्न हुए अथवा बाहर से प्रवेश पाकर पहुँचे हुए रोग कीटाणुओं का विनाश निरन्तर होता है। उदाहरण–यदि आँख में कोई विष कीटाणु जा पहुँचे तो निरन्तर आँसू निकलता है। इन आँसुओं में लाइसोजीम नामक पदार्थ रहता है जिसकी निरोध शक्ति अद्भूत है।

प्राकृतिक चिकित्सा की मान्यता है कि रोग एक है और उसका इलाज भी एक है अतः कोई भी आसाह्य से असाह्य रोग हो इस चिकित्सा से उसका उचित समय से निराकरण किया जा सकता है। रोगी के ठीक हो जाने पर पुनः उसके रोगी होने की सम्भावना क्षीण हो जाती है। प्राकृतिक चिकित्सा से रोग जड़ से दूर होते है। स्वास्थ्य के सम्बन्धित नियमों का पालन तथा किसी भी काम में अति न करना प्राकृतिक चिकित्सा का मुख्य सिद्धान्त है। प्रकृति के नियमों को तोड़ने से बीमारियाँ पैदा होती है। जबकि प्रकृति के नियमों का पालन करने से हमारे स्वास्थ्य की रक्षा होती है। प्रकृति के नियमों के पालन के लिए आवश्यक होता है कि हमें प्राकृतिक चिकित्सा के महत्वपूर्ण सिद्धान्तो के बारे में जानकारी हो जो निम्नलिखित है– प्राकृतिक चिकित्सा के मूलभूत सिद्धान्त है जीवनशैली मनुष्य रोगी न बने इसके लिए प्राकृतिक चिकित्सा के दस आधार भूत सिद्धान्त निम्नलिखित है–

1. **सभी रोग एक हैं, और उनका कारण भी एक ही है, और उनका उपचार भी एक ही है–**

सभी रोग, उनके कारण उनकी चिकित्सा भी एक है चोट और वातावरणजन्य परिस्थितियों को छोड़कर सभी रोगों का मूल कारण एक ही है और उसका उपचार भी एक है शरीर में विजातीय पदार्थों की संग्रह हो ताना जिससे रोग उत्पन्न होते है। उनका निष्कासन ही चिकित्सा है। प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति का मौलिक सिद्धान्त वह है। प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार सभी रोग एक ही है। रोग को अलग–अलग नामों से जाना जाता है जिस प्रकार चांदी से बने आभूषणों के अलग अलग नाम हैं जैसे– कंगन, पायल, अँगूठी आदि उसी प्रकार एक ही विजातीय द्रव्य के अलग अलग स्थान पर एकत्र होने के कारण रोग के अनेकों नाम हैं। रोग का एक मात्र कारण विजातीय द्रव्य है। जिसे टॉक्सिक मैटर कहते हैं, शरीर एक मशीन के समान कार्य करता है जिसके कारण हमारे शरीर में विजातीय द्रव्य एकत्र होते रहते हैं और उत्सर्जन तंत्र के माध्यम से बाहर निकाला जाता है। जैसे पसीने के रूप में, मल मूत्र के रूप में और जब यही मल जब शरीर से सुचारू रूप से नहीं निकलता तो शरीर के विभिन्न स्थानों पर जमा होने लगता है, और वही सड़ने लगता है जिसके कारण रोग होते हैं। जैसे आंतों की सफाई न होने पर कब्ज होती है जिसके कारण बवासीर और फिसर जैसे रोग होते हैं अंन्त में इनका व्यापक रूप हमारा रक्त भी दूषित कर देता है जिससे चर्मरोग होता है। हृदय पर ज्यादा दबाव पड़ने से हृदय रोग भी हो जाता है। श्वसन का कार्य बढ़ जाने से श्वांस संबन्धी रोग उत्पन्न होते हैं। इन

सबकी जड़ केवल विजातीय द्रव्य ही होते हैं। इसीलिये जब सारे रोग एक है और उनका कारण भी एक हैं तो उसका उपचार भी एक ही होगा और वह है शरीर से विजातीय द्रव्यों का निष्कासन जिससे शरीर शुद्ध हो और रोग समाप्त हो सकें। विजातीय द्रव्य के समाप्त होने से शरीर स्वस्थ व स्फूर्तिवान हो जाता है। इसीलिये प्राकृतिक चिकित्सा में शरीर की शुद्धि को महत्वपूर्ण स्थान दिया है और विभिन्न माध्यमों से शरीर से विजातीय द्रव्यों को बाहर निकाल कर इसका उपचार किया जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि सभी रोग एक हैं। क्योंकि वे एक ही प्रकार के कारण से उत्पन्न होते होते हे इसलिये उनका उपचार भी एक मात्र है शरीर से विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालना।

2. **तीव्र रोग शत्रु नहीं मित्र होते हैं–** तीव्र रोग चकि शरीर के एक उपचारात्मक प्रयास है अतः हमारे शत्रु नहीं है। जीर्ण रोग तीव्र रोगों को दबाने से और गलत उपचार से पैदा होते है। प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार रोगों को दो श्रेणी में बांटा गया है। 1. तीव्र रोग, 2. जीर्ण रोग। जीर्ण रोग वह होते हैं जो शरीर में दबे रहते हैं और लंबे समय के बाद प्रकट होते हैं जिनके शरीर में रहते हुये हमारा शरीर काम तो करता है लेकिन अंदर से क्षतिग्रस्त होता रहता है और लंबे समय तक शरीर में बने रहते हैं क्योंकि इनकी जड़ें शरीर में जम चुकी होती हैं इसके विपरीत तीव्र रोग वह होते हैं जिनकी अवस्था में शरीर कार्य करने में सक्षम नहीं हो पाता है और यह शरीर में तीव्र गति से आते है और वैसे ही तीव्र गति से चले भी जाते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा में तीव्र रोगों को मित्र कहा गया है जिस प्रकार सामने से वार करने वाले से खतरनाक छिपकर वार करने वाला होता है। उसी प्रकार तीव्र रोग सामने से वार करता है इससे व्यक्ति को संभलने का अवसर मिल जाता है।

तीव्र रोग के कारण शरीर से विजातीय द्रव्यों का निष्कासन भी हो जाता है जैसे– उल्टी, दस्त हाने से पेट और ऑतों की सफाई हो जाती है। जुकाम व बुखार में यही विजातीय द्रव्य पसीने के रूप में बाहर निकलते हैं और जीवनीशक्ति का पुनः विकास होने लगता है। तीव्र रोग हमारे अंदर के विष को बाहर निकालने का कार्य करते हैं किन्तु हम घबराकर औषधियों के माध्यम से उनके कार्य में रूकावट डाल देते हैं जिससे तीव्र रोग कुछ समय बाद जीर्ण रोग का रूप ले लेते हैं। उदाहरण के लिये सामान्य सर्दी जुकाम जो कि मौसम बदलने के कारण हमारे शरीर की प्रतिक्रिया होती है जिसके कारण मल बाहर निकलना चाहता है लेकिन हम औषधियों को खाकर इसे रोक देते हैं और कुछ समय बाद यही अस्थमा, बोंकाईटिस, सायनस जैसी जीर्ण बीमारियों के रूप में सामने आते हैं। तीव्र रोग हमें हमारी भूल का स्मरण कराते हैं। गलत आहार के कारण उल्टी और दस्त ठण्डी चीजों के अधिक सेवन के कारण सर्दी जुकाम आदि इसके उदाहरण हैं। इसलिये ही इन्हें मित्र कहा गया है क्योंकि सच्चा मित्र ही हमें हमारी भूलों की पहचान करा सकता है। जिससे वह भूल दुहराई न जा सके।

3. **रोग का कारण कीटाणु नहीं–** रोग का मुख्य कारण कीटाणु नहीं है। जीवाणु शरीर में जीवनी शक्ति के हास होने के कारण एवं विजातीय पदार्थों के संग्रह के पश्चात् तब आक्रमण कर पाते है जब शरीर में उनके रहने और पनपने लायक अनुकूल वातावरण तैयार हो जाता है अतः मूलकारण विजातीय पदार्थ है जीवाणु नहीं है जीवाणु तो दूसरा कारण है। उपर्युक्त सिद्धांत से स्पष्ट हो जाता है कि रोग का एक मात्र कारण विजातीय द्रव्य हैं तो कीटाणु रोग का कारण कैसे हो सकते हैं। स्वस्थ शरीर में कीटाणुओं का अस्तित्व नहीं रहता लेकिन इसके विपरीत रोगियों में विभिन्न प्रकार के

कीटाणु प्रवेश करते रहते हैं और रोगी को जर्जर करते रहते हैं। ऐसा क्यों होता है, यह एक प्राकृतिक नियम है कि सृष्टि में जितने पदार्थ हैं इनके सूक्ष्म परमाणु अनवरत रूप से गतिशील रहते हैं। जिन वस्तुओं के परमाणु एक सी गति रखते हैं उनमें परस्पर आकर्षण होता है। और विरूद्ध गति के परमाणु एक दूसरे से भागते हैं। अतः इस सिद्धांत के अनुसार कीटाणुओं का अस्तित्व उन्ही शरीरों में होता है जिनमें पहले से ही विजातीय द्रव्य विद्यमान हो अथवा जो रोग ग्रस्त है या जीवनी शक्ति कमजोर हो क्योंकि विजातीय द्रव्य के कारण जीवनी शक्ति का ह्रास होता है उस अवस्था में कीटाणुओं का प्रवेश शरीर में होता है।

जिस प्रकार गुड़ के पास ही मक्खियां आती है। ठीक उसी प्रकार गंदगी में ही मच्छर आते हैं क्योंकि कीटाणुओं भी जीवित रहने के लिये उनका आहर चाहिये जो कि स्वस्थ व्यक्ति में उन्हें नहीं मिलता और वे जीवित नहीं रह पाते। इसके विपरीत रोगी के शरीर में उनका चौगुना विकास होता है। यही कारण है कि किसी भी प्रकार के कीटाणुओं के संक्रमण में 100 प्रतिशत लोग प्रभावित नही होते वही उसकी चपेट में आ जाते हैं। जिनका रहन सहन सही नहीं है जीवनी शक्ति प्रबल होती है उनमें कीटाणु जीवित नहीं रह पाते इसीलिये वह स्वस्थ रहते हैं। इससे स्पष्ट है कि रोग के प्रभाव का प्रथम कारण एक मात्र विजातीय द्रव्य ही होते हैं कीटाणु नहीं।

4. प्रकृति स्वयं चिकित्सक है–

प्रकृति स्वयं सबसे बड़ी चिकित्सा है शरीर में स्वयं रोगों से बचने व अस्वस्थ्य हो जाने पर पुनः स्वस्थ प्राप्त करने की क्षमता विद्यमान है। प्रकृति जीव का संचालन करती है जो प्रत्येक जीवन के पार्श्व में रहकर उसके जन्म, मरण, स्वास्थ्य एवं रोग आदि का ध्यान रखती है, उस महान शक्ति को जीवनी शक्ति, प्राण आदि कहते हैं। शरीर की समस्त क्रियायें इसी के माध्यम से संपन्न होती हैं। हमारा खाना पीना, बोलना चालना, उठना बैठना सब इसी पर निर्भर है। मां अपने बच्चे के लिये इन सब बातों का जैसे ध्यान रखती है वैसे ही प्रकृति भी हमारा ख्याल रखती है, और जब तक बच्चा मां के पास रहता है वह अपने आप को सुरक्षित महसूस करता है। जिस प्रकार खाना खिलाते समय यदि खाना अटक जाये तो मां बच्चे को पीठ पर जोर से मारती है पानी पिलाती है। ठीक इसी प्रकार से प्रकृति भी हर तरह से ध्यान रखती है। जब खाना गलती से श्वांस नली में चला जाता है तो प्रकृति के समान ही तुरंत खांसी उत्पन्न कर उसे बाहर निकाल देती है।

इसी प्रकार जब कोई भी जहरीली चीज मुंह में चली जाती है तो तुरंत उल्टी होने लगती है और जहर बाहर निकल जाता है। घाव हो जाने पर उसे कौन भरता है, हड्डी टूट जाने पर उसे कौन जोड़ता है। चिकित्सक केवल सहारा देता है, लेकिन हड्डी को जोड़ नहीं सकता। यह कार्य केवल और केवल प्रकृति रूप में मां ही कर सकती है। संसार में प्रकृति से बड़ा चिकित्सक कोई नहीं है, प्रकृति ही सभी साध्य व असाध्य रोगों का उपचार करती है। प्राकृतिक चिकित्सा तो प्रकृति के कार्य में सहायक के रूप में कार्यकरता है।

5. चिकित्सा रोग की नहीं संपूर्ण शरीर की होती है–

प्राकृतिक चिकित्सा में चिकित्सा रोग की नहीं बल्कि रोगी की होती है। अन्य चिकित्सा पद्धतियों में केवल रोग निवारण पर बल दिया जाता है परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा केवल रोग का ही नहीं अपितु संपूर्ण शरीर की चिकित्सा करती है जिससे रोग स्वतः मिट जाता है क्योंकि रोग का मूल कारण तो शरीर में एकत्र विष है। जैसे सिरदर्द होने पर

अधिकांश लोग दवाओं का प्रयोग करते हैं जिससे कुछ समय के लिये दर्द समाप्त हो जाता है लेकिन बार बार होता रहता है क्योंकि उसकी जड़ तो कहीं और ही होती है। प्राकृतिक चिकित्सा में पेट तथा आंतों को साफ करके सिरदर्द को पूर्ण रूप से समाप्त किया जाता है।

इसके साथ ही शरीर के शुद्धि करण से सिरदर्द और अन्यरोग स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा में किसी अंग विशेष को रोगी नहीं माना जाता है बल्कि किसी भी रोग में संपूर्ण शरीर ही रोगी हो जाता है जैसे एक साधारण लगने वाली कब्ज के कारण व्यक्ति का संपूर्ण शरीर ही रोगी हो जाता है। कब्ज के कारण अपच अजीर्ण गैस, ऐसीडिटी, बवासीर, फिसर, त्वचा रोग, अस्थमा, हृदय रोग आदि होते है। सभी रोग का कारण आंतों में रूका हुआ मल है जो विष का रूप धारण कर संपूर्ण शरीर में फैल जाता है। सिर की ओर जाने पर सिर दर्द, बेचैनी, घबराहट आदि होती है इसलिये केवल पेट की चिकित्सा और शरीर की सफाई से ये सारे रोग एक के बाद एक करके समाप्त हो जाते हैं इसलिये केवल चिकित्सा न करके संपूर्ण शरीर की चिकित्सा की जाती है।

6. प्राकृतिक चिकित्सा में निदान की विशेष आवष्यकता नहीं–

प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धांत के अनुसार सभी रोग एक है और उनके कारण भी एक ही हैं ऐसी अवस्था में रोग निदान की विशेष आवश्यकता नही रह जाती है। वर्तमान समय में रोग के निदान के लिये बड़ी बड़ी मशीने व उपकरण प्रयोग में लाये जाते हैं जिनके माध्यम से शरीर में रोग का पता लगाया जाता है जिनके विपरीत प्रभाव रोगी पर देखने को मिलता है। एक्सरे मशीन से ऑखों की रोशनी प्रभावित होती है। गर्भाशय शिशु पर विपरीत प्रभाव पड़ता है यहॉ तक की बच्चा अपंग पैदा हो सकता है।

इस प्रकार की मशीनों के अत्यधिक प्रयोग से रोग निवारण नहीं रोग को बढ़ाया जा रहा है बल्कि शरीर और दूषित होता है इसके अतिरिक्त रोगी पर अत्यधिक आर्थिक दबाव पड़ती है जिससे मानसिक रूप से क्षुब्ध हो जाता है लेकिन प्राकृतिक चिकित्सा में किसी भी उपकरण की सहायता के बिना आकृति निदान की व्यवस्था है रोगी की आकृति को देखकर सिर्फ यह पता लगाना है कि शरीर के किस भाग पर विजातीय द्रव्य की अधिकता है। चहेरे को देखकर, गर्दन को देखकर और पेट को देखकर ही रोगों का निदान किया जाता है जो एक बहुत ही सरल और सहज प्रकिग्रा है। रोगी को किसी प्रकार की परेशानी नही होती और आर्थिक दबाव बिल्कुल नहीं होता है।

7. जीर्ण रोगी के आरोग्य में समय लग सकता है–

जीर्ण रोगी का अर्थ है जिसमें रोग लंबे समय से बैठा है। उसे समाप्त करने में समय लगता है। जीर्ण रोग न तो बहुत जल्दी आते है और न ही पलक झपकते ठीक हो सकते हैं। जीर्ण रोग उस पेड़ के समान होते हैं जो कई वर्षो से अपनी जड़े जमाये हुये हैं इसलिये उसकी जड़े जमीन में बहुत अंदर तक चली जाती है। पेड़ को तने से बहुत जल्दी काटा जा सकता है। इसी प्रकार जीर्ण रोग भी शरीर में बहुत जड़ें बना लेते हैं और उन्हें जड़ से मिटाने में थोड़ा समय लगता है।

वर्तमान समय की चिकित्सा पद्धतियां रोग के लक्षणों को मिटाती है जो कुछ समय के लिये होता है और बार बार उभर कर सामने आती रहती है। क्योंकि जल्दी आराम पाने के चक्कर में वे औषधियों के माध्यम से रोग रूपी पेड़ के तने को काटते हैं जिसके कुछ समय बाद फिर अंकुर आकर वही पेड़ बन जाता है लेकिन प्राकृतिक चिकित्सा रोग को

जड़ से मिटाने का प्रयास करती है और साथ ही जीवनी शक्ति का विकास करती है जो कि औषधियों के सेवन से नष्ट होती है।

यह मनुष्य का दुर्भाग्य ही है कि वह प्रकृति से दूर होता जा रहा है और कृत्रिम दुनियां में जी रहा है। आज की औषधियां इसी का उदाहरण है जिन्हें खा कर मनुष्य सोचता है कि वह स्वास्थ्य को प्राप्त कर रहा है। परन्तु सत्य यह है कि वह खुशी से जहर खा रहा है जो धीरे धीरे उसे अंदर से खाये जा रहा है जिसका पता उसे कुछ समय बीत जाने के बाद लगता है। जब वह एक रोग को दूर करने के लिये ली गई औषधियों के कारण दूसरे रोग को आमंत्रित कर देता है।

प्राकृतिक चिकित्सा में जीर्ण रोगी के स्वास्थ्य लाभ में समय लगने का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि व्यक्ति हर जगह से थक हार कर इसकी ओर मुड़ता है और फिर अपने साथ जगह जगह से एकत्र किया हुआ औषधीय विष लेकर आता है जो प्राकृतिक चिकित्सक के कार्य को और भी बढ़ा देता है। जिससे रोगी के आरोग्य लाभ में समय लग सकता है। इस लिये रोगी को धैर्यपूर्वक प्राकृतिक चिकित्सा करवानी चाहिये जिससे पूर्ण लाभ मिल सके।

8. प्राकृतिक चिकित्सा में दबे रोग उभरते हैं–

प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा रोग भी उभर कर ढीक हो जाते है। वर्तमान औषधीय चिकित्सा में जहॉ उभरे रोग दब जाते हैं, उसके विपरीत प्राकृतिक चिकित्सा में दबे रोग उभरते हैं जिसके कारण कई रोगी अविश्वास करने लगते है कि उनकी बीमारियां बढ़ गई हैं। जबकि बीमारियां बढ़ती नहीं हैं बल्कि अप्रत्यक्ष से प्रत्यक्ष में आ जाती हैं जिससे उनका उपचार किया जा सकता है। प्राकृतिक चिकित्सा में संपूर्ण शरीर का उपचार किया जाता है जिससे संपूर्ण शरीर के विजातीय द्रव्य बाहर निकलते हैं जिससे शरीर में दबे अन्य रोग भी बाहर निकलते हैं जो उचित उपचार से जल्दी ही चले जाते हैं। उभार को चिकित्सकीय भाषा में रोग का तीव्र रोग की अपकर्षावस्था पुराने रोग का प्रत्यावर्तन रोग उपशन, संकट आदि कई नामों से पुकारते हैं

इसका सामान्य अर्थ है कि एक रोग का तीव्र अवस्था में अलग–अलग स्थानों में विष का बाहर निकलना जो उपद्रव कहलाते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा में इसे सकारात्मक रूप में लिया जाता है, क्योंकि इसका अर्थ है हमारी जीवनी शक्ति अपना कार्य रही है। जिस प्रकार एक सामान्य ज्वर की चिकित्सा के समय तीव्र सिरदर्द व पेट दर्द एवं दस्त भी हो सकते हैं। क्योंकि सिरदर्द होने पर हम दवा से दबा देते हैं। इसी प्रकार पेटदर्द होने पर भी हम इसे दवा से दबा देते हैं, और दस्त को रोक देते हैं जिससे मल शरीर में ही अलग–अलग स्थानों पर जमा हो जाता है और प्राकृतिक उपचार के समय यह बाहर निकलने का प्रयास करता है जिससे सभी रोग उभर आते हैं।

एक प्राकृतिक चिकित्सक का कर्तव्य है कि इन उभारों की अनदेखी न करें और तत्काल उनकी चिकित्सा करें। जिससे रोगी की जीवनी शक्ति का अधिक क्षय न हो। रोगी को इससे घबराने की आवश्यकता नही है। रोगी को यह सोचना चाहिये कि उनका रोग जड़ से ही समाप्त हो रहा है जिससे उसके दुबारा हाने की संभावना लगभग समाप्त हो जाती है।

9. प्राकृतिक चिकित्सा में मन, शरीर तथा आत्मा तीनों की चिकित्सा की जाती है–

प्राकृतिक चिकित्सा में शारीरिक मानसिक, आध्यात्मिक तीनों पक्षों की चिकित्सा एक साथ की जाती है। शरीर, मन और आत्मा तीनों के सामंजस्य का नाम ही पूर्ण स्वास्थ्य है क्योंकि

शरीर के साथ मन जब तक स्वस्थ नहीं है तब तक व्यक्ति को पूर्ण स्वस्थ नही कहा जा सकता है। और शरीर, मन तभी स्वस्थ रह सकते हैं जब आत्मा स्वस्थ हो, केवल शरीर को ही स्वस्थ रखना मनुष्य का कर्तव्य नहीं है क्योंकि मन और आत्मा शरीर के अभिन्न अंग है। बिना मन के खुश हुये हमारी इंन्द्रियां कैसे खुश रह सकती है। यदि मन स्वस्थ नहीं हैं तो विशाल काय शरीर भी कुछ समय में समाप्त हो जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा में इन तीनों की स्वास्थ्योन्नति पर बराबर ध्यान रखा जाता है।

यह प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली की सबसे बड़ी विशेषता है कि प्राकृतिक चिकित्सक मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य को उससे शारीरिक स्वास्थ्य से अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं और आत्मिक स्वास्थ्य या बल को सर्वोपरि मानते हैं, क्योंकि शरीर तभी स्वस्थ होगा जब आत्मा और मन स्वस्थ होता है।

भारतीय दर्शन के अनुसार आध्यात्मिक रूप से मनुष्य ही पूर्ण रूप से स्वस्थ होता है वही, जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। क्योंकि आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति ही एक स्वस्थ समाज की स्थापना कर सकता है। जहॉ हिंसा, द्वेष, क्रोध, घृणा आदि विकृत मानसिकता न पनप सके। प्राकृतिक चिकित्सा शारीरिक स्वास्थ्य के साथ ही महत्–तत्व चिकित्सा, राम नाम चिकितसा पर भी बल देती है जिससे मनुष्य आत्म संयम सीख सके और अपनी जीवन शैली को बदलकर संपूर्ण जीवन को उचित दिशा दे सके।

10. प्राकृतिक चिकित्सा में उत्तेजक औषधियों के सेवन का प्रश्न ही नहीं–

प्राकृतिक चिकित्सा में औषधियों का प्रयोग नहीं होता है। प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार आधार ही औषधि है। औषधि उपचार का सिद्धांत है कि रोग बाहरी चीज है जिसका शरीर पर आक्रमण होता है। अतः इसे औषधियों के माध्यम से दूर करना चाहिये। बाहर से आये कीटाणुओं को औषधियों से समाप्त करना चाहिये। जबकि संपूर्ण प्रकार की औषधियां एक प्रकार का विष हैं जिनसे व्यक्ति ठीक कैसे हो सकता है। एक निर्धारित मात्रा से अधिक लेने पर व्यक्ति की मौत हो सकती है लेकिन विष तो विष है आज नही तो कल अपना प्रभाव दिखायेगा ही। क्योंकि एक ही बार में ली गयी नींद की गोलियां व्यक्ति को तुरंत समाप्त कर देती हैं। लेकिन धीरे धीरे ली गयी गोलियां व्यक्ति को पंगु बनाती हैं शरीर को धीरे धीरे खाती हैं आज मिलने वाली दवा पर कुछ समय बाद प्रतिबंध लग जाता है। सभी दवाओं पर सावधानी के निर्देश दिये रहते हैं। प्रो0 ए0 क्लार्क के अनुसार ''हमारी सभी आरोग्यकारी औषधियां विष हैं और इसके फलस्वरूप औषधि की हर एक मात्रा रोगी की जीवनी शक्ति का ह्रास करती है।''

फिर भी मनुष्य उनका उपयोग करता रहता है लेकिन प्राकृतिक चिकित्सा में किसी प्रकार की औषधियों का प्रयोग नहीं किया जाता है। औषधियों को अत्यधिक हानिकारक माना जाता है जिससे रोग कम होने के बजाय बढ़ता जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा मानती है कि शरीर औषधि से नही बल्कि प्रकृति से निर्मित हुआ है इसलिये पंचतत्वीय शरीर की चिकित्सा के लिये पंच तत्वों का ही प्रयोग किया जाता है क्योंकि प्रकृति से बड़ा चिकित्सक और कोई नहीं है। प्रकृति के सभी सप्राण खाद्य पदार्थ ही औषधि है। शुद्ध वायु, धूप, जल आदि ही औषधि हैं जो रोग को दूर करने की क्षमता रखते हैं। अमेरिका के लियेण्डर के अनुसार –''औषधि विज्ञान को जितनी कीटाणुनाशक दवायें मालूम हैं उनसे कही अधिक सूर्य स्नान कीटाणुनाशक शक्ति को बढ़ाता है।'' प्राकृतिक चिकित्सा में कृत्रिम औषधियों का प्रयोग वर्जित माना जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा में विषैली औषधियों को शरीर के लिये अनावश्यक ही नहीं घातक भी समझा जाता है। प्रकृति चिकित्सक है दवा नहीं। औषधि का

काम रोग छुड़ाना नहीं है बल्कि यह वह सामग्री है जो प्रकृति के द्वारा मरम्त के काम में लगाई जाती है। इस लिये प्राकृतिक चिकित्सा में सभी सप्राण खाद्य सामग्री ही औषधि हैं।

3.4 प्राकृतिक चिकित्सा का महत्व–

प्राकृतिक चिकित्सा रोगों को निर्मूल करने की स्वाभाविक और हर तरह से लाभकारक प्रणाली है। प्राकृतिक चिकित्सा एक ऐसी चिकित्सा पद्धति है जिसमे प्राकृतिक साधनों एवं श्रोतों का उपयोग व्यक्ति के निरोग एवं स्वस्थ बनाने के लिए किया जाता है। इस पद्धति का यह विश्वास है कि व्यक्ति प्रकृति का अभिन्न अंग है तथा प्रकृति के तत्वों से ही बना हैं इन पंचमहाभूतों से शरीर की रचना करते है। जब शरीर में इन तत्वों में असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है तो दूषित पदार्थ एकत्रित होने लगते है और व्यक्ति रोगी हो जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा में मिट्टी, जल, वायु, भाप आदि का उपयोग रोगों को दूर करने में किया जाता है। यदि उसे अच्छी तरह समझ लिया जाय अथवा किसी जानकर से थोड़े दिन तक उसकी शिक्षा प्राप्त कर ली जाए तो रोगो का निराकरण बिना किसी खास खर्च और कठिनाई के किया जा सकता है। इसी उद्देश्य से यहाँ विभिन्न रोगों के लिए उपयोगी चिकित्सा विधियों को समझाया गया है। प्रकृति के सामान्य नियम तो प्रत्येक रोग में लागू होते है। परन्तु किस रोग में किस तत्व द्वारा चिकित्सा की जाए यह तो अनुभवी चिकित्सक ही बता पाता है। आधुनिक चिकित्सा के अन्तर्गत दवा देने के बाद डाक्टर का कार्य समाप्त हो जाता है। डाक्टर रोगी के सम्बन्ध में कोई दिलचस्पी नहीं लेता। इस चिकित्सा से कुछ दिन के लिए रोग दब जाता है किन्तु नष्ट नहीं होता। जिन कारणों से रोग उत्पन्न हुआ था वे चिकित्सा के उपरान्त भी मौजूद रहते है और समय पाकर पुनः अभर जाते है। स्थायी लाभ नहीं हो पाता। परन्तु प्राकृतिकक चिकित्सा में ऐसा नहीं होता।

3.5 वर्तमान युग में प्राकृतिक नियमों के सम्बन्ध मे जानकारी का अभाव

आधुनिक युग में साधारण व्यक्ति स्वास्थ्य के नियमों से सर्वथा अनभिज्ञ होता है जिसका प्रमुख कारण प्राकृतिक नियमों के सम्बन्ध में हमारा अज्ञान एवं उपेक्षा ही है। प्रकृति साधारण अवस्था में शरीर के विकारों को बाहर निकालने के लिए जिन मल, मूत्र, पसीना और साँस के उपायों से काम लिया करती है एवं रोगी होने पर हम भी उन्हीं को काम में लाते और विशेष विधियों द्वारा इन्हीं चारों मार्गों से शरीर में स्थित विकारों को तेजी से निकालने का प्रयत्न करते तो हम दवाओं की अपेक्षा बहुत सहज में पूर्ण रूप से रोग मुक्त हो सकते है। प्राकृतिक चिकित्सा संयम की शिक्षा होती है। यदि प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करते है तो स्वास्थ्य लाभ करना असम्भव है। रोगो का सबसे बड़ा कारण कब्ज होता है। कब्ज को रोगों की जननी कहा जा सकता है। पेट में गया हुआ आहार जब परिपक्व होकर ठीक समय पर बाहर नहीं निकल पाता तब वह दूषित तत्वों को उत्पन्न करने लगता है और वही रोगी के मूल कारण होते है ऐसी अवस्था में आहार में सुधार करके एनिमा आदि द्वारा मलाशय की सफाई कर डालने से आधा रोग समाप्त हो जाता है। इसके पश्चात जो दूषित तत्व शरीर के विभिन्न अंगों एवं में फैले हुए हो उनको किसी प्रकार के पसीना लाने वाले स्नान से त्वचा द्वारा निकाल दिया जाए तो रोग की जड़ ही प्रायः समाप्त हो जाती है। आवश्यकतानुसार अधिक मात्राा में जल पीकर मूत्रर्माग द्वारा भी विजातीय द्रव्यों के निकालने में सहायता पहुँचाई जा सकती है। यदि पाचन शक्ति बिगड़ी है तो उसका इलाज है कि जब तक अच्छी भूख न लगे भोजन न किया जाय और पेट भर

न खाओ अपितु कुछ भूखे रह कर खाना खाना छोड़ दो। यदि इन नियमों का पालन करना प्रारम्भ कर दिया जाए तो कभी अमाशय का कष्ट नहीं होगा।
प्राकृतिक चिकित्सा प्रत्येक स्थिति में रोगी की सहायता करती है, लेकिन यह कितनी प्रभावपूर्ण है इस बात पर निर्भर करता है कि रोगी अपने रोग को दूर करने में प्राकृतिक चिकित्सा के नियमों का पालन कर रहा है तथा इसके प्रति मन से कितना लगाव उत्पन्न कर पाया है। प्राकृतिक चिकित्सा एक कला के साथ–साथ विज्ञान भी है जिस प्रकार अन्य विज्ञानों को सर्व सत्य होना बताया जाता है उसी प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा के नियमों का भी परीक्षण किया जा सकता है और वह सदैव सत्य होते है।

अभ्यास प्रश्न

1. **प्राकृतिक चिकित्सा के मूलभूत सिद्धान्त कितने है**?

अ. 8 ब. 10
स. 6 द. 12

2. **चिन्ता कैसा रोग है?**

अ. मानसिक ब. भावनात्मक
स. शारीरिक द. इनमें से कोई नहीं

3. **जीवनी शक्ति बढ़ाने के स्त्रोत है–**

अ. संतुलित आहार ब. प्राणायाम
स. आसन द उपर्युक्त सभी

4. **रोग कहते है?**

अ. बीमारी ब. असुख
स. व्यथा द. उपर्युक्त सभी

5. **जीर्ण रोग कौन से होते है?**

अ. नये ब. पुराने
स. तीव्र द. मंद

3.6 सारांश

प्राकृतिक चिकित्सा के दस मूलभूत सिद्धान्त हैं– 1. सभी रोग एक है और उनका कारण भी एक है और उनका उपचार भी एक है। 2. तीव्र रोग शत्रु नहं मित्र होते हैं। 3. रोग का कारण कीटाणु नहीं है। 4. प्रकृति स्वयं चिकित्सक है। 5. चिकित्सा रोग की नहीं सम्पूर्ण शरीर की होती है। 6. प्राकृतिक चिकित्सा में निदान की विशेष आवश्यकता नहीं है। 7. जीर्ण रोगी के आरोग्य लाभ में समय लग सकता है। 8. प्राकृतिक चिकित्सा में दबे रोग उभरते है। 9. प्राकृतिक चिकित्सा में मन, शरीर तथा आत्मा तीनों की चिकित्सा की जाती है। 10. प्राकृतिक चिकित्सा में उत्तेजक औषधियों के सेवन का प्रश्न ही नहीं है। वर्तमान युग में प्राकृतिक नियमों के संबंध में जानकारी का अभाव है। प्राकृतिक चिकित्सा अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

3.7 शब्दावली

मिथ्योपचार	–	गलत उपचार
आप्राकृतिक	–	जो प्राकृतिक न हो
जीर्ण रोग	–	पुराने रोग
श्वासोच्छवास	–	श्वास लेना व छोड़ना

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. स
2. अ
3. द
4. द
5. ब

3.9 सन्दर्भ गंन्थ सूची

1. डॉ0 राकेश जिन्दल–प्राकृतिक आयुर्विज्ञान–आरोग्य सेवा प्रकाशन पंचवटी, उमेश पार्क, मोदी नगर, उत्तर प्रदेश
2. डॉ0 प्रयाग दीन मिश्र–प्राकृतिक चिकित्सा सिद्धान्त एवं व्यवहार, मधुकर द्विवेदी निदेशक उ0 प्र0 हिन्दी संस्थान लखनऊ
3. पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य–गायत्री महाविज्ञान संयुक्त संस्करण–युग निर्माण योजना गायत्री तमोभूमि मथुरा

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्राकृतिक चिकित्सा के कितने सिद्धान्त है? उन सिद्धान्तों का संक्षेप में वर्णन कीजिए?

2. प्राकृतिक चिकित्सा के महत्व को समझाइए एवं वर्तमान युग में प्राकृतिक चिकित्सा के नियमों के सम्बन्ध में जानकारी के अभाव को स्पष्ट कीजिए?

इकाई –4 प्राकृतिक चिकित्सा का प्रार्दुभाव एवं विकास

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 प्राकृतिक चिकित्सा का प्रार्दुभाव एवं विकास
4.4 सारांश
4.5 सन्दर्भ ग्रन्थ
4.6 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्राकृतिक चिकित्सा मुख्यतयः पांच आधारभूत तत्वों के प्रयोग पर आधारित है। इन तत्वों की उपस्थिति अथवा आगमन पृथ्वी, आकाश, वायु, सूर्य और जल के आगमन से जुड़ा है। अर्थात् ये पांचो तत्व की उत्पत्ति जब से है तभी से प्राकृतिक चिकित्सा की उत्पत्ति मानी जा सकती है। प्राचीन काल में इन तत्वों के सेवन अथवा नजदीकी बनाना स्वतः ही रोगो का उपचार कर देता था। इन तत्वों के साथ रहने से शरीर में रोग पैदा नहीं हो होते थे। रोग तो इन तत्वों के अधिक व कम होने की स्थिति में ही पैदा होते है। यह शरीर इन्ही पांच तत्वों से मिलकर के बना है। रोग की अवस्था में इन्ही तत्वों की भूमिका विशेष रू से पाई जाती है। इस कारण इन्हीं तत्वों द्वारा उनकी चिकित्सा सम्भव होती है। उदाहरण के लिए मकान की दीवारें, ईट, रेत व सीमेन्ट से बनाई जाती है तो उनके टूटने व खराब होने की स्थिति में उनको ईट, रेत, मिट्टी से ही मरम्मत करके ठीक किया जाता है। इसी प्रकार से शरीर के रोगो को भी उन्ही तत्वों से ठीक किया जा सकता है जिनसे शरीर का निर्माण हुआ है। अन्य किसी पदार्थ या चिकित्सा विधि द्वारा नहीं। इसलिए पंच तत्वों का सेवन करना ही स्वास्थ्यकारी माना गया है। प्रकृति में उत्पन्न मानव ही नहीं अपितु सभी प्रकार के जीवन इन्ही तत्वों से अपना स्वास्थ बनाये रखते है। जैसे–जैसे प्राकृति के इन पांच तत्वों में विकार अथवा दोष आने प्रारम्भ हुये उसी के साथ–साथ प्राणी मात्र के शरीर पर भी दुष्प्रभाव पड़ने लगा। जैसे–जैसे प्राकृति से हम दूर होते गये वैसे–वैसे इन तत्वों की कमी हमारे शरीर में आने लगी तथा रोग बढ़ते चले गये । हमें रोग की अवस्था में उपचार की आवश्यकता होने लगी। उपचार हेतु नवीन चिकित्सा पद्धतियों का विकास होने लगा तथा प्राकृतिक चिकित्सा की पंच तत्व चिकित्सा (जो श्रटि के प्रारम्भ में एक मात्र चिकित्सा पद्धति हुआ करती थी) विलुक्त होनी शरू हो गई जैसे–जैसे अन्य चिकित्सा पद्धतियों के साथ आधुनिक चिकित्सा पद्धति का भी आगमन हुआ उससे प्राकृतिक चिकित्सा पूरी तरह से खत्म हो गई। 19वीं सदी में असाध्य रोग पनपने प्रारम्भ हुऐ तब दुबारा से इस पंचतत्व चिकित्सा के प्रयोग एवंम् महत्व को समझना आवश्यक हो गया। आइये इसके आगे इसका प्रचलन एवम् विकास किस प्रकार हुआ तथा किस रूप में प्रारम्भ हुआ तथा असाध्य रोगों में इसके प्रयोग कितने सफल हुये व चिकित्सा विज्ञान इसकी आवश्यकता पर बल दिया जाने लगा। केवल भारत वर्ष में ही नहीं अपितु इसकी शुरूआत विदेशों में सर्वप्रथम देखने को मिलती है। आइये विदेशों तथा भारत वर्ष में इसका विकास किस प्रकार हुआ, इसका अध्ययन करें।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने का उद्देश्य यह है कि प्राकृतिक चिकित्सा किस समय से हम लोगो के सामने आई और उसके बाद विदेशों में और भारत में उसका विकास कैसे हुआ। इसका अध्ययन करने के लिए हम उन सभी प्राकृतिक चिकित्सा के तत्वों का तथा उन तत्वों द्वारा चिकित्सा करने वाले चिकित्सकों के विषय में भी अध्ययन करेंगे ।

4.3 प्राकृतिक चिकित्सा का प्रार्दुभाव एवम् विकास

जैसा कि आपने ऊपर अध्ययन किया कि जब से श्रृष्टि है तभी से पंचतत्व की उत्पत्ति भी स्वीकार की जाती है। उसी प्रकार से प्राणी के जीवन में इतिहास के साथ–साथ पंचतत्व के भौतिक शरीर की उत्पत्ति भी जुड़ी हुई है। पंचतत्व के इस भौतिक शरीर के लिए पांचो तत्व–पृथ्वी–आकाश–जल–अग्नि तथा वायु की आवश्यकता ही जीवन है। प्राकृतिक चिकित्सा का मौलिक सिद्धान्त है कि शरीर निरन्तर स्वस्थ रहने का प्रयास करता है। प्राकृतिक चिकित्सा का धर्म ही स्वास्थ है एवम् स्वस्थ मानव का जन्म सिद्ध अधिकार न होकर स्वरूप सिद्ध अधिकार है अर्थात् हमारा स्वभाव ही स्वास्थ है। जो शरीर के अन्दर है बीमारी बाहर है जो गलतियां करने से बाहर से शरीर में लाते है। प्रकृति ने श्रृष्टि का निर्माण करते समय कुछ नियम तथा विधान बनायें जिन पर चलकर ही जीव स्वास्थ को प्राप्त कर सकता है। उस विधान के अनुसार चलते हुये मृत्यु को छोड़कर प्रत्येक प्राणी अपनी निर्धारित आयु को खोकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। वास्तव में प्रकृति द्वारा स्वास्थ शरीर की एक ऐसी सामान्य तथा सुअविवस्थित अवस्था है जो प्रकृति के नियमों पर चलकर उसके अनुसार अपने जीवन को ढालकर प्राप्त की जा सकती है। स्वस्थ रहना जीवन तथा प्रकृति का नियम है। रामायन के रचियता राम भक्ति तुलसीदास ने मानव देह का निर्माण करने वाले पांच तत्वों का वर्णन इस प्रकार किया है।

क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा ।
पंच तत्व यह रचित शरीरा ।।

इस संसार में सब कुछ इन उपरोक्त पंच तत्वों की ही देन है और प्राकृतिक चिकित्सा भी मानव विकास के साथ–साथ इन्हीं पंच तत्वों से विकसित हुई है।

प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार–प्रसार भारत में प्रमाणिक रूप से वेदो के समय से ही रहा है जिसके प्रमाण प्राचीन संस्कृति ग्रन्थों में पाये जाते है। उस समय मनुष्य कृत्रिम जीवन न जीकर पूर्ण रूप से प्रकृति पर निर्भर था। मनुष्य के लिए वायु बहुत जरूरी है अर्थात् सांस के लिए बिना वह जीवित नहीं रह सकता, शरीर की सम्पूर्ण क्रियायें वायु पर ही निर्भर करती है। वायु के बिना कुछ भी सुनना, सूंघना, भोजन ग्रहण करना, मल विर्सजन करना, यहां तक की वायु के बिना शरीर का अस्तित्व ही असम्भव है। दूसरा आवश्यक तत्व है पानी जो शरीर के तापमान को संतुलित रखता है शरीर से गन्दगी को बाहर निकालता है तथा रक्त को शुद्ध बनाये रखता है तभी तो पृथ्वी पर तीन भाग पानी और एक भाग पृथ्वी है। शरीर में भी पानी की मात्रा बहुत अधिक पाई जाती है। जो कि लगभग तीन भाग में से दो भाग के बराबर होती है पानी के बाद धूप से ही हमारे शरीर में मुख्य तत्व जीवित और स्वस्थ बने रहते है। सूर्य की गर्मी से शरीर को नुकसान पहुंचाने वाले करोड़ो कीटाणु नष्ट हो जाते है तथा शरीर की हड्डियां व मांसपेशियां मजबूत बनती है। अर्थात् इसके बिना शरीर पीला पड़ जायेगा तथा हड्डियां कमजोर होकर शरीर को रोग ग्रस्थ बना देंगी, चौथा तत्व मिट्टी में उपस्थित विभिन्न खनिज व लवण से शरीर की

रचना होती है। मिट्टी से पैदा हुये पदार्थो को खाकर ही प्राणी जीवित रहता है तथा मिट्टी के द्वारा बने घर एवम् सड़क इत्यादि रोज की आवश्यकता है। पांचवा तत्व आकाश तत्व के प्रभाव से ही जीवन देने वाले दूसरे तत्वों को प्रेरणा तथा बल प्राप्त होता है। आकाश की छत्र छाया में ही हम अपने जीवन का अस्तत्व प्राप्त करते है।

अतः इन पांच तत्वों के बिना हमारी श्रृष्टि तथा हमारा जन्म दोनो ही असम्भव हो जाते है। मानव के विकास से भी पहले इन तत्वों की उपस्थिति सिद्ध होती है। क्योकि मानव के विकास से पहले पेड़–पौधे, पशु–पक्षी, इन्ही तत्वों के उपयोग से फलते फूलते थे।

प्रारम्भ में जब चिकित्सा विज्ञान का विकास नहीं हुआ था उस समय इन्ही पांच तत्वों के आधार पर आरोग्य प्राप्त होता था। यदि रोग आ भी जाते थे तो उन्हे देवताओं का अभिशाप या अपने कुकर्मो का फल मानकर कभी देवताओं को प्रशन करते थे कभी भूत विसाच की झाड़ फूंक करते थे या फिर गर्म छड़ो से जला कर उनका इलाज किया जाता था। उन्ही दिनों में मानव को कुछ पशु पक्षियों के स्वास्थ खराब होने पर वे जंगल में जाकर खाना–पीना छोड़कर, मिट्टी में लेटकर, अथवा पानी मे बार–बार स्नान कर, अपने को स्वस्थ कर लेते थे। इसी से ज्ञान प्राप्त कर मनुष्य भी बीमार होने पर व्रत, उपवास को ही अचूक चिकित्सा मानते थे। पुराण काल में ''राजा दिलीप'' दुग्धकल्प और राजा दशरथ की चारों रानियों ने एक ही प्रकार के फल का कल्प करके ही सन्तान प्राप्त की थी। औषधि का प्रयोग रावण काल या रामायण काल से शुरू होने का इतिहास जानने को मिलता है रावण द्वारा मदिरा पान करने तथा भोग विलास में डूबे रहने के कारण उत्पन्न होने वाले रोगो के लिए उपवास इत्यादि न करने के कारण वैद्य द्वारा कुछ जड़ी बूटियां खोजी गई जिनके द्वारा लेप व काडे तैयार करके दिया जाना प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार से औषधि द्वारा उपचार दिया जाना आसान लगने लगा और औषधियों का चलन प्रचलित होकर धीरे–धीरे लोकप्रिय बन गया और प्राकृतिक चिकित्सा को लोगों ने अपनाना बन्द कर दिया।

महाबग्ग नामक बोधग्रन्थ में वर्णन आया है कि साप द्वारा एक बोध भिच्छु को काट लेने पर भगवान बुद्ध से विष को खत्म करने के लिए चिकनी मिट्टी, गोबर, मूत्र एवम् राख के उपयोग के विषय में बताया था जिसमें कहा गया था कि इनमें से किसी एक का भी अथवा सभी का प्रयोग विष नाश करने में किया जा सकता है।

यह घटना ढाई हजार वर्ष पूर्व की बताई जाती है। इसी तरह से भगवान बुद्ध ने ही एक दूसरे भिच्छु के बीमार होने पर भांप स्नान, जल स्नान तथा ऊष्ण जल स्नान के प्रयोग की भी आज्ञा दी थी। उस समय में ना तो अनेको प्रकार की औषधियां थी न ही बड़े–बड़े अस्पताल पाये जाते थे न डाक्टर दिखाई पड़ते थे फिर भी लोग लम्बी–लम्बी आयु प्राप्त करते थे और प्राकृतिक रूप से स्वस्थ रहते हुये शारीरिक मानसिक तथा आत्मिक तीनों प्रकार की शक्तियां जीवन भर वलवती रहती थी। उस समय के लोग न जल्दी बीमार होते थे न ही जल्दी बूड़े होते थे और न ही जल्दी मृत्यु को प्राप्त होते थे क्योकि वे लोग प्राकृति की गोद में जन्म लेते हुये वहीं पर पलते बढ़ते जीवन यापन करते थे। उन लोगो की तीर्थ स्थानों की यात्रायें व्रत, उपवास, सात्यक भोजन तथा राम–नाम जाप करते रहने से स्वास्थ लाभ तो मिलता ही था साथ में ये सब धर्म का अंग भी बन जाता था। इन्ही धार्मिक भावनाओं के चलते स्वास्थ बना रहता था। रोगों में प्राकृतिक उपचार केवल भारत में ही नहीं अपितु संसार के दूसरे देशों में भी किसी न किसी रूप में इसका प्रयोग किया जाता था।

ईशा से कई सौ वर्ष पहले प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली के जनक माने जाने वाले हिपोक्रेट्रीज द्वारा अपने रोगियों पर रोजाना सूर्य स्नान अथवा सूर्य किरण द्वारा चिकित्सा करवाते थे। 18वीं शताब्दी के मध्य से ही प्राकृतिक चिकित्सा का फिर से प्रार्दुभाव होना शुरू हुआ और संसार के विद्वानों ने महसूस किया कि औषधि चिकित्सा एक ऐसोभाविक एवम् कृत्रिम चिकित्सा प्रणाली तो है ही साथ ही यह महंगी भी है। जो गरीब जनता के लिए कठिन भी है। साथ ही दवा लेते–लेते दवा लेने की आदत पड़ जाती है तथा मानव की जीवनी शक्ति कमजोर हो जाती है। प्राकृतिक चिकित्सा का संसार से विलुप्त हो जाने के बाद उसका फिर से स्थापित करने में विदेश में रहने वाले कुछ प्रमुख डॉक्टरों का विशेष योगदान माना जाता है।

आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा के इतिहास में डाक्टर जेम्स क्यूरी वह सरजॉन फ्लॉयर का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। डॉ0 जेम्स क्यूरी ने सन् 1717 ई0 के आस–पास जल चिकित्सा सम्बन्धी पुस्तक लिखकर प्रकाशित करवा दी। डॉ0 इसाक जेनिग्स ने सन् 1788 से अमेरिका में प्राकृतिक चिकित्सा शुरू की। इसके बाद भी प्राकृतिक चिकित्सा पूर्ण रूप से अपना प्रभाव स्थापित नहीं कर पाई थी और ना ही इसका प्रचार हो पाया था। इसके बाद विनसेंज प्रिस्निज ने आधुनिक चिकित्सा प्रणाली पर अनुसंधान कार्य करते हुये इसकी प्रमाणिकता सिद्ध कर दी। उस समय सीलास ओ0 ग्लीसन जेम्स शी0 जैक्सन तथा तीन जर्मनी के प्राकृतिक चिकित्सकों ने इस पद्धति को पुर्नजीवित करने के लिए, अथक परिश्रम करके सफलता प्राप्त की। स्क्राध ने भी अन्य चिकित्सकों की तरह सबसे पहले अपने घुटने की चोट जल द्वारा चिकित्सा ठीक की तथा घोड़े व कुत्तों पर सफल प्रयोग के बाद अपने विरोधियों का मुंह बन्द करते हुये प्राकृतिक चिकित्सा से खूब नाम कमाया तथा उनके सुपुत्र इमेन्यूल स्क्राथ ने इसी चिकित्सा पद्धति को अपनाकर अनेको (पादरी थे) ने बड़े उत्साह के साथ जल चिकित्सा पर बहुमूल्य अविष्कार किये तथा जल चिकित्सा व जड़ी बूटी चिकित्सा पर आधारित एक चिकित्सालय का संचालन किया। जर्मनी में पचास हजार से ज्यादा संस्थायें उनके नाम से प्रचलित है तथा उन्होने जल चिकित्सा पर एक पुस्तक ''माई वाटर क्योर'' नाम से लिखी जो आज भी पढ़ी जाती है। ऐसे महान चिकित्सक का नाम ''फादर सोवस्टियन नीप'' था।

अर्नाल्ड रिक्ली जो एक व्यापारी थे बाद में सम्पूर्ण उन्होने प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार में लगाकर उन्होने अपने देश आस्ट्रिया में सन् 1848 ई0 में धूप तथा वायु का ऐनिटोरिम स्थापित किया जो अपनी तरह का सबसे पहला प्राकृतिक चिकित्सा भवन था। इसकी नकल बाद में लगभग सभी प्राकृतिक चिकित्सकों ने की। इन्होने रोगियों को सन्तुलित व सात्विक आहार पर रखते हुये वायु तथा सूर्य किरण द्वारा सभी रोगो को ठीक करने में सफलता प्राप्त की। डॉ0 मेलजर, डॉ0 थियाडोंर हैन तथा डॉ0 रसे के द्वारा स्थापित प्राकृतिक चिकित्सालय में तथा आश्रम में डॉ0 लुई कूने ने पहले तो अपनी चिकित्सा करवाई। उसके बाद इससे इतने प्रभावित डॉ0 लुई कूने हो गये कि उन्होने ही प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति को एक नया रूप देकर अपना नाम रोशन किया। प्रिस्निज नीप तथा कूने द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति की जल चिकित्सा प्रणाली को दोबारा जीवित करके उसको वर्तमान उन्नति के शिखर पर पहुंचाने का कार्य किया। उस समय में प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति को लुई कूने की चिकित्सा प्रणाली के नाम से ही लोगों ने पहचान बना ली। डॉ0 कूने द्वारा जर्मन भाषा में लिखित The New Science of

Healing और The Science of facial expression" पूरे विश्व में प्रसिद्ध हो गई। डॉ0 कूने को 20 वर्ष की आयु में मस्तिष्क, फेफड़े तथा पेट के फोड़े जैसे असाध्य रोग आ गये थे जो औषधि चिकित्सा से ठीक ना हो पर डॉ0 कूने प्राकृतिक चिकित्सा में आए और ठीक होने पर बहुत बड़े चिकित्सक बनकर एक विशेष स्वास्थ्य गृह (प्राकृतिक चिकित्सालय) स्थापित कर दिया।

डॉ0 ओलिवर वेण्डेल, डॉ0 ओबरानकी, डॉ0 जे0 विलसन, डॉ0 क्लार्क तथा डॉ0 हेनरिच लेमैन सभी औषधी प्रणाली के घोर विरोधी व प्राकृतिक चिकित्सा के सबसे बड़े समर्थक बन चुके थे । डॉ0 हेनरिच लेमैन एलोपैथी के डॉ0 होकर भी आहार विज्ञान पर अनुसंधान करने में सफलता प्राप्त की। संसार में प्रसिद्ध पुस्तक 'रिटर्न टू नेचर' के लेखक डॉ0 एडोल्फ जुस्ट (Adolf Just) ने भी जर्मन में मिट्टी चिकित्सा तथा अपने मालिश किये जाने की क्रियाओं को प्रतिपादित किया। एक ओर एलोपैथी के चोरी के डॉ0 हेनरी लिण्डल्हार भी आखिर प्राकृतिक चिकित्सा के अनुयायी बन गये। ये अमेरिका में प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्तों को अलग करते हुये प्राकृतिक चिकित्सा के साथ होम्योपैथिक दवाईयां भी साथ में सेवन करा देते थे। ये पुतली द्वारा निदान के गहरे समर्थक थे। ये कहते थे कि तीव्र रोग स्वंय अपनी चिकित्सा करते थे। इस पर उन्होने भी कई पुस्तके लिखी थी।

जिनमें चक्षु विज्ञान (IRIDIAGNOSIS) और The Philosophy of Natural Therapentic पूरे विश्व में प्रसिद्ध है। बर्नर में कफेडन की तरह की एडवर्ड हूकर देवी (Edward Hooker Dewey) भी 30 वर्ष तक उपवास पर अनुभव प्राप्त कर उन्होने No Break Fast Plan के नियम को सत्य सिद्ध कर स्वास्थ्य हेतु प्रातः काल आहार ना ग्रहण करने की शिक्षा दी। इन्होने उपवास व भोजन का सन्तुलन बनाये जाने पर विशेष ध्यान देकर प्राकृतिक चिकित्सा को एक नया स्वरूप प्रदान किया। इसी प्रकार के प्रचार–प्रसार में राबर्ट हावर्ड (Rabert Howard) तथा फादर नी पके प्रिय शिष्य बेनीडिक्ट लुस्ट (Benedict Lust) ने अमेरिका में 'नीप वाटर क्योर' नामक व नेचर्स–पाथ नामक पत्र प्रारम्भ करते हुये उन्होने ''अमेरिका स्कूल आफ नेचुरोपैथी'' स्कूल स्थापित किया जो बाद में ''यंग बार्ल्स अस्पताल'' बन गया। एक ओर कालेज ''अमेरिका स्कूल ऑफ केरोप्रैक्टि्स'' की भी स्थापना की जिसके विद्यार्थी आज संसार में सभी जगह काम कर रहे है। इन्होने पूरा जीवन प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार व विकास में लगा दिया। कई भाषाओं में पुस्तकें भी लिखी।

डॉ0 एण्डयु ही स्टिल ने आस्टियोपैथी को जन्म दिया। डॉ0 डी0डी0 पामर नेकेरोपैथी को स्थापित किया। डॉ0 हेरीबेन्जायिन (Dr. Harry Benjaniun) जो लन्दन से थे और आंखे खराब होने पर उन्होने डॉ0 बेट्स द्वारा लिखित ''चस्मे के गैर पूर्ण दृष्टि'' पढ़ कर अपनी आंखो को पूरी तरह ठीक किया और उसके बाद "your diet in health & dicease" व Every Body's Guide to nature cure तथा Better sight with out glosses नामक पुस्तके लिखी। इग्लैंण्ड के ही डॉ0 स्टेनली लीफ (Dr. Stanley Life) जो Health for all के सम्पादक रहते हुये "Diet Reform Simplyfied" और How to feed Children from Infancy on Ward नामक पुस्तके लिखी तथा एक प्राकृतिक चिकित्सालय "Life Nature care Resort" स्थापित किया। लंदन में आज

''ब्रिटिश कॉलेज आफ नेचुरोपैथी'' आपके मार्गदर्शन में आगे ही आगे बढ़ रहा है। आप डॉ0 मेकफेडन के अमेरिका स्थिति चिकित्सालय में प्रशिक्षित होकर ही इग्लैण्ड प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार हेतु आकर कार्य करना प्रारम्भ किया।

डॉ0 डमर, डॉ0 डैन्सविली, डॉ0 सर विलियम अवुर्थनाटलेन तथा डॉ0 रेडडीमालेट (Reddie Mallett) आदि सभी ने प्राकृतिक चिकित्सा का भरपूर प्रसार–प्रचार किया। डॉ0 सर विलियमनाट द्वारा एक पुस्तक Good Health लिखी। डॉ0 रेडडीमालेट द्वारा लिखी पुस्तक Nature's ways प्रसिद्ध हुई। प्रो0 आर्नल्ड एहरेट (Prof. Arnold Ehret) ने Rational Fasting और Muceless Diet Healing System दो प्रसिद्ध पुस्तके लिखी। डॉ0 बर्नर मैक्फेडन Physical Culture पत्रिका के सम्पादक तथा Book of Health fasting for Health तथा Martaddens Encyclepedia for Physical Culture आदि बहुत सी किताबें लिखकर जीवन भर प्राकृतिक चिकित्सा में उपवास विज्ञान के प्रर्वतक बनें। आपको Father of Physical Culture की उपाधि भी प्रदान हुई।

डॉ0 के0एच0 कैलोग को अमेरिका में मालिश, धूप चिकित्सा, आहार चिकित्सा आदि पर विभिन्न पुस्तकों का लेखन किया। जिनमें रेसनल हइड्रोथरेपी पूरे विश्व में आज भी प्रसिद्ध है। डॉ0 सरविलयम एवम् डॉ0 रसैलटी ट्राल दोनो ही एलोपैथी के डॉ0 थे परन्तु उसके पश्चात प्राकृतिक चिकित्सा के विश्व विख्यात चिकित्सक एवम् लेखक बनें तथा अनेको पुस्तकों के साथ–साथ कालेजों की स्थापना भी की। डॉ0 राबर्ट वाल्टर, डॉ0 वैल, डॉ0 सेलमन, डॉ0 विलियम, डॉ0 हाबर्ट, डॉ0 ओसवाल्ड, डॉ0 पेज, डॉ0 हैन, डॉ0 जॉन, डॉ0 पीजली, डॉ0 विन्टर, डॉ0 ऑटो कार्क, डॉ0 एडगर सैक्सन, डॉ0 जे0सी0 थामसन, डॉ0 इलियट, डॉ0 विन्टर, डॉ0 एडविन, डॉ0 मारग्रेट बैटी, डॉ0 शेल्टन, प्रो0 एफ0ई0 विल्ज, डॉ0 मिल्टन पावले आदि ने विभिन्न देशों में विभिन्न प्रकार से अपनी पुस्तकों अथवा प्रचार माध्यम द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा को बहुत सम्मान दिलाया। पत्र पत्रिकाओं तथा अनेको अनुसंधान करते हुये विश्व के करोड़ो लोगो ने स्वंय के रोग तथा अन्य लोगो के रोगो की भी सफलतापूर्वक चिकित्सा करके संसार भर में इस पद्धति को महत्वशाली बनाने में योगदान दिया। ईरान देश के विश्व प्रसिद्ध आहार द्वारा चिकित्सा के विशेषज्ञ होवानैसियन (एतेरहोव) आहार विज्ञान के क्षेत्र में क्रान्ति पैदा कर दी थी। उन्होने मुख्य रूप से अथक्त अर्थात् कच्चा आहार ही सर्वोत्तम आहार सिद्ध कर दिखाया था। इससे केवल जन साधारण प्राणी द्वारा ही आहार में कच्चा आहार पर रहना अथवा आंशिक रूप से भांप द्वाराउबला आहार लेने के साथ–साथ फाईव स्टार होटलों में भी विभिन्न देशों में उपलब्ध होना प्रारम्भ हो गया था। आज भी अपक्व आहार से करोड़ो लोग अपनी दिनचर्या में इसे अपनाकर अपने रोगो से मुक्ति पा रहे है। इगलैण्ड में तो इतने प्राकृतिक चिकित्सक हुये है कि वहां सभी ने मिलकर एक नेचुरोपैथस एसोशिएशन तक बना रखी थी, जिसका सदस्य बनना ही एक उपलब्धी माना जाता था।

आइये अब हम अध्ययन करते है कि भारत वर्ष में प्राकृतिक चिकित्सा का पुर्नउद्धार व प्रचार–प्रसार किन महानुभावों द्वारा किया गया :–

भारत वर्ष में श्री डी0 बैन्कट चेलापति शर्मा ने सन् 1894 उसके बाद बिजनौर निवासी कृष्ण स्वरूप ने 1904 के आस–पास लुईकुने की प्रसिद्ध पुस्तक New Science of Healing का हिन्दी तथा उूर्द भाषा में अनुवाद करने के पश्चात भारत में प्राकृतिक चिकित्सा के

प्रयोगो को सरलता से समझते हुये उनको अपनाना प्रारम्भ कर दिया। अहिंसा के पुजारी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी ने एडौल्फ जुस्ट द्वारा लिखित Return to Nature नामक पुस्तक पढ़कर इतने प्रभावित हुये कि उन्होने इसका गहराई से अध्ययन करते हुये अपने शरीर पर इनके प्रयोग प्रारम्भ कर दिये उन्होने अपने आश्रमवासियों एवम् अपने परिवार के लोगो पर भी प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा उपचार देने लगे। उन्होने प्राकृति चिकित्सा के प्रचार–प्रसार हेतु नव जीवन तथा हरिजन जो उस समय के साप्ताहिक पत्र थे उनमें प्राकृतिक चिकित्सा के बहुत लेख छापने प्रारम्भ किये। उनका विश्वास था भारत के ग्रामीण निवासियों के लिए चिकित्सा हेतु एक समस्ती सरल एवम् सुलभ चिकित्सा पद्धति यदि कोई है तो वह प्राकृतिक चिकित्सा ही है। इसी को ध्यान में रखते हुये पूना में ओर्लीकांचन स्थान पर एक प्राकृतिक चिकित्सालय की स्थापना की और उसमें वे चिकित्सक के रूप में काम करने लगे। उन्होने इस पद्धति में राम नाम को जोड़ते हुये उनके प्रचार–प्रसार में जुट गये। दक्षिण भारत में विजयवाड़ा के कुछ प्राकृतिक चिकित्सक जिसमें डॉ0 कृष्णम राजू ने भी भमावर्म नामक स्थान पर एक बहुत बड़े प्राकृतिक चिकित्सालय की स्थापना की। इसी से प्रेरित होकर भारत के प्रसिद्ध उद्योगपति एवम् प्राकृतिक चिकित्सक डॉ0 सीता राम जिन्दल जी ने भी सर्वश्रेष्ठ बहुत बड़े इन्सटीट्यूट ऑफ नैचुरोपैथी एण्ड योगिक साइन्सिज चिकित्सालय की बैंगलोर में स्थापना की उस समय देश में बहुत से प्राकृतिक चिकित्सक इसके प्रचार–प्रसार में लगाये जिनमें प्रमुख रूप से डॉ0 लक्ष्मी नारायन चौधरी, डॉ0 गंगा प्रसाद गौढ़, डॉ0 जानकी शरण वर्मा, डॉ0 महावीर प्रसाद पोद्दार, डॉ0 बालेश्वर प्रसाद, डॉ0 खुशीराम दिलकस, डॉ0 शरण प्रसाद, डॉ0 हीरा लाल, डॉ0 एस0जे0 सिंह, डॉ0 लक्ष्मण शर्मा, डॉ0 दिनसामहता, डॉ0 जे0एस0 जस्सावाला, डॉ0 कुलरंजन मुखर्जी, डॉ0 वी0 वेन्कटराव तथा उनकी पत्नी डॉ0 विजय लक्ष्मी आदि सभी लोगो ने प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में विशेष भूमिका अदा की है।

भारत वर्ष में सन्त विनोवाभावें द्वारा अनेको राष्ट्रीय सम्मेलनों में प्राकृतिक चिकित्सा एवम् चिकित्सकों का भरपूर गुड़गान किया तथा अपनी पुस्तक गांव की स्वास्थ योजना के माध्यम से विशेष मार्ग दर्शन भी किया उसके पश्चात जवाहर लाल नेहरू व श्री मोराराजी भाई देशाई जी ने प्राकृतिक चिकित्सा की बहुत प्रशंसा की है। वे अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद के पदाधिकारी भी रहे तथा प्राकृतिक चिकित्सा पर उन्होने एक उपयोगी पुस्तक भी प्रकाशित करवाई तथा प्राकृतिक चिकित्सा का जीवन यापन करते हुये 100 वर्ष तक जीवित रहकर आने वाली पीढ़ियों के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। जिससे सभी प्राणी प्राकृतिक जीवन अपनाकर स्वस्थ रह सकते है। श्री मोरारजी देशाई ने अपनी आत्मकथा में भी प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा जन सेवा की भावना को प्रेरित किया है। महात्मा गांधी जी ने राम–नाम, स्वास्थ की कुंजी, प्राकृतिक चिकित्सा जैसी कई पुस्तकें लिखी तथा अपना गहरा विश्वास सभी के सामने प्रस्तुत किया। इसके पश्चात महात्मा जगदीस्वरानन्द जी ने प्राकृतिक चिकित्सा पर लगभग 12 पुस्तकें लिखी तथा जीवन निर्माण आश्रम पांचली खुर्द, जिला मेरठ में स्थापना की, डॉ0 बिट्ठलदास मोदी द्वारा आरोग्य मासिक पत्रिका तथा भारत में प्रसिद्ध आरोग्य मन्दिर चिकित्सालय गोरखपुर की स्थापना की। इन्ही के साथ डॉ0 हीरा लाल ने भी प्राकृतिक चिकित्सा का कार्य शुरू किया। डॉ0 एस0जे0 सिंह ने पश्चिमी बंगाल में प्राकृतिक चिकित्सा के चार वर्षीय कालेज के प्रिन्सिपल रहते हुये वहां के मुख्य चिकित्सक भी रहे। उन्होने 40 पुस्तकों के लगभग प्रकाशन एवं लेखन करते हुये प्राकृतिक चिकित्सा को एक नई दिशा दी। डॉ0 गौरीशंकर मिश्रा जी ने डॉ0 कुलरंजन मुखर्जी से

प्राकृतिक चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त कर अलीगढ़ में महर्षि दयानन्द प्राकृतिक योग प्रतिष्ठान की स्थापना भी की। इसके पश्चात उन्होने प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार–प्रसार में दिली में कृष्णदत्त स्वास्थ केन्द्र के माध्यम से प्रामर्श दाता की भूमिका निभाई। डॉ0 एस0 स्वामीनाथन जो केन्द्रीय योग एवम् प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद के सलाहकार सदस्य के रूप में भी कार्य किया।

अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद के संस्थापक सेठ धर्मचन्द सारावगी ने प्राकृतिक चिकित्सा विधा पीठ के लिए अमूल्य भूमि का दान देकर विशाल प्राकृतिक चिकित्सालय एवम् कालेज की स्थापना की। डॉ0 जगदीश चन्द्र लौहर, डॉ0 सुखवीर सिंह, स्वामी सदानन्द जी, डॉ0 एम0एल0 राठौर, डॉ0 भोजराज छावड़िया, डॉ0 युगल किशोर चौधरी, डॉ00 इन्द्रप्रसाद गुप्त, डॉ0 देवेन्द्र स्वरूप शर्मा इत्यादि ने बहुत लोगो को जहां प्रशिक्षित किया वहीं पर इन्होने देश के कोने–कोने में जाकर अनेको चिकित्सालय भी स्थापित किये। इनमें से कुछ चिकित्सक तो आयुर्वेद एवं अन्य चिकित्सा पद्धतियों के कुशल प्रशिक्षित होते हुये भी पूरी तरह प्राकृतिक चिकित्सा को समर्पित हो गये।

प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार–प्रसार हेतु स्थापित कुछ मुख्य चिकित्सालय निम्नलिखित है :–

1. निसर्गोपचार आश्रम – उरूली कांचन – महाराष्ट
2. इन्सटीट्यूट ऑफ नेचुरोपैथी एण्ड यौगिक साइन्सेज – बैगलोर (कर्नाटक)
3. आरोग्य मन्दिर गोरखपुर यू0पी0
4. श्री महाबीर योग– प्राकृतिक चिकित्सा एवं शोध संस्थान–श्री महावीर जी, राजस्थान
5. स्वास्थ्य साधना केन्द्र–जोधपुर, राजस्थान
6. प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र – पट्टीकल्याण – हरियाणा
6. प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग केन्द्र – परमार्थ निकेतन, ऋषिकेश
7. कायाकल्प एवं शोध केन्द्र, सीकर–राजस्थान
8. प्राकृतिक एवं योग चिकित्सालय – बस्सी जयपुर – राजस्थान
9. निसर्गोपचार केन्द्र बड़ौदा – गुजरात
10. स्वामी शान्ति प्रकाश प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र – महाराष्ट्र
11. प्राकृतिक चिकित्सालय – बिहार – आन्ध्रप्रदेश – प0 बंगाल – जयपुर – रायपुर
12. राजस्थान प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र – बीकानेर – राजस्थान
13. आरोग्य केन्द्र – संत प्राकृतिक चिकित्सा संस्थान – भोपाल
14. आदर्श योग प्राकृतिक चिकित्सा व शिक्षण संस्थान – इन्दौर, म0प्र0
15. जीवन निर्माण केन्द्र – पांचली – मेरठ, यू0पी0
16. देव अन्तर्राष्ट्रीय योग केन्द्र – कानपुर
17. आनन्द प्राकृतिक चिकित्सालय – बरेली, उ0प्र0
18. आदित्य योग–प्राकृतिक चिकित्सालय एवं शोध संस्थान–किच्छा–उत्तराखण्ड
19. वायु प्राकृतिक चिकित्सालय पटपड़गंज, दिल्ली
20. सेवक राम प्राकृतिक स्वास्थ्य केन्द्र लाजपत भवन दिल्ली
21. दौलत राम प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र दिल्ली (अब बन्द है)
22. कायाकल्प आश्रम–सोहना–हरियाणा
23. कृष्णदत्त प्राकृतिक स्वास्थ्य केन्द्र–दिल्ली
24. नेचुरल हैल्प होम – हिसार – हरियाणा

25. हरियाणा प्राकृतिक चिकित्सालय–अम्बाला–हरियाणा
26. प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र शामली, उ0प्र0
27. महर्षि दयानन्द प्राकृतिक चिकित्सालय – कैथल हरियाणा

उपरोक्त के अतिरिक्त भी आज देश के विभिन्न भागों में अनेको प्राकृतिक चिकित्सालय एवं केन्द्र भी चल रहे हैं जो प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग का प्रचार–प्रसार कर रहे है। कुछ स्नातक (प्राकृतिक चिकित्सा की उपाधि–बी0एन0वाई0एस0) जो 5 या $5\frac{1}{2}$ वर्ष की अवधि के विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा कालेजो में चलाए जा रहे हैं जो निम्नलिखित है :– (साभार विसर्गोपचार वार्ता)

4.4 सारांश

आपने इस इकाई में अध्ययन किया कि प्राकृतिक चिकित्सा सृष्टि के साथ ही उपयोगी व सहायक थी जो किसी न किसी रूप में पूरे विश्व में प्रयोग की जाती थी लेकिन आधुनिक चिकित्सा पद्धति व अन्य चिकित्सा पद्धतियों के आने के बाद यह प्रायः लुप्त हो गयी थी। परन्तु समय के साथ ही इसकी आवश्यकता को नकारना असम्भव हो गया। इसलिए इसका पुनः प्रचलन–प्रचार–प्रसार अट्ठारवीं सदी में विदेशों में शुरू हुआ और इतना उपयोगी सिद्ध हुआ कि असाध्य समय में जाने वाले रोगों में जहां सभी चिकित्सा पद्धतियों फेल हो जाती है। उनका सफल उपचार केवल प्राकृतिक चिकित्सा में ही दिखाई पड़ने लगा। इससे सम्पूर्ण विश्व में अन्य पद्धतियों के डाक्टर भी इसके समर्थक बन गये। इसी तरह से विदेशों में प्रकाशित पुस्तकों के माध्यम से भारत वर्ष में भी कुछ प्राकृति प्रेमियों ने इसे जीवन में अपनाया और उसकी पहचान हेतु इसे प्रचारित करते हुये चिकित्सालय एवं कालेजो की स्थापना करते हुये भारतीय चिकित्सा पद्धति की पांचवी अधिकृत चिकित्सा पद्धति के रूप में सरकार से मान्यता प्राप्त करायी। आज केन्द्रिय योग–प्राकृतिक चिकित्सा एवं अनुसंधान परिषद–राष्ट्रीय प्राकृतिक चिकित्सा संस्थान व मोरार जी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान जो आयुष विभाग स्वास्थ्य मंत्रालय भारत सरकार द्वारा संचालित हो रहें है।

4.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – राकेश जिन्दल
2. वृहद प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ0 ओ0पी0 सक्सेना

4.6 निबंधात्मक प्रश्न

प्र0–1 विदेशों में प्राकृतिक चिकित्सा के इतिहास पर विवेचना करें ।
प्र0–2 भारत वर्ष में प्राकृतिक चिकित्सा के इतिहास का वर्णन करें ।
प्र0–3 भारत के कुछ प्रमुख प्राकृतिक चिकित्सालय एवं प्रमुख विशेषज्ञों का उल्लेख करें ।
प्र0–4 प्राकृतिक चिकित्सा पर प्रकाशित कुछ प्रमुख पुस्तकों व उनके लेखक के विषय में समझाइये ।

इकाई –5 प्राकृतिक चिकित्सा के प्रमुख विशेषज्ञ– विनसेंज–प्रिस्निज, फादर सेबस्टियन नीप, लूई–कूने, एडोल्फ जस्ट, हेनरी– लिण्डल्हार, जे0 एच0 केलाँग

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 विनसेंज–प्रिस्निज
5.4 फादर सेबस्टियननीप, डॉ0 इसाक जेनिग
5.5 लूई–कूने
5.6 एडोल्फ जस्ट
5.7 हेनरी लिण्डल्हार
5.8 जे0ए0 केलॉग
5.9 सारांश
5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ
5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

आज के इस वैज्ञानिक युग में आधुनिक चिकित्सा पद्धति के साथ–साथ अन्य चिकित्सा पद्धतियां भी रोगों के उपचार में प्रयोग की जाती है। इन सभी दवाओं का प्रयोग होता है, परन्तु अप्राकृतिक जीवन शैली पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है, परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा एक ऐसी पद्धति है जिसमें किसी भी प्रकार की दवाओं का प्रयोग नहीं होता अपितु केवल प्रकृति के पंचमहाभूतों पर आधारित पद्धति द्वारा उपचार किया जाता है। इसी पद्धति का विदेशों में अपनाया जाना, एक सुखद घटना को प्रस्तुत करता है। विदेशों में जब कुछ लोगों को अपनी व्यस्त जीवनशैली के कारण रोगों से ग्रस्त होना पड़ा और गम्भीर रोगों का उपचार किसी भी दवा से नहीं हो पाया। तब विवश होकर प्रकृति की शरण में जीवन यापन करने के सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं बचा था। तब प्राकृतिक वातावरण में जाकर सब्जी और फलों का सेवन करते हुये जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ किया। उसके पश्चात उन रोगों में जिन पर दवा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, एक आश्चर्यजनक लाभ मिलना प्रारम्भ हो गया। इस तरह से गम्भीर रोगों का परिणाम देखते हुये विदेशों के कुछ लोगों ने इसे एक बढ़िया उपचार पद्धति के रूप में अपनाकर इसे चिकित्सा देनी प्रारम्भ की। आइए ऐसे ही कुछ विदेशी प्राकृतिक चिकित्सा विशेषज्ञों का जीवन परिचय का अध्ययन करते रहे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई में प्राकृतिक चिकित्सा का विदेशों में किस प्रकार प्रचलन हुआ और प्राकृतिक चिकित्सा में किन–किन विदेशी प्रमुख विशेषज्ञों के द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा के अपने जीवन में अपनाकर इसके प्रचार–प्रसार का कार्य किया, इनकी गतिविधि, प्राकृतिक जीवनशैली व इनके द्वारा लिखित पुस्तकों की जानकारी प्राप्त करना इसका मुख्य उद्देश्य है।

5.3 विनसेंज प्रिस्निज

विनजेस प्रिस्निज जर्मनी के सिलेसियन पहाड़ की तलहटी में स्थित एक गांव के साधारण से गृहस्थ घर में सन् 1752 ई0 में प्रिसिन्ज का जन्म हुआ। बड़ा होने पर उनको अन्य किसान बालकों की भांति चरवाहें का काम मिला एक दिन अपनी गायों को जंगल में चरा रहे इस बालक ने एक लंगड़ाती हुई हिरनी को देखा जो झरने के पहुंच लगभग आधा घन्टा पानी में खड़ी रहने के बाद चली गयी। बालक के मन में जिज्ञासा हुई कि आखिर हिरनी पानी में क्यों खड़ी हुई है। अतः ये बालक दूसरे दिन भी वही जाकर गाय चराने गया निश्चित समय बाद हिरनी फिर आई और आधे घण्टे बाद चली गयी। हिरनी का पानी में खड़े रहने का क्रम तीन सप्ताह तक चला। प्रिस्निज बराबर उसकी गतिविधि नोट करते रहे। उन्होने देखा कि इस क्रम में हिरनी का लगड़ाना क्रमशः कम होते गया और अन्त में वह पूर्ण ठीक हो गयी तथा फिर न आयी 8 वर्ष के प्रिस्निज के हृदय पर उसका गहरा प्रभाव हुआ।इस घटना के 8 वर्ष बाद एक दिन जंगल से लकड़ी काटकर लौटते समय तेज आंधी और ओलो की बोछार के कारण इन्हे एक छप्पर के नीचे रूकना पड़ा परन्तु आंधी के बेग को सहन न कर सकने के कारण वह छप्पर गिर गया और प्रिस्निज उसके नीचे दब गये जिससे उनकी चार पसलियां टूट गई। छप्पर के नीचे पड़े–पड़े ही 8 वर्ष पूर्व घटित हिरनी की घटना याद आ गयी और उन्होने म नही मन अपना उपचार जल से करने की प्रतिज्ञा कर ली सूती कपड़े की गद्दियों को गीली कर अपनी पसलियों पर रखने लगे क्रमशः दर्द कम होते–होते कुछ ही दिनों में वे स्वस्थ हो गये।

इस प्रकार एक ग्रामीण बिना पढ़ा बालक ने जल चिकित्सा के चमत्कार समीपवर्ती लोगों पर भी करने प्रारम्भ कर दिये तथा 28 वर्ष की आयु में अपने घर पर ही एक चिकित्सालय की स्थापना कर दी। सैकड़ों तादात में रोगी उनके पास आते और ठीक होकर जाते। बाद में ग्रेफेनवर्ग में एक बड़े चिकित्सालय की स्थापना की जिसमें विश्व के कौने–कौने से रोगियों का आना प्रारम्भ हो गया।

जोहान्स स्काथ प्रिस्निज के समकालीन तथा उनके घर से कुछ ही मील की दूरी पर उनका भी जन्म हुआ। आस्ट्रिया और बाद में चेकोस्बाविया में कोचवानी करते हुये एक दुर्घटना में उनका घुटना बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गया। सभी तरह के उपचारों से निराश हो चुके तथा लंगड़ापन को नियति मान लेने वाले स्काथ को एक साधु ने भीगी ठंडी पट्टी की सलाह दी जिससे परिणाम स्वरूप आप कुछ सप्ताह में पूर्ण स्वस्थ हो गये। यही प्रयोग आरम्भ में इन्होने कुत्ते बिल्ली आदि के चोट लगने पर किया और आशातीत सफलता प्राप्त की, सिद्धता होने के बाद रोगी मनुष्यों पर आप धड़ल्ले से प्रयोग करने लगे। प्रिस्निज की तरह ख्याति बढ़ने पर औषधि चिकित्सकों ने इनकी भी खूब निन्दा की लगभग 20 वर्षो तक इन्हें परेशान किया और अन्ततः जाल रचकर जेल भिजवा दिया। जेल से निकलने के बाद एक घटना ने इनकी जीवन की काया पलट के रख दी। सन् 1986 ई0 में वर्टेम्बर्ग को डयूक लड़ाई में बुरी तरह घायल हुआ और लगातार तीन महीने तक सभी प्रसिद्ध चिकित्सकों के उपचार में रहा, परन्तु किसी प्रकार का लाभ न हुआ जीवन से निराश ड्यूक को अचानक स्काथ को दिखाने का ख्याल आया। स्काथ के उपचार से कुछ ही दिनों में वह स्वस्थ हो गया।

5.4 फादर सेबस्टियननीप

इनका जन्म सन् 1821 में जर्मनी में हुआ था जो क्रिसयन पादरी के रूप में जाने जाते थे। ये सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक जोहान्स स्क्रातथ के प्रभाव से प्राकृतिक चिकित्सक में

अवतरित हुये उसी उत्साह व जबरदस्त लग्न के साथ प्राकृतिक चिकित्सा विधियों का प्रचार प्रसार किया और जल चिकित्सा द्वारा बहुमूल्य प्रयोग करतें हुये अविष्कार कियें। उन्होनें ''दा हीलिंग बर्च्यु आफ वाटर'' (The Healing Virtues of Water'') नामक पुस्तक का अध्ययन करने के बाद ही My water ……. नाम से पुस्तक का प्रकाशन किया। जिसके लगभग 100 एडीसन Edition निकाले। उनकी इस पुस्तक को अनेकों भाषाओं में अनुवाद भी किया। वे जर्मनी के एक प्रख्यात प्राकृतिक चिकित्सक के रूप में स्थापित किया। उन्होने पोप लियो (Pope Leo) जर्मनी को प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा उपचार देकर स्वस्थ किया। इन्होने अपना एक प्राकृतिक चिकित्सालय स्थापित किया और 40 वर्ष से अधिक सफलता पूर्वक चलाते रहे। इनकें नाम से अनेकों संस्थायें आज भी जर्मनी में चलती हुयी मिलेगी जिनमें 50,000 हजार से ज्यादा सदस्य रजिस्टर्ड है। इनका शरीर 76 वर्ष की आयु में पूरा हो गया। इनके योगदान को आज भुलाया नहीं जा सकता। जर्मनी के ही प्राकृतिक चिकित्सक बेनीडिक्ट लुस्ट (Benidict Lust) फादरनीय के प्रमुख प्रिय शिष्य थे।

<u>डॉ0 इसाक जेनिग (Dr. Issac Jennings) :-</u> औषधि विज्ञान के डाक्टर के रूप में पहुंचाने जाने वाले डॉ0 जेनिंग अमेरिका में 1788 में पैदा हुए और उन्होने प्रकृति एवं सफाई को अधिक महत्व देते हुये एक बुखार के रोगी को उपवास, विश्राम और अत्यधिक पानी के सेवन के साथ शान्त वातावरण में रहने की सलाह दी इस प्रकार वह अन्य दूसरे रोगों में एक टाइफाइड के रोगी को जिस पर दवाओं का कोई असर नहीं हो पा रहा था इनकी दवा के साथ–साथ उन्होने रोगी को खिड़किया खोल कर शुद्ध हवा और सूर्य की रोशनी के साथ–साथ उनको स्वच्छ कपड़े व पानी की स्पॉज करवाते रहने से फिर से एक चमत्कार हुआ और रोगी की स्थिति में सुधार होने लगा। लेकिन उन्ही के चिकित्सा विज्ञान के डॉक्टर द्वारा इसी का बहुत अधिक विरोध किया गया और उन्होने उसका जवाब दिया कि जब सही रास्ते को अपनाने में क्या बुराई है ? सन् 1822 में उन्होने पूरी तरह से दवाइयों का प्रयोग बन्द कर दिया और प्राकृतिक रूप से उपचार करते हुये निष्कर्ष निकाला कि जिसमें उनके पास आने वाले रोगियों की मृत्युदर में चमत्कारिक रूप से परिवर्तन हुआ। साथ ही उपचार में तेजी आई और स्वस्थ होने में भी परिणाम शीघ्र प्राप्त होने लगे। इससे उन्होने निष्कर्ष निकाला कि मनुष्य की गलती के बिना कोई बीमारी या रोग नहीं आ सकता और रोग बाहरी वातावरण की देन नहीं वरन् जीवनी शक्ति के ह्रास का परिणाम है। स्वास्थ्य को बनाए रखने की जिम्मेदारी अथवा स्वस्थ रहने के लिए डॉ0 की नहीं अपितु स्वंय की है। डॉ0 का काम तो बहुत कम है उनकी उपचार पद्धति को अर्थिपैथी के नाम से जाना गया। यह शब्द ग्रीक के दो शब्द अर्थो का अर्थ है The Right और दूसरा Pathos जिसका अर्थ है रोग अर्थात् आर्थोपैथी जो रोगो को अपने स्वंय के प्रयास से ठीक रखे उन्होने तीन किताब लिखी The Neorical Reform, दूसरी The Philosophy of human life, तीसरी The Tree & Human life or human degeneracy है।

5.5 लूई–कूने

सर्वाधिक प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक के रूप में पहचाने जाने वाले डॉ0 कूने जर्मनी में सन् 1844 में पैदा हुए उन्होने 1864 में जल चिकित्सा के विभिन्न रोगों में उपचार पर एक सभा

में उपस्थित हुए और वही से वो इस पद्धति से इतना प्रभावित हुए की वे इसी में ज्यादा से ज्यादा समय व्यतीत करते हुये उसकी गहराईयों में पहुंचने की लगन से 1883 में वह एक अद्‌भुत प्रयोग को सिद्ध करने में सफल हुए और विजातीय द्रव्य के स्वरूप को प्राकृतिक चिकित्सा में जोड़ कर एक नई शुरूआत की और प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली को विशेषकर जल चिकित्सा की उन्नति के शिखर तक पहुंचाने के लिए उन्होने अपने जीवन का अधिकांश समय इसमें देते हुए "The New Science of Healing" (दी न्यू साईन्स ऑफ हीलिंग) तथा "The Science of Facial Experssion" (दी साइन्स ऑफ फेशियल एक्सप्रेशन) नामक महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखी। इसके साथ–साथ कारण और उपचार पर जोर देते हुये चिकित्सा प्रारम्भ की और अन्ततः लिपजिग (Lipzig) नगर में अपना चिकित्सालय स्थापित किया। इनका जल चिकित्सा से सम्बन्धित उपकरणों की डिजाइनिंग करके हिप बॉथ आदि की शुरूआत की साथ ही स्टिज बॉथ तो आज भी मेहन स्नान को प्राकृतिक चिकित्सक लुई कूने का स्टिज बाथ के नाम से ही प्रसिद्ध है। उन्होने विजातीय द्रव्य के पनपने की और उसके विभिन्न स्थानों पर जमा होने की विस्तृत रूपरेखा तैयार की।आपका जन्म एक जुलाहा के परिवार में हुआ था। लेकिन अत्यन्त ही दर्दनाक परिस्थितियों का सामना इन्हें करना पड़ा जब आकस्मिक माता–पिता के निधन व अपने शरीर के असाध्य फोड़ो के कारण औषधि विज्ञान के चिकित्सकों के द्वारा हतोत्साहत होना पड़ा और यह भी कारण था कि उनको अपने लिए किसी सुदृढ़ चिकित्सा प्रणाली की आवश्यकता थी। और वो प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा ही अन्ततः अपने स्वास्थ्य को प्राप्त करने में सफल हुए। उन्होने सभी प्रकार के उपवास आहार, एनिया, गर्म ठण्डे पानी का स्नान, सूर्य स्नान व मिट्‌टी स्नान आदि पर अपनी विशिष्टता सिद्ध की।

5.6 एडोल्फ जस्ट

एडोल्फ जस्ट 8 अगस्त 1967 में जर्मनी में पैदा हुऐ। उन्होने अपने प्रारम्भिक काल में पुस्तक विक्रेता के रूप में जीवन यापन करना प्रारम्भ किया। उसी समय स्वंय भी बीमार हो गये और अपनी बीमारी के उपचार हेतु विभिन्न पुस्तकों द्वारा विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक उपचारों को अपने शरीर पर प्रयोग करना आरम्भ किया। इन्ही प्राकृतिक उपचारों में स्वंय की मालिश करने की प्रक्रिया प्रारम्भ की और उसके द्वारा स्वंय के शरीर का उपचार लेते हुये रोगो से मुक्त होना शुरू किया। लुई कुने के प्राकृतिक चिकित्सा सिद्धान्तों से उत्साहित होते हुये अपने जीवन की दैनिक क्रियाऐं सुव्यवस्थित की। इससे प्रेरणा पाकर इन्होने एक पुस्तक रिटर्न टू नेचर सन् 1896 में लिखी। जिससे बहुत लोगो ने लाभ उठाया। इसमें मुख्य रूप से प्राकृतिक भोजन, शुद्ध जल, शुद्ध वायु, स्वच्छ मिट्‌टी के प्रयोगों पर बल दिया। साथ ही उन्होने प्रकृति के द्वारा प्रदत्त वातावरण में जीने की प्रबल इच्छा के विषय में भी बताया। 1895 में प्राकृतिक चिकित्सा संस्थान की स्थापना भी की। सन् 1918 में उन्होने मिट्‌टी द्वारा उपचार करने हेतु एक सोसाइटी का गठन बलैंकन बर्ग में किया तथा इसके साथ–साथ प्राकृतिक चिकित्सालय संस्थान जंग बोर्न स्थापित किया। इसी पुस्तक को पढ़ने के पश्चात 1936 में डॉ0 बिट्‌ठलदास मोदी से उन्हें पता चला कि प्राकृतिक चिकित्सा के मूल सिद्धान्तों को समझने के लिए इस पुस्तक का अध्ययन कितना आवश्यक है। यह पुस्तक नींव का पत्थर है जिस पर प्राकृतिक चिकित्सा की पूरी इमारत खड़ी है। इस पुस्तक से मोदी भी प्रभावित हुये बिना नहीं हर सकें और उन्होने इस पुस्तक का अध्ययन किया। इसी पुस्तक ने महात्मा गांधी जी का भी जीवन परिवर्तित कर दिया।

गांधी जी इस पुस्तक से इतने प्रभावित हुये कि उन्होने अपनी आत्मकथा में भी इसका उल्लेख करना जरूरी समझा। महात्मा गांधी जी ने इस पुस्तक में वर्णित मिट्टी द्वारा उपचार के द्वारा अनेकों लोगो के रोग ठीक किये। वे चाहते थे कि इस कुदरती उपचार द्वारा सभी लोग लाभान्वित हो। आजादी के बाद उन्होने इस पुस्तक से प्रभावित होकर अपना शेष जीवन इस पद्धति द्वारा उपचार करने में लगा देना चाहते थे। इसी प्रयास का परिणाम था कि उरली कांचन में एक प्राकृतिक चिकित्सा की स्थापना करवा दी। जो आज भी एक प्राकृतिक चिकित्सा स्तम्भ के रूप में जाना जाता है। उन्होने अनेको लेख व पुस्तको का लेखन कार्य भी किया जो आज भी विश्व स्तरीय मानी जाती है। श्री एडोल्फ जुस्ट ने प्राकृतिक जीवन के साथ ही सांसारिक जीवन भी 20 जनवरी 1936 को त्याग कर परलोक सिधार गये। उनकी इस पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद आरोग्य मन्दिर, गोरखपुर द्वारा किया गया है। अनेकों बार हिन्दी संस्करण प्रकाशित किये जा चुके है। क्योकि यह पुस्त्क एक प्रेरणा स्रोत बनकर अनेको महान विभूतियों का जीवन परिवर्तन करने में सफल रही है।

5.7 हेनरी लिण्डल्हार

इनका जन्म जर्मनी के 1 मार्च सन् 1853 को हुआ था। हेनरी लिण्डल्हार उच्च कोटि के प्राकृतिक चिकित्सक थे। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र बड़े कार्य किये। इन्होने अपना जीवन प्राकृतिक चिकित्सा को समर्पित किया तथा पूरी लगन और श्रद्धा के साथ रोगियों के उपचार में जीवन को व्यतीत किया। हेनरी लिण्डल्हार औषधि विज्ञान के चिकित्सक थे तथा इन्हे अपने क्षेत्र में एक अच्छे ऐलोपैथ के नाम से जाना जाता था। पहले यह रोगो का उपचार औषधि द्वारा करते थे। यह अमेरिका के रहने वाले थे और यह उन कुछ गिने चुने प्राकृतिक चिकित्सकोंके साथ थे जो यह चाहते थे कि प्राकृतिक चिकित्सा के उपचार साथ–साथ औषधियों को दिये जाने के पक्ष में थे। यह चाहते थे कि प्राकृतिक उपचार के साथ ऐलोपैथी होम्योपैथिक, अनुतेजक औषधियों को दिया जाना चाहिए। ऐसा करने से रोग के लक्षणो व रोग को जल्दी ही भगाया जा सकता है तथा इन्हे प्रयोग करने का शरीर पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं होता। इनके इस विचार पर कुछ अन्य प्राकृतिक चिकित्सकों ने भी साथ दिया। इसके अतिरिक्त इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा के एक सिद्धान्त ''व्रीव रोग अपना चिकित्सा स्वंय होते है'' को सिद्ध भी कर दिखाया। इन्होने कई रोगो के द्वारा इस बात में कितनी सच्चाई है का उदाहरण दुनिया को दिखाया तथा असीम उत्साह और जबरदस्त लगन के साथ इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा की उन्नति के षिखर पर पहुंचाया। अंत में इस कार्य में सिद्स्थ हो जाने पर यह रोगी मनुष्यों को धड़ल्ले के साथ अच्छा करने लगे। इनकी ख्याति बढ़ने पर लोगो ने इनकी निन्दा भी की परन्तु यह रूके नहीं। इन्होने नेत्र द्वारा निदान का पूरी तरह से समर्थन किया तथा चिकित्सा में उसका प्रयोग भी किया। आंखो को देखकर ही वह रोग का निदान कर उपचार सही दिषा में करते थे। इन्होने इसका लम्बे समय तक सफल प्रयोग किया। साथ ही इन्होने षिकागो और एल्महर्स्ट (न्यूयार्क) में दो ऐनीटोरियम खोले। जिनका संचालन इन्होने प्रभावपूर्ण ढंग से किया तथा इनमें इन्होने प्रधान चिकित्सक का भार भी अच्छी तरह निभाया। अपना पूरा जीवन प्राकृतिक चिकित्सा को समर्पित करते हुये उपचार में तो लगे ही रहे तथा साथ ही इन्होने कई पुस्तकें भी लिखी जो कि इस क्षेत्र में बहुमूल्य धरोहर है। इनकी लिखी हुई दो पुस्तकें

"Isidiag-non sis" और "The Philosophy and Practice of Natural Therapeutic" संसार प्रसिद्ध पुस्तकें है।

इन्होने 1904 में अपनी क्षमता बढ़ाने के लिए 51 वर्ष की आयु में चिकित्सा में एम0डी0 की उपाधि अर्जित की तथा प्राकृतिक चिकित्सा की मौलिक सफलता व मिषन को सही दिशा देते हुये 1924 में एक दुर्घटना में आपका निधन हुआ। प्राकृतिक चिकित्सा जगत आपका सदैव ऋणी रहेगा। क्योकि इनके द्वारा ही प्राकृतिक चिकित्सा का वैज्ञानिक आधार पर प्रचार प्रसार करने का प्रयास किया।

5.8 जे0ए0 केलॉग

डॉ0 जे0एच0 केलॉग अमेरिका के रहने वाले थे तथा इनका जन्म 26 फरवरी 1852 ई0 को हुआ। डॉ0 केलॉग एम0डी0 आर0सी0एस0एल0एल0डी0 अमेरिका के महान सत्व चिकित्सा आहार एवं शल्य क्रिया के विशेषज्ञ थे। प्राकृतिक विकित्सा के क्षेत्र में इनका रूझान इसके बाद हुआ तथा इस पद्धति के प्रचार प्रसार एवं विकास में इन्होने बढ़ चढ़कर अपना योगदान दिया। इन्होने इस पद्धति को आगे बढ़ाने के लिए कई कार्य किये। रोगियों का उपचार प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा किया, कई प्रकार की संस्थाओं का निर्माण किया। ऐनीटोरियम का कार्यभार संभाला, खूब सारी अच्छी किताबें लिखी तथा कई यन्त्रों तथा उपकरणों के अविष्कार का श्रेय भी डॉ0 जे0एच0 केलॉग को ही जाता है।

इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा से जुड़े विषयों पर अनेक पुस्तके लिखी, जैसे आहार चिकित्सा, धूप चिकित्सा, मालिकष क्रिया आदि। इनको आज पढ़कर कई नये प्राकृतिक चिकित्सक लाभान्वित हो रहे है। प्राकृतिक चिकित्सा से जुड़ने के बाद इन्होने अमेरिका में स्थित संसार प्रसिद्ध बैटेल क्रीक ऐनीटोरियम का संचालन किया है। इस ऐनीटोरियम और डॉ0 जे0एच0 केलॉग को आज प्राकृतिक चिकित्सा जगत खूब जानता और पहचानता है। इस ऐनीटोरियम की अनेक विशेषताएें है। इसमें अनेक चिकित्सा प्रणालियों द्वारा रोगियों के रोग का उपचार होता है जैसे जल चिकित्सा, आहार चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, स्वीडिश मूवमेन्ट तथा विद्युत चिकित्सा आदि अन्य कई प्रकार की पद्धतियां इस एक सेनीटोरियम के भीतर प्रयोग की जाती है। इसमें कई प्रकार की चिकित्सा पद्धतियां होने से रोगी के लिए आवश्यक उपचार की सुविधाऐं उपलब्ध कराई जाती थी। उपचार के साथ साथ रोगी को स्वस्थ रहने की शिक्षा भी दी जाती थी। जिसके द्वारा वह यह बताया जाता था कि उत्तम स्वास्थ्य को कैसे प्राप्त किया जा सकता है। इसमें रोगी उपचार के द्वारा स्वस्थ तो होता ही था साथ ही उसे भविष्य में भी स्वस्थ रहने की विद्या भी दी जाती थी। उन्हे प्राकृतिक जीवन शैली जीने की सलाह दी जाती थी तथा ऐसा किस तरह कर सकते है। यह भी सिखाया जाता था।

डॉ0 एच0 केलॉग ने प्राकृतिक चिकित्सा में प्रयोग होने वाले कई उपकरणों व यंत्रो का अविष्कार भी किया जो उपचार में बहुत ही महत्वपूर्ण है जिनमें ''विद्युत ज्योति स्नान'' तथा Sinusoidal Current का अवष्किार प्रमुख है।

इन्होने कई सारी उत्तम श्रेणी की पुस्तकों की रचना भी की। जो कि प्राकृतिक प्रेमियों के लिए बहुत ही उपयोग सिद्ध हो रही है। इनके द्वारा लिखी पुस्तकों में ''दि न्यू डायटेटिक्स रोशनल हाइड्रो थैरेपी, तथा ''होम हैड बुक ऑफ हाइजीन एण्ड मेडिसिन'', आदि बड़ी प्रसिद्ध पुस्तकें है।

5.9 सारांश

आपने ऊपर इकाई में अध्ययन किया कि विदेशों में अत्यन्त कठिन प्रयास करते हुये अपने जीवन पर प्रयोग करते हुये विदेशों के प्राकृतिक चिकित्सा आधार स्तम्भ के रूप में विनसेंज प्रिस्निज, फादर सेबस्टियननीप, लूई–कूने, एडोल्फ जस्ट, हेनरी लिण्डल्हार, जे0एच0 केलॉग आदि ने प्राकृतिक चिकित्सा को विदेशों में स्थापित किया। इन्होने यह प्रयोग सर्वप्रथम प्राकृतिक चिकित्सा को अपने जीवन पर प्रयोग करते हुये अपनी गम्भीर बीमारियों को दूर करने में सफलता प्राप्त की। इनके जीवन के परिचय का अध्ययन करने के बाद हम यह समझ पाये है कि प्राकृतिक चिकित्सा में भारत वर्ष में ही नहीं अपितु विदेशों में भी अपनी अमिट छाप छोड़ी है। विदेशों में लोगो ने अनुभव किया कि प्राकृति के पांच महाभूत द्वारा यह सारा विश्व चलायेंमान है। अर्थात् प्राकृतिक तथा मानव शरीर दोनो ही पांच महाभूत पर आधारित है। रोग अस्वस्थता में इन्होने पांच तत्वों का सहारा लेकर रोगी स्वस्थ हो जाता है। उसी के साथ–साथ प्राकृतिक वातावरण भी शुद्ध हो जाता है। इसी प्राकृतिक वातावरण में जो भी प्राणी जितना अधिक समय व्यतीत करता है। उतना ही प्राणी स्वस्थ रह सकता है। प्राकृतिक के इन पांच तत्वों के बिना कोई भी प्राणी निरोग रहने की कल्पना नहीं कर सकता। क्योकि यह शरीर पांच तत्वों से ही बना है। पंचतत्वों के असन्तुलन के कारण ही मानव रोगी बन जाता है। इन्ही तत्वों का उपयोग करते हुये रोग मुक्त होने की स्थिति प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा ही रोग मुक्त होने की उपचार विधि कहलाती है।

5.11 सन्दर्भ ग्रन्थ :–

1.प्राकृतिक आयुर्विज्ञान	राकेश जिन्दल
2.बृहद प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ0 ओ0पी0 सक्सेना

5.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न–1 फादर सेबस्टियन नीप का जीवन परिचय लिखिए ।

प्रश्न–2 लुई–कूने एवं एडोल्फ जुस्ट के प्राकृतिक जीवन पर लेख लिखें ।

प्रश्न–3 हेनरी लिण्डहार का परिचय दीजिए ।

प्रश्न–4जे0एच0 केलॉग व विनसेज प्रिस्निज के प्राकृतिक चिकित्सा में योगदान का वर्णन करें ।

इकाई –6 प्राकृतिक चिकित्सा के प्रमुख विशेषज्ञ– डॉ0 जानकी शरण शर्मा, डॉ0 कुलरंजन मुखर्जी, डॉ0 के लक्ष्मण शर्मा, डॉ0 बालेश्वर प्रसाद सिंह, डॉ0 महावीर प्रसाद पोधार, डॉ0 शरण–प्रसाद, डॉ0 बिट्ठलदास मोदी, डॉ0 एस0 जे0 सिंग, डॉ0 हीरा लाल, डॉ0 बी0 वेंकेटराव व डॉ0 श्रीमती विजय लक्ष्मी, डॉ0 एस0 स्वामीनाथन

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 डॉ0 जानकी शरण शर्मा
6.4 डॉ0 कुलरंजन मुखर्जी
6.5 डॉ0 के लक्ष्मण शर्मा
6.6 डॉ0 बालेश्वर प्रसाद
6.7 डॉ0 महावीर प्रसाद पोधार
6.8 डॉ0 शरण प्रसाद
6.9 डॉ0 बिट्ठलदास मोदी
6.10 डॉ0 एस0जे0 सिंग
6.11 डॉ0 हीरा लाल
6.12 डॉ0 बी0 वैंकेटराव डॉ0 श्रीमती विजय लक्ष्मी
6.13 डॉ0 एस0 स्वामी नाथन
6.14 सारांश
6.15 सन्दर्भ ग्रन्थ
6.16 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

सृष्टि के प्रारम्भ से ही प्राप्त प्राकृतिक वातावरण हमें एक वरदान के रूप में प्राप्त हुआ है परन्तु स्वास्थ्य प्रदान करने में अथवा रोगों के उपचार करने में इस प्राकृतिक वातावरण का कितना महत्व है। इसका ज्ञान भारतवर्ष में अप्रारम्भिक तरीकों से उपचार हेतु प्रयोग किया जाता था, परन्तु एक विधिवत उपचार पद्धति के रूप में भारतवर्ष के कुछ प्रमुख प्राकृतिक चिकित्सकों द्वारा किया गया। इस प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा भारत वर्ष में विभिन्न स्थानों पर प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र व प्राकृतिक चिकित्सालय स्थापित किये, इन चिकित्सालयों में प्राकृतिक वातावरण सन्तुलित एवं कच्चा आहार व प्रकृति प्रदत्त पंचमहाभूतों द्वारा उपचार किया जाना शुरू हुआ। इस पंचमहाभूत चिकित्सा के प्रचार–प्रसार हेतु दक्षिण भारत से उत्तर भारत तक अनेकों चिकित्सकों द्वारा अपनाया गया। महात्मा गांधी व मुरारजी देशाई जैसे महान नेता भी इसे अछूते नहीं रह पाये । उन्होने इसे अपने जीवन में पूर्णतया अपना

लिया। ऐसे ही कुछ और प्राकृतिक चिकित्सा विशेषज्ञों के जीवन के विषय में तथा उनके द्वारा स्थापित किये विभिन्न चिकित्सालयों में किये जाने वाले उपचार के विषय में तथा इन विशेषज्ञों द्वारा लिखित रचनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त करने हेतु हम कुछ विशेष प्राकृतिक चिकित्सकों का अध्ययन इस इकाई में करते है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य भारतवर्ष में प्राकृतिक के प्रादुर्भाव अथवा विकास किस प्रकार हुआ। इस विकास के प्रमुख विशेषज्ञ कौन–कौन रहे उनका जीवन परिचय का अध्ययन और उनके द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा क्षेत्र में किये गये योगदान का अध्ययन करना है।

6.3 डॉ0 जानकी शरण शर्मा

प्राकृतिक जीवन को महत्व देते हुये डॉ0 जानकी शरण शर्मा जी ने ऐसे समय पर पर्दापण किया, जब चिकित्सा क्षेत्र में प्राकृतिक चिकित्सा की बहुत अधिक आवश्यकता थी। डॉ0 जानकी शरण शर्मा का जन्म 1935 में उत्तर प्रदेश में हुआ। इनकी पुस्तक ''रोगों की अचूक चिकित्सा'' और ''अचूक चिकित्सा के प्रयोग'', जिनको भारत के प्रसिद्ध लीडर पेस कई संस्करण प्रकाशित कर चुके है। भारतीय प्राकृतिक चिकित्सकों और प्राकृतिक चिकित्सा प्रेमियों में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसने डॉ0 जानकी शरण शर्मा की दो दुर्लभ पुस्तकों से मार्ग दर्शन प्राप्त न किया हो। इन पुस्तकों को पढ़कर अनेको रोगियों ने स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया है। प्राकृतिक जीवन कैसे अपनी जीवन शैली में उतारा आदि विशेष जानकारी इसके माध्यम से प्राप्त करते है। विद्यार्थी पुस्तकों का अध्ययन कर प्राकृतिक चिकित्सा रोगो के बारे में जानकारी प्राप्त कर रहे है। डॉ0 जानकी प्रसाद शर्मा का नाम भारतीय प्राकृतिक चिकित्सों में अग्रणी क्षेणी में आता है। इन पुस्तकों के द्वारा उनका नाम प्राकृतिक चिकित्सा के इतिहास में अमर रहेगा। इनके द्वारा रचित पुस्तक केवल सरल ही नहीं अपितु रोगोपचार में एक मार्ग दर्शक का कार्य भी करती है। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सा के सरल व सहज प्रयोग करते हुये पंच तत्व को महत्व प्रदान किया है।

6.4 डॉ0 कुलरंजन मुखर्जी

डॉ0 कुलरंजन मुखर्जी का जन्म बांग्लादेश, ढाका के मदारीपुर नामक स्थान पर हुआ था। बचपन से ही उन्हे प्रकृति एवं प्राकृतिक चिकित्सा से विशेष प्रेम था। किशोरावस्था में उन्होने प्राकृतिक चिकित्सा का प्रयोग स्वंय पर करके अद्भुत परिणाम प्राप्त किये। इस आर्ट ऑफ हीलिंग से प्रेरणा पाकर उन्होने योगा व प्राकृतिक चिकित्सा को ही जीवन का ध्येय बना लिया। सन् 1930 में डॉ0 मुखर्जी कलकत्ता में हाजरा रोड पर स्थित नेचर केयर अस्पताल में कार्यरत रहे। इसके पूर्व अंग्रेजी शासन काल में डॉ0 मुखर्जी बांग्लादेश ढाका के मदारीपुर में नेचर केयर अस्पताल में रहे। डॉ0 मुखर्जी ने प्राकृतिक चिकित्सा को भारत में भी प्रोत्साहित किया जबकि भारतीय जनमानस उस समय प्राकृतिक चिकित्सा (आर्ट ऑफ हीलिंग) के प्रति जागरूक नहीं था। इसके अतिरिक्त डॉ0 मुखर्जी ने इस तकनीक के द्वारा जीवन में सफलता हासिल की। अपने नेचर केयर अस्पताल में उन्होने आन्तरिक रोगी विभाग (इनडोर) और बाहय रोगी विभागों (आउटडोर) की समुचित व्यवस्था की थी। सुबह से शाम तक बहुत से रोगी उनके व उनके सहायकों के पास इलाज के लिए आते थे। अपने जीवन काल में उन्होने हजारों असाध्य रोगियों को ठीक किया। गरीब बेसहारा

रोगियों का भुगतान रहित इलाज करके डॉ0 मुखर्जी ने उनकी मंगलकामनायें अर्जित की और उनके लिए भगवान सदृश बन गये। उनकी तुलना ऐलोपेथी के सीनियर डॉ0 विधान चन्द्रा के साथ की जाती थी। डॉ0 मुखर्जी पर विश्वास के कारण ही पुज्य बापु जी उनके पास बहुत से रोगियों को भेजते थे और बापु जी द्वारा भेजे गये रोगियों का सन्तोषजनक इलाज भी होता था।

डॉ0 मुखर्जी शाकाहारी थे। अविवाहित रहकर उन्होने एक सात्विक जीवन जिया। वे अपने कर्तव्य के प्रति सजग व जागरूक थे। प्रातः 04:00 बजे जागना व रात्रि में 10:00 बजे शमन उनके जीवन का अंग रहा था। जीवन पर्यन्त उन्होने स्वंय को अध्ययन लेखन व रोगियों की देखभाल में व्यस्त रखा। वे ईमानदार थे। डॉ0 मुखर्जी डॉ0 वेंकट को विशेष स्नेह करते थे। अक्सर डॉ0 वेंकट रोजी डॉ0 मुखर्जी के पास कलकत्ता में हाजरा रोड स्थित अस्पताल में आया करते थे। डॉ0 मुखर्जी ने अपनी लिखी पुस्तक प्रोटेक्टिव फूड्स इन हेल्थ एण्ड डिसीज अपने भाई और मित्र डॉ0 विठुल दास मोदी को समर्पित की। बापु जी का प्राकृतिक चिकित्सा में पूर्ण विश्वास था। जब पुज्य बापु जी नोया खाली (बंग्लादेश) गये वहां भी डॉ0 मुखर्जी को रोगियों के इलाज हेतु बुलाया। डॉ0 मुखर्जी द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा में दिये अद्भुत परिणामों को देखकर गांधी जी भी दंग रह गये। गांधी जी के देहावसान पर डॉ0 मुखर्जी अत्यधिक दुखित हो गये और भोजन भी नहीं कर पायें।

डॉ0 मुखर्जी रविन्द्रा सारानी और डॉ0 धरमचन्द स्वारागी के साथ माखाडी रिलीफ सोसाइटी हॉस्पिटल (नेचर केयर डिपार्टमेन्ट) में कार्यरत हो गये। इस अस्पताल की भुगतान राशि कम थी। डॉ0 मुखर्जी अपनी आय का 50 प्रतिशत योगदान प्राकृतिक चिकित्सा में लगाते थे।

स्न् 1956 में डॉ0 मुखर्जी ने अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद की स्थापना की। कलकत्ता से शुरू होकर व रजिस्ट्रेशन प्राप्त कर यह दिल्ली में स्थित किया गया। डॉ0 मुखर्जी ने बांग्ला और हिन्दी और अंग्रेजी में बहुत सी किताबें लिखी वे भारत में अपने विषय के उच्च लेखक और विशेषज्ञ थे। उनके द्वारा लिखी प्राकृतिक चिकित्सा पर किताबें आज भी सराहनीय एवं सहायक एवं लाभप्रद है।

डॉ0 मुखर्जी द्वारा लिखी किताबें ।

1— अभिनव प्राकृतिक चिकित्सा
2— दैन्दिनी रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा
3— पुराने रोगो की गृह चिकित्सा
4— खाद्य की नयी विधि
5— स्त्री रोगों की गृह चिकित्सा
6— शिशु रोगों की गृह चिकित्सा
7— सत्य की खोज में
8— प्राटैक्टिव फूड्स इन हेल्थ एण्ड डिसीज

6.5 डॉ0 के लक्ष्मण शर्मा

आपके प्रमुख शिष्य आचार्य स्वामीनाथन जी ने केवल जीवन शैली के परिवर्तन से ही प्राकृतिक चिकित्सा जगत में अपने की स्थापित किया है तो आप समझ सकते है कि डॉ0 लक्ष्मण शर्मा का ज्ञान कितना ऊंचा होगा। भारत के प्राकृतिक चिकित्सा जगत में पितामाह डॉ0 के लक्ष्मण शर्मा का जन्म तमिलनाडू में हुआ। उच्च शिक्षा प्राप्त कर उन्होने अपना

सारा जीवन प्राकृतिक चिकित्सा को समर्पित कर दिया। अपने जीवन में खान–पान रहन–सहन के बारे में विशेष ध्यान दिया। मनुष्य को प्राकृतिक जीवन कैसे जीना चाहिए, अपना आचरण कैसा रखना चाहिए। इस विषय पर विशेष ध्यान रखा। अंग्रेजी भाषा में लिखित प्रैक्टिकल नेचर क्योर विशाल ग्रन्थ उनकी अमर कृति है। देश–विदेश में उनके सैकड़ो शिष्य प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार–प्रसार में प्राकृतिक चिकित्सा में बढ़ावा देने में अग्रसर है। इनकी चिकित्सा पद्धति से कई रोगियों ने स्वास्थ्य लाभ व प्राकृतिक जीवन कैसे जीया जाए। इसका बहुत लाभ प्राप्त कर रहे है।भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा में इनका काम अविस्मरणीय है।

6.6 डॉ0 बालेश्वर प्रसाद

महान विभूति डॉ0 बालेश्वर प्रसाद सिंह का प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान रहा है। इन्होने भारत के कोने–कोने में प्राकृतिक का प्रचार एवं इन चिकित्सको द्वारा हजारों लोगो को अनेक रोगो से निदान मिले इस उद्देश्य से शिविरों का आयोजन करके हजारों लोगों को उनके कष्टो का प्रचार मुफ्त कराया तथा अनेक पत्रिकाओं का सम्पादन कुशलता पूर्वक किया जिसमें ''जीवन रेखा'' मासिक पत्रिका का सम्पादन भी इनके द्वारा रचित है। इसके व्यवहार आचरण तथा वेशभूषा में सरलता विराजमान थी यह पीली चादर व धोती का प्रयोग किया करते थे डॉ0 बालेश्वर प्रसाद सिंह जी महात्मा गांधी के प्राकृतिक चिकित्सा की भावना से बहुत प्रेरित थे और महात्मा गांधी की विशेष सेवा भावना से प्रेरित होकर अपना सम्पूर्ण जीवन प्राकृति चिकित्सा की सेवा में लगा दिया। इन्होने अपने परिश्रम से कुशल प्रशिक्षण देकर उनके युवकों को कुशल प्राकृतिक चिकित्सक बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया इनके कुशल एवं योग्य चिकित्सकों में महात्मा गांधी जगदीश्वरानन्द जी व डॉ0 बिट्ठलदास मोदी जी प्रमुख है।

6.7 डॉ0 महावीर प्रसाद पोधार :–

पितामाह डॉ0 महावीर प्रसाद पोधार प्राकृतिक चिकित्सा के प्रसिद्ध और उल्लेखनीय चिकित्सकों में से एक है। इन्होने प्राकृतिक चिकित्सालय जो कि डॉ0 द्वारा निर्मित था। उसमें रहकर ऐसे असाध्य और हजारों निराश रोगियों का उपचार करके उनमें एक नया आत्मविश्वास और एक नया जीवनदान दिया हजारों लोगों को प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा के गुणों के बारे में बताया। तथा असाध्य रोगों से हारे हुये लोगों को ठीक करके उनके मार्ग को एक नयी दिशा बतायी उन्होने प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्तों का बताया और इसके अन्तर्गत बताया कि बाहरी आधार्वाद के अतिरिक्त मनुष्य प्रायः आहार विहार में भूल करने के कारण ही बीमार पड़ता है। इन भूलों का कारण उसका इन्द्रियों के विषय में लोभ तथा अज्ञान होता है। अत्यधिक खाना खुराक सम्बन्धी मुख्य गलतियां है। इनके अनुसार यदि आहार विहार खान–पान सोना–जागना आदि युक्त उचित मर्यादा पूर्ण रखा जाय और सब काम युक्त रूप से ठीक–ठीक किये जाएं जो योग दुखः नाशक होता है यानि ऐसी जिन्दगी बिताने वाले को कष्ट नहीं उठाना पड़ता है। इन्होने अनेक पुस्तकें अपनी मात्र भाषा में ही लिखी जिनका आज भी दिल्ली में साहित्य मण्डल कनोट पेलेस से रास्ता सम्पादन किया जा रहा है। इन्होने महात्मा गांधी के आदर्शो और प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्तों से प्रेरित होकर इस चिकित्सा को अपनाया और गोरखपुर के आरोग्य मन्दिर के प्रमुख संस्थापक रहे। डॉ0 महावीर प्रसाद पोद्दार जी ने प्राकृतिक चिकित्सा की विशेषज्ञता में लिखा है। बुद्धिमान व्यक्ति और प्राकृतिक उपचारक का कार्य लोगो को ऐसी जीवन पद्धिति

आहार–विहार रखना सिखाना है कि वे बीमार न पड़े क्योकि बीमार न पड़ता बहुत आसान है। कहा है – पक्षलनादि पड़कस्य ''दूरादस्पर्शन'' अर्थात् कीचड़ में पड़कर उसे धोने की परेशानी की अपेक्षा अच्छा है। कि हम उससे दूर ही रहें।

इस प्रकार जीवन भर प्राकृतिक चिकित्सा का महत्व और गुणों का प्रचार–प्रसार करने के बाद इस नटवर संसार से विदा लेकर डॉ0 महावीर प्रसाद पोद्दार के जीवन का सूर्य अस्त हो गया।

6.8 डॉ0 शरण प्रसाद

प्राकृतिक चिकित्सा विशेषज्ञों की जब भी चर्चा की जाती है तो उनका महत्व और भी अधिक हो जाता है। उन्होने बड़े–बड़े चिकित्सालयों का संचालन क रनाम पैदा किया है। डॉ0 शरण प्रसाद का नाम प्राकृतिक चिकित्सा के मुख्य चिकित्सकों में आता है। आपने अनेक वर्षो तक भारतीय चिकित्सा विद्यापीठ कलकत्ता में प्राचार्य एवं मुख्य चिकित्सक के रूप में कार्य किया। इसके पश्चात कई वर्षो तक गांधी जी के द्वारा महाराष्ट्र में संस्थापित निसगो उपचार केन्द्र उरूली कांचन के मुख्य चिकित्सक रहे। जहां पर अपने हजारो की संख्या में रोगियों को स्वास्थ्य लाभ प्रदान किया तथा गुजरात प्रदेश में प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान के आनरेसी निर्देशक के पद पर असीम रहे। प्राकृतिक चिकित्सा के अनेक प्रामाणिक ग्रन्थों का लेखन भी किया। जिन्हे सर्व सेवा संघ वाराणसी ने प्रकाशित किया। आपके अनुभव तथा प्रेरणा द्वारा भारत वर्ष में अनेको चिकित्सक प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकें। दोनो चिकित्सालय आज देश के बहुत ही प्रतिष्ठित प्राकृतिक चिकित्सालयों की श्रेणी में आते है। ऊरली कांचन आज देश का ऐसा एक मात्र प्राकृतिक चिकित्सा उपलब्ध कराने पर रोगियों की संख्या पूरे देश में सबसे अधिक है। इसकी स्थापना महात्मा गांधी जी द्वारा की गई है।

6.9 डॉ0 बिट्ठलदास मोदी

श्री बिट्ठलदास मोदी का जन्म 25 अप्रैल, सन् 1912 ई0 में जनपद गोरखपुर में हुआ था उनके पूर्वज राजस्थान के गुढ़ा कस्बे के रहने वाले थे जो बाद में वहां से अमृतसर में आकर बसें फिर वहां से मोदी जी के दादा श्री दुर्गादत्त जी अपने पिता के साथ उत्तर प्रदेश के गाजीपुर में आकर बस गये और, फिर अपने व्यवसाय के सिलसिले में गोरखपुर आ तो स्थायी रूप से यहीं बस गये गोरखपुर जनपद के लहसड़ी गांव में मोदी जी श्री सेठ गोविन्ददास मोदी के पुत्र–रत्न के रूप में जन्में

उन्होने मैट्रिक तक की शिक्षा गोरखपुर में प्राप्त की उच्च शिक्षा के लिए वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय चले गयें कॉलेज जीवन से ही हिन्दी भाषा और साहित्य में उनकी गहरी रूचि थी वे हिन्दी से एम0ए0 करके कालेज में अध्यापक बनना चाहते थे, लेकिन बी0ए0 की परीक्षा देते समय वे गंभीर रूप से बीमार पड़ गये तीन वर्षो तक सभी तरह की दवा खाते रहने पर भी जब वे ठीक नहीं हुए, तब अंत में उन्होने प्राकृतिक–चिकित्सा का सहारा लिया उस समय प्राकृतिक–चिकित्सा के विशेषज्ञ सहजता से उपलब्ध नहीं थे, अतः, उन्होने स्वंय ही प्राकृतिक–चिकित्सा की किताबें पढ़–पढ़ कर उसी के आधार पर अपनी चिकित्सा शुरू की बाद में प्रयोग के प्राकृतिक चिकित्सक श्री बालेश्वर प्रसाद सिंह के मार्ग–दर्शन में वे न केवल रोगमुक्त हुए बल्कि उनका स्वास्थ्य पहले से अच्छा हो गया प्राकृतिक–चिकित्सा के प्रति उनकी आस्था और निष्ठा यहीं से उत्पन्न हुई।प्राकृतिक–चिकित्सा के ऋण से मुक्त होने के लिए उन्होने 1940 ई0 में आरोग्य मंदिर

नाम से प्राकृतिक चिकित्सालय की स्थापना कीं इस सिलसिले में उन्होने भारत भर के प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सकों से मुलाकात की और उनकी चिकित्सा–पद्धति समझीं

आजादी की लड़ाई के दौरान 1942 में वे भारत छोड़ा आन्दोलन में शामिल हो गये। 1943 में उन्हे गिरफ्तार कर लिया गया और वे 11 महीने जेल में रहे जेल में ही उन्होने एडोल्फ जस्ट की पुस्त्क 'रिटर्न टू नेचर' का हिन्दी में अनुवाद (प्राकृतिक जीवन की ओर) किया। गिरफ्तारी के पूर्व उन्होने गांधी जी की रचनात्मक प्रवृत्तियों पर केंद्रित पत्रिका जीवन–साहित्य का संपादन भी किया । 1947 में उनकी मुलाकात गांधी जी से हुई उसी वर्ष उन्होने प्राकृतिक–चिकित्सा का संदेश जन–जन तक पहुंचाने के लिए 'आरोग्य' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन शुरू कर दिया जो आज तक नियमित रूप से प्रकाशित किया हो रहा है और यह अपने प्रकाशन के 63 वर्ष पूरे कर चुका है। 1938–39 में उन्होने प्रयाग से प्रकाशित होने वाले पत्र 'जीवन–सखा' का भी सम्पादन किया ।

प्राकृतिक–चिकित्सा में अपने ज्ञान और अनुभव के कारण, राष्ट्रीय स्तर पर एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त करने के बाद, मोदी जी ने भारत के बाहर प्राकृतिक चिकित्सा की प्रगति का अध्ययन करने के लिए, 1956 और 1970 में यूरोप के अनेक देशों तक अमेरिका की यात्रा की और उस दौरे में वहां के नामी–गरामी प्राकृतिक चिकित्सकों से भेंट की तथा उनके प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र देखें वहां से और अनुभव–सम्पन्न होकर, वे स्वदेश लौट कर प्राकृतिक–चिकित्सा के काम को आगे बढ़ाने में लग गये विदेश–भ्रमण से लौटकर उन्होंने 'यूरोप–यात्रा' नामक पुस्तक लिखी ।

प्राकृतिक–चिकित्सा की विधिवत् शिक्षा देने पर लिए उन्होने सन् 1962 में गोरखपुर स्कूल ऑफ नेचुरल थेराप्यूटिक्स की स्थापना की जिससे प्रशिक्षित होकर उनके कई हजार शिष्य (छात्र–छात्राएं) देश के विभिन्न भागों में प्राकृतिक–चिकित्सा के काम में लगे हुए है।

मोदी जी कांग्रेस कार्य समिति के सदस्य भी रहें खादी ग्रामोद्योग एवं हरिजन–सेवा में उनकी विशेष रूचि रहीं इस सिलसिले में उन्होने प्रख्यात समाजसेवी बाबा राघवदास एवं श्री महावीर प्रसाद पोद्दार के साथ हरिजन–सेवा का काम किया उन्होने ही गोरखपुर के डोम–वर्ग को, जिसे साल्वेशन आर्मी द्वारा शाम को बन्द कर दिया जाता था और सबेरे छोड़ा जाता था, श्री गोविन्द बल्लभ पन्त की कृपा से मुक्त कराया और उसे स्वतंत्र रूप से रहने की सुविधा दिलायी। राष्ट्रीय कार्यक्रम के सिलसिले में उन्होने अनेक जगहों में चरखा कातने एवं चरखा चलाना सिखाने के लिए भी केन्द्रों की स्थापना की उन्होने हमेशा राजनीति से अधिक रचनात्मक कार्यो को प्राथमिकता दी।

प्राकृतिक–चिकित्सा के प्रचार–प्रसार के लिए उन्होने 'आरोग्य' के अलावा, शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए 'रोगों' की सरल चिकित्सा, स्वास्थ्य के लिए फल–तरकारिया, बच्चो का स्वास्थ्य एवं उनके रोग, दुग्ध–कल्प, उपवास से लाभ, उपवास चिकित्सा, आदर्श आहार, आहार चिकित्सा, कच्चा खाने की कला, तन्दरूस्त कैसे रहे, सुगठित शरीर, सर्दी जुकाम खांसी, रोगों की नयी चिकित्सा, प्राकृतिक जीवन की ओर, जीने की कला, उठो, जीने का मर्म, बढ़ो, आस्टियोपैथी : सिद्धान्त और व्यवहार, सुखमय बुढ़ापा आदि पुस्तकें प्रकाशित की रोगों की सरल चिकित्सा पुस्तक का अनुवाद अंग्रेजी तथा अनेक भारतीय भाषाओं में किया गया है इनके अलावा आकाशवाणी तथा दूरदर्शन से भी प्राकृतिक–चिकित्सा तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी उनकी वार्ताओं का प्रसारण समय–समय पर होता रहा।प्राकृतिक चिकित्सा एवं समाजसेवा के क्षेत्र में उनकी श्रेष्ठ सेवाओं के लिए उन्हें 1997 में युवा चेतना समिति, गोरखपुर द्वारा 'कर्मवीर सम्मान' तथा 1999 में भारतीय

फनकार सोसाइटी, लखनऊ द्वारा 'मदर टेरेसा अवार्ड' प्रदान किया गया हरी सिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म0प्र0) से 'विट्‌ठलदास' मोदी के कृतित्व का अनुशीलन शीर्षक से श्री ओम प्रकाश दूबे ने शोध–ग्रन्थ प्रस्तुत किया । हरी सिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के ही भूतपूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ0 कान्तिकुमार द्वारा, लिखी 'विट्‌ठलदास मोदी होने का अर्थ' पुस्तक का प्रकाशन 1995 में हुआ। श्री विट्‌ठलदास मोदी ने 'यादें' नाम से संस्मरणों की एक पुस्तक 1999 के अक्टूबर में प्रकाशित की, जो 'विट्‌ठलदास मोदी होने का अर्थ' की पूरक पुस्तक मानी जाती है। मोदी जी के जीवन पर एक वृत्तचित्र का निर्माण एवं प्रदर्शन गोरखपुर दूरदर्शन केन्द्र द्वारा 1997 में किया गया । मोदी जी को संगीत एवं नाट्‌यकला में भी गहरी अभिरूचि थीं आरोग्य मंदिर का भवन स्थापत्य–कला के उनके ज्ञान का साकार रूप है।मोदी जी ने प्राकृतिक–चिकित्सा में मानस (माइण्ड) के निर्मलीकरण के लिए भगवान् बुद्ध द्वारा प्रवर्तित विपश्यना ध्यान–साधना का समावेश किया जो लगभग ढाई हजार वर्षो से म्यामां (वर्मा) में सुरक्षित थी, और पुनः भारत आयीं मोदी जी विपश्यना–ध्यान–साधना के आचार्य भी थे ।

अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक (लगातार 60 वर्षो तक) प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति पूर्णतः प्रतिबद्ध तथा समर्पित रहते हुए प्राकृतिक चिकित्सा के प्रेरणा–पुरूष विट्‌ठलदासस मोदी गत 23 मार्च, 2000 को 'क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर' में सदा–सदा के लिए समा गये ।

6.10 डॉ0 एस0 जे0 सिंह

डॉ0 एस0जे0 सिंह ने प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा रोगियों के असाध्य रोगो को दूर किया तथा हजारों लोगों में प्राकृतिक चित्सिा के प्रति जागरूकता उत्पन्न की वह बंगाल में प्राकृतिक चिकित्सा के चार वर्षीय कालेज के प्रिंसिपल एवं मुख्य चिकित्सक रहे बाद में अपना निवास स्थान स्थायी रूप से बदल दिया तथा लखनऊ में निवास करने लगे इन्होने विभिन्न भाषाओं में कई 40 से भी अधिक पुस्तकों को सम्पादित किया। इन भाषाओं में अंग्रेजी और हिन्दी प्रमुख भाषायें है। यह जीवन परियन्त करीब नब्बे वर्ष की अवस्था तक सक्रिय रहकर देश–विदेश में प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार करते रहे तथा स्वंय भी विदेश से प्राकृतिक चिकित्सा का प्रशिक्षण लेते रहे और अपने द्वारा लिये गये प्रषिक्षण को प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा लोगो के असाध्य रोग को दूर करने में समर्पित कर दिया इन्होने एक प्रकृति वाणी मासिक पत्रिका का सम्पादन किया वे प्रकृति निकेतन विद्या पीठ, डायमण्ड हार्बर के प्रिंसिपल एवं मुख्य चिकित्सक भी रहे। वे प्रमुख अनुसंधानों के सदस्य भी रहे जिसमें केन्द्रीय रोग एवं प्राकृतिक चिकित्सा प्रमुख है। इस प्रकार से डॉ0 एस0जे0 सिंह ने अपना सारा जीवन प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में लगा दिया। अन्त में भारत के मूर्धन्य चिकित्सक इस संसार से अलविदा लेकर अपने नष्वर शरीर को त्याग दिये।

6.11 डॉ0 हीरा लाल

भारत के मूर्धन्य प्राकृतिक चिकित्सकों में डॉ0 हीरा लाल जी का विशेष स्थान है। इन्होने अन्य प्राकृतिक चिकित्सकों के साथ रहकर गोरखपुर के अरोग्य मन्दिर में डॉ0 विटठ्लदास और डॉ0 महावीर प्रसाद पोद्‌दार के साथ कार्य प्रारम्भ किया। इसके बाद यह ग्राम मगवारा उत्तर प्रदेश जिला उन्नाव में प्राकृतिक चिकित्सा के प्रकाश और प्रचार–प्रसार में प्रमुख रूप से स्वतन्त्र भागीदारी दिखायी इन्होने देश भर में प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार प्रसार में अपना महत्वपूर्ण सहयोग दिया। इन्होने महामंत्री के रूप में अखिल भारत प्राकृतिक

चिकित्सा परिषद एवं योग परिषद के कार्य भार को संभाला तथा प्राकृतिक चिकित्सा का देश भर में प्रचार और प्रसार किया इन्होने हिन्दी और अंग्रेजी में 30 पुस्तकों का सम्पादन किया इस प्रकार से जीवन पर्यन्त अपने अथक परिश्रम द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा को आगे बढ़ाया।

6.12 डॉ0 बी0 वैंकेटराव व डॉ0 श्रीमती विजय लक्ष्मी

श्रीमती डॉ0 विजय लक्ष्मी भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा के इतिहास में एक विशेष व्यक्तित्व माना जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा में मुख्यतया पुरूषों की भूमिका ही विशेष रूप से अग्रणी रही है परन्तु एक स्त्री होते हुये भी उन्होने प्राकृतिक चिकित्सा में रूचि बढ़ायी और अपने पति के साथ कदम से कदम मिलाते हुये प्राकृति चिकित्सा के क्षेत्र को विशेष दर्जा दिलाने में योगदान दिया है। डॉ0 विजय लक्ष्मी ने अपने पति डॉ0 बी वेंकेटराव के साथ डॉ0 कृष्णम राजु से प्राकृतिक चिकित्सा की विधिवत शिक्षा ग्रहण की। डॉ0 कृष्णम् राजु भीमावरम् में प्रशिक्षण हेतु विभिन्न प्राकृति चिकित्सा प्रेमियों को शिक्षा प्रदान कर योग्य चिकित्सक बनाने का कार्य किया करते थे। भीमावरम आन्ध्रप्रदेश का एक सुन्दर स्थान है जहां पर एक विशाल प्राकृतिक चिकित्सालय बनाया था। उसी स्थान पर प्राकृतिक चिकित्सालय के साथ आदर्श प्राकृति चिकित्सा शिक्षण संस्था का भी शुभारम्भ किया। और उस संस्था को उसमानिया यूनिवर्सिटी से मान्यता दिलाई। इस संस्था से योग्यता प्राप्त कर विभिन्न छात्र–छात्राओं ने शिक्षा प्राप्त करके भारत वर्ष में ही नहीं अपितु विदेशों में भी प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति का परचम लहराया।

6.13 डॉ0 एस0 स्वामी नाथन

डॉ0 शेर्षाद स्वामी नाथ जी जिनका जन्म 15 सितम्बर 1922 को हुआ वे केन्द्रीय सरकार में एक उच्च अधिकारी के पद पर नियुक्त होते हुये भी प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में सराहनीय योगदान उनका रहा। उन्होने सन् 1948 से प्राकृतिक चिकित्सा की सेवा भाव से अपने मन में संकल्प लिया तथा उसकी को पूरा करने के उद्देश्य से एक राज्य में ही नहीं अपितु पूरे भारत वर्ष में निस्वार्थ भाव से प्रचार–प्रसार किया प्राकृतिक चिकित्सा को उन्होने डॉ0 (स्वर्गीय) के0 लक्ष्मण शर्मा के सानिध्य में रहने में विशिष्टता प्राप्त की तथा इस कार्य को बड़ा रूप देने के लिए एक संस्था का निर्माण भी किया जो दक्षिण भारत में कार्य करती है। मुख्यतया वे 1940 से दिल्ली में आकर इस कार्य को करना प्रारम्भ किया और अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक उन्होने जन साधारण में प्राकृतिक जीवन शैली के विशुद रूप को स्थापित करने के लिए पार्को तथा मन्दिरों के प्रांगण का सहारा लिया उन्होने प्राकृतिक चिकित्सा के सरलतम रूप को लोगो तक पहुंचाया, अधिकतर लोगो को उन्होने मात्र खान–पान, रहन–सहन, आचार व्यवहार एवं विचार द्वारा ही स्वस्थ रहने की कला पर विशेष जोर दिया इनका मत था कि रोग आने ही न दिये जाये तो चिकित्सा की आवश्यकता ही नहीं फिर भी यदि आ जाये तो मात्र उपवास अथवा रसों के सेवन द्वारा स्वास्थ्य प्राप्त करने की कला उन्होने प्रदान की है। डॉ0 एस0 स्वामी नाथन जीन के द्वारा लाइफ नेचुरल नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन किया गया है।

6.14 सारांश

आपके इस इकाई में भारत वर्ष में प्राकृतिक चिकित्सा के आगमन में जिन महानुभावों का विशेष योगदान रहा है अर्थात् इनके कारण प्राकृतिक चिकित्सा को भारत में प्रचलित व

प्रायोगिक बनाया है। प्राकृतिक चिकित्सा प्रमुख विशेषज्ञ डॉ0 जानकी शरण शर्मा, आदि प्राकृतिक चिकित्सा के उपचार केन्द्र व चिकित्सालय प्रारम्भ करवाकर अपना पूरा जीवन इस पद्धति के विकास व जनउपयोगी बनाने के लिए समर्पित किया ।

6.15 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. प्राकृतिक आयुर्विज्ञान — राकेश जिन्दल
2. वृहद प्राकृतिक चिकित्सा — डॉ0 ओ0पी0 सक्सेना

6.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. डॉ0 विट्ठलदास मोदी का जीवन परिचय दीजिए ।
2. डॉ0 कुलरंजन मुखर्जी की जीवनी व उनके द्वारा रचित पुस्तकों का विवरण दें ।
3. डॉ0 हीरा लाल व महावीर प्रसाद पौद्दार का जीवन परिचय दें ।
4. डॉ0 एस0 स्वामी नाथन एवं डॉ0 श्रीमती विजय लक्ष्मी के विषय में संक्षिप्त वर्णन करें ।
5. डॉ0 के लक्ष्मण शर्मा एवं डॉ0 बालेश्वर प्रसाद सिंह के प्राकृतिक जीवन का वर्णन करें ।

इकाई–7 महात्मा गांधी तथा प्राकृतिक चिकित्सा

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 महात्मा गांधी का बचपन एवं प्राकृतिक जीवन
7.4 महात्मा गांधी एवं प्राकृतिक चिकित्सा का सम्बन्ध
7.6 सन्दर्भ ग्रन्थ
7.5 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

गांधी जी और प्राकृतिक चिकित्सा व योग के सम्बन्धों का वर्णन करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि गांधी जी को इस ओर प्रेरित करने की पाठशाला भी परिवार रहा है। जैसा कि कहा गया है, शिशु की प्रथम पाठशाला परिवार होता है। अर्थात् बाल्यअवस्था में बालक परिवार के सदस्यों से ही सीखता है। बड़ो का आचरण जैसा होगा वैसा ही बालक देखकर सीखता है। उसी प्रकार से गांधी जी ने अपनी ''माता पुतली बाई जी'' से सयम, सेवा, मितव्यता, सहनशीलता, उपवास,ब्रह्मचर्य इत्यादि को अपने जीवन में उतारने के लिए ज्ञान प्राप्त किया। इन्ही बचपन की शिक्षाओं के पदचिन्हों पर चलते हुये देश में ही नहीं अपितु विदेशों में भी अपनी जीवन शैली से अलग नहीं होने दिया। जहां चाह व राह वाली कहावत को चरितार्थ करते हुये उन्हे 'एडोल्फ जस्ट' द्वारा रचित ''रिटर्न टू नेचर'' पुस्तक मिल गयी जिसने उनके पूरे विचार ही परिवर्तित कर दिये। इसके बाद उन्होने अपने शरीर तथा अपने सभी परिचितों का उपचार भी प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा करना आरम्भ कर दिया। तत्पश्चात गांधी जी ने एक प्राकृतिक चिकित्सालय की स्थापना की तथा जीवन शैली, योग्य एवं प्राकृतिक चिकित्सा पर पुस्तके लिखी । प्राकृतिक चिकित्सा के पचमहाभूतो के अतिरिक्त छटे तत्व ''महत्व'' को आधार मानते हुये ''रामनाम'' पुस्तक लिख डाली। गांधी जी अपना जीवन प्राकृतिक चिकित्सा के लिए लगा देना चाहते थे आइये ऐसे विशुद्ध योगी एवंम् कुशल प्राकृतिक चिकित्सक के जीवन में प्राकृतिक चिकित्सा प्रेम का अध्ययन करते है।

7.2 उद्देश्य :–

इस इकाई में गांधी जी के जीवन से जुड़ी प्राकृतिक जीवन शैली और प्राकृतिक चिकित्सा में कितनी समानता पायी जाती है का अध्ययन करेंगे। गांधी जी प्राकृतिक चिकित्सा से किस प्रकार प्रभावित हुये और इस पद्धति को अपने जीवन में उतारते हुये कैसे जनमानस तक पहुंचाने हेतु चिकित्सालय स्थापित किये उनके द्वारा लिखित पुस्तकों में योग व प्राकृतिक चिकित्सा को किस प्रकार प्रोत्साहन दिया है।

7.3 **महात्मा** गांधी का बचपन एवंम् प्राकृतिक जीवन :–

महात्मा गांधी :– राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का जन्म 2 अक्टूबर, 1869 को पोरबन्दर अथवा सुदामापुरी में हुआ था । महात्मा गांधी के बचपन का नाम मोहन दास था उनके पिता का नाम करमचन्द गांधी व माता का नाम पुतली बाई था। उनके पिता कुटुम्ब प्रेमी, सत्य प्रिय, शूर, उदार किन्तु क्रोधी भी थे। वे न्याय के शुद्ध पुजारी थे। गांधी जी की माता एक साध्वी महिला थी वे श्रद्धालु थी बिना पूजा पाठ के कभी भोजन भी नहीं किया करती थी

वे कठिन से कठिन व्रत आरम्भ करती थी और उन्हें निर्वाहन पूरा करती थी। धारण किये हुये व्रतों को वे अस्वस्थ होने पर भी नहीं छोड़ती थी जो उनको दृढ़प्रतिज्ञा होने व ईश्वरीय आस्था का प्रमाण भी है वे व्यवहार कुशल स्त्री थी। गांधी जी के व्यक्तित्व पर उनकी माता पुतली बाई का गहरा प्रभाव था । माता के अनन्त् प्रेम, आसीम, तपोमय जीवन और अटल इच्छा शक्ति की अमिट छाप गांधी जी के व्यक्तित्व में समाहित थी । अपनी माता के वात्सल्य का अंश गांधी जी ने आत्मसात किया और उम्र के साथ इसका प्रवाह इस तेजी तेजी से बढ़ा कि अन्ततः परिवार और समुदाय की सीमाओं को तोड़कर सारी मानवता में व्याप्त हो गया । यह सर्वविदित ही है कि प्रत्येक बालक में महान बनने के गुण होते है । उसे उचित मार्ग दर्शन, परिवेश मिल जाए और भय, क्रोध, लाभ, देशभाव, हिंसा, छल आदि नकारात्मक मानसिक प्रवृतियों का उन्मूलन कर प्रकृति सर्दृश गुण, प्रेम, सत्यवादिता, सहनशीलता, विनम्रता, उदारता, ममता, आत्मसंयम, क्षमा, विवेक, सेवा, त्याग आदि मानवीय मूल्यों का सम्प्रेक्षण बचपन में ही उसके अवचेतन में स्थापित हो जायें यदि इन मानवीय मूल्यों का परिपालन उसके स्वभाव का अंग बन जाये तो वह बालक बड़ा होकर एक आदर्श एवं अनुकर्णीय व्यक्तित्व में ढल सकता है जो न केवल अपने लिए बल्कि अपने परिवार समाज, देश व मानव जाति के लिए अत्यन्त मूल्यवान और उपयोगी भी सिद्ध हो सकता है। महात्मा गांधी को अपनी माता से रामनाम में श्रद्धा, तप, विनय व रोगी की सेवा करने का सबक तो मिला ही जिससे वह अपने आश्रम में कुष्ठ रोगी के घावों को स्वंय ही धोते थे, साथ ही आत्मपीड़न द्वारा दूसरों के हृदय को प्रभावित व द्रवित भी किया करते थे। यद्यपि पारिवारिक व सामाजिक समस्याओं के कारण मोहन दास की इच्छा न होते हुये भी विदेश जाना पड़ा व तथापित उन्होने अपनी मां से प्रतिज्ञा की थी कि वह मास मदिरा और नारी का स्पर्श नहीं करेगा। मांस न खाने की प्रतिज्ञा गांधी जी के लिए अक्सर कष्टकारक भी बनी रहती थी उनके मित्रो को भय रहता था कि खान पान का अत्यधिक परहेज उसके स्वास्थ को खराब कर सकता है। और अंग्रेजी समाज में वह अपना सामाज्सय भी स्थापित नहीं कर पायेगा, अपने इन आलाचकों को निरन्तर करने के लिए और यह सिद्व करने के लिए कि शाकाहारी भी अपने को नये वातावरण में ढाल सकता है। उन्होने अंग्रेजी संस्कृति की तड़क–भड़क को अपनाने का निश्चय किया । महात्मा गांधी ने अल्पकाल के लिए पूर्ण अंग्रेजी तौर तरीको को अपनाया, उन्होने इसके लिए धन की परवाह भी नहीं की और न ही समय की उन्होने लन्दन के सबसे अच्छे और फैशन में अंग्रेजी दर्जियों से सूट सिलवायें । घड़ी में लगाने के लिए सोने की चेन मंगवाई तथा कला, नृत्य और संगीत की विधिवत् शिक्षा भी विशेषज्ञों से ली । ईश्वरीय कृपा के फलस्वरूप महात्मा गांधी एक अच्छे आत्मनिरीक्षक भी थे । अतः उन्होने अनुभव किया कि इन प्रयोगों में वे स्वंय को बनावटी (कृत्रिम) बना रहे है । अंग्रेजी नाच और गाना उनकी सहजता में बाधक था उनके अनुसार दर्जी, बजाज और नाचघर उन्हे अंग्रेजी साहब तो अवश्य बना देंगे लेकिन यह कृत्रिम जीवन ऊपरी ही होगा ।

अन्ततः तीन महीने की चकाचौंध में भटकने के पश्चात उनका सहज अन्तर्मुखी मन पुनः आत्म स्वभाव में स्थापित हो गया अनावश्यक फिजूल खर्ची ने मितन्ययिता का रूप ले लिया । अब वह सस्ते कमरे में रहने लगे बस का किराया बचाने के लिए रोज आठ–दस मील पैदल चलते । इस प्रकार अपना पूरे महीने का खर्च सिर्फ दो पौण्ड में चला लेते थे । परिवार के प्रति आभार और अपने दायित्व को वह बड़ी गम्भीरता से अनुभव करने लगे अब उन्हे इस बात की विशेष प्रसन्नता कि अब खर्च के लिए भाई से अधिक धन नहीं मांगना

पड़ेगा । शुद्ध शाकाहारी होना जो प्रारम्भ में उनके लिए कष्ट कारक था अब एक महत्वपूर्ण गुण बन गया । हेनरी एस सावर की लिखी पुस्तक ''प्ले फार वेजीटेरियनिज्म'' उनके हाथ लगी और इसके तर्क उनके मन को भा गये । यद्यपि अभी तक निरामिश भोजन ग्रहण करना उनके लिए भावना का विषय था । क्योकि उन्होने माता को मास मदिरा ग्रहण न करने का वचन दिया था तथापि इस पुस्तक को पड़ने के बाद यह तर्क संगत विश्वास और आस्था से परिपूर्ण हो गया । मां के सम्मुख सम्मान भावना से अपनाया गया शाकाहार, जो एक असुविधाजनक प्रतिज्ञा थी अब उनके जीवन में शारीरिक और मानसिक अनुषासन को जन्म दिया तथा भविष्य में उनके जीवन रूपान्तरण का आधार भी बना । अब वे नये उत्साह के साथ आहार विज्ञान पर उपलब्ध प्रत्येक साहित्य को मन लगाकर पढ़ने लगे और अन्ततः इस निर्णय पर पहुंचे कि स्वाद का केन्द्र रसना न होकर मन ही है । उनका स्वाद पर नियन्त्रण उस आत्मानुशासन की दिशा में पहला कदम था जो कई वर्ष बाद पूर्ण इन्द्रिय निग्रह के रूप में अपने चरम बिन्दु पर पहुंचा । यद्यपि गांधी जी ने लन्दन जाने के पूर्व ही अपनी माता के समक्ष सम्मान के भाव से एक पत्नी व्रत धारण किया था । किन्तु कालांतर में उन्होने आत्ममंथन कर स्वंय को विषय वासना का आसक्त पाया। संयम पालन भी एक कठिन कार्य था किन्तु सेवा के सिलसिले में सयम पालन के व्रीव विचार उनके मन में स्वतः उत्पन्न होने लगे और उन्होने जान लिया कि लोक सेवा में तन्मय होने के लिए पुत्रैषणा और वित्तैषणा का त्याग करना ही चाहिए और वानप्रस्थ धर्म का पालन करना ही चाहिए । अतः उन्हे व्रत धारण के महत्व का गहराई से अनुभव हुआ अब उन्हे स्वंय के दृढ़निश्चयी न होने का आभास हुआ जिसके कारण उनका मन अनेक तरंगो और विकारो के घेरे में पड़ा रहता था । उन्होने देखा कि व्रतबद्ध न होने से मनुष्य मोह में पड़ता है । व्रत से बंधना व्याभिचार से छुटकारा पाकर एक पत्नी–व्रत का पालन करने के समान है। गांधी जी के शब्दो में, ''मैं प्रयत्न करने में विश्वास रखता हूँ, व्रत से बंधना नहीं चाहता '' यह वचन निर्बलता की निशानी है, और इसमें सूक्ष्म रूप से भोग की वासना छिपी होती है । जो वस्तु त्याज्य है, उसका सर्वथा त्याग करने में हानि कैसे हो सकती है ? जो सांप मुझे डसने वाला है, उसका त्याग मैं निश्चय–पूर्वक करता हूँ, त्याग का केवल प्रयत्न नहीं करता मैं जानता हूँ कि केवल प्रयत्न के भरोसे रहने में मृत्यु निहित है । प्रयत्न में सांप की विकरालता के स्पष्ट ज्ञान का आभाव है । विचारणीय तथ्य यह है कि हम अपने शरीर का उचित उपयोग किस प्रकार कर सकते है । प्रत्येक वस्तु का सदउपयोग और दुरूपयोग किया जा सकता है । यदि स्वार्थ सिद्धि के लिए इसका उपयोग दूसरों को नुक्सान पहुंचाकर किया जायें तो वह इसका दुरूपयोग होगा यदि शरीर का उपयोग 'सर्वजनहिताय' के उद्देश्य से किया जाये तो वह इसका सदउपयोग ही होगा। सम्पूर्ण जगत ईश्वरीय शक्ति का एक नमूना है। यदि हम इस शरीर का उपयोग उस ईश्वरीय तत्व को पहुंचाने के लिए करते है, तो शरीर आत्मा अथवा ईश्वरीय तत्व के निवास स्थान का जीता जागता हुआ मन्दिर बन जायेगा । अन्यथा धरती पर बोझ के रूप में मलमूत्र की खान ही समझा जायेगा।

साधारणतया हीरे और सोने की खान भी ऊपरी तौर पर मिट्टी की खान ही प्रतीत होती है। लेकिन अमुख स्थान पर हीरे और सोने की खान का ज्ञान होने पर मानव उस पर करोड़ो रूपये खर्च करता है और अलग से शास्त्रज्ञ बुद्धि का उपयोग भी करता है फिर आत्मा के मन्दिर रूपी शरीर के लिए हम अथवा शरीर और आत्मा के उस दिव्य मिलन के लिए हम जितना प्रयत्न करें उतना कम है।

माना जाता है कि हम इस जगत में अपने मनुष्य होने का ऋण चुकाने के लिए जन्म लेते है अर्थात् सेवा के लिए इसलिए शरीर की रक्षा के लिए हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे वह सेवा धर्म का पालन पूर्णतया कर सकें । सेवा धर्म निर्वाह करने हेतु अहकार विर्सजन व इन्द्रिय निग्रह परमावश्यक है। क्योकि उच्छखल इन्द्रियों का निग्रह करना भी एक मुख्य कार्य है। संयमित जीवन का पुनीत मार्ग प्रकट रूप में भले ही नीरस एवं अग्रघ प्रतीत हो, किन्तु परिणामतः वह कितना कल्याणकारी है यह कथन का विषय नहीं अपितु सोचने, समझने और व्यवहार में लाकर अनुभव करने का विषय है। अतः वास्तविकता यह है कि संयमशीलता के अभाव में मनुष्य अपना मनुष्यत्व खो देता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, काम, क्रोध, मोह, लोभ तथा अंहकार के वशीभूत होकर पशुओं के समान जीवन यापन करता है। विडम्बना तो यह है कि इन वासनाओं की पूर्ति कभी नहीं होती। विश्राम की आशा दुराशा मात्र होती है। कदाचित् इसका कारण स्वामी सेवक का पद परिवर्तन भी माना जा सकता है। इन्द्रियों (नौकर) का प्रभुत्व और बुद्धि और विवेक (मालिक) को उसकी दास्यता स्वीकारना माना जा सकता है। गांधी जी ने इन्द्रियनिग्रह हेतु सात्विक, आहार विहार और योगाभ्यास को अति आवश्यक माना है। यम, नियम ब्रह्मचर्य व्रत की धारणा के परिणामस्वरूप बुद्धि के शुद्ध होने की सम्भावना बढ़ जाती है और इसके निष्कर्ष के रूप पर शासन कर पायें अर्थात् मन और बुद्धि शुद्ध हो जाते है। गांधी जी ने मन और इन्द्रियों की शुद्धि के सन्दर्भ में एकांत में आत्मनिरीक्षण को बड़ा सहायक माना है जो महापुरूषों का लक्षण भी है। इससे शनै–शनै मन की चंचलता समाप्त हो जाती है। कारण हम दूसरों से अपने दुर्गण छुपा सकते है स्वंय से नहीं अतः स्थिर होकर आत्मअवलोकन करने पर चित्र में छिपे कितने ही दोष हमारे सम्मुख प्रकट होते है जिन्हे देखकर हम कॉप जाते है और भविष्य में इसकी पुनरावृत्ति न करने का संकल्प उठाते है। तात्पर्य यह कि आत्मनिरीक्षण द्वारा प्राप्त यह ज्ञान हमारे सच्चे वैराग्य और सच्ची उन्नति की कुंजी है। मन संयम का एक दूसरा साधन है, ईश्वर प्राणिधान प्रत्येक धर्म में प्रार्थना अथवा नमाज का प्रावधान मन को पवित्र करने से ही सम्बन्धित है। प्रतिदिन कुछ समय के लिए श्रद्धा भक्ति से की गयी ईश्वरीय अर्चना से मन वश में हो जाता है। गांधी जी ने पश्चिम में स्वंय को विषय भोग की एकदम छूट देने का प्रयत्न भी किया किन्तु कुछ ही समय पश्चात उन्हे यह विचार भ्रममूलक प्रतीत हुआ । गांधी जी ने वाणी में भी इन्द्रियों को चलायमान करने की शक्ति का अनुभव किया । अतः उन्होने वचन को संयमित करने का एकमात्र उपाय मौनावलम्बन को भी बताया मौन में बड़ा बल होता है। इसलिए मौन का नाम शान्ति भी है। अपनी वाणी को संयमित करने के लिए हमे सप्ताह या महीने में एक दिन बिल्कुल मौन रहना भी आवश्यक है उस दिन एकाग्रचित होकर आत्मा और परमात्मा का चिन्तन करना या गत सप्ताह वचन द्वारा यदि किसी को क्लेश हो किसी से लड़ाई की हो तो मौनावस्था में उस पर आत्म विश्लेषण किया जा सकता है। जिससे भविष्य में उसकी पुनरावृत्ति न होने देने के लिए ईश्वर से प्रार्थना की जा सके । गांधी जी मौन व्रत के महत्व को भली–भांति जानते थे । इसी कारण वह सप्ताह में एक दिन नियमित रूप से मौनव्रत धारण करते थे। कर्म, वाणी, इन्द्रियों की शुद्धता का परिणाम ही सद्आचरण है। श्री मद्भागवत में तन और मन की पवित्रता सदाचार का दूसरा नाम है। सदाचार विश्वात्मा के उन प्रधान धर्मो में से एक है जिसके समुचित अनुकरण में मानव जीवन अबाध गति से प्रवाहित होता रहता है। सदाचार ही सदविचारों की पृष्ठभूमि है। सदाचार ही आत्मा की सच्ची शक्ति का एक मात्र उपाय है। जिसकी शक्ति से गांधी जी ने सम्पूर्ण विश्व को

आंदोलित कर दिया था। उनकी आत्मा विश्व और विश्वात्मा के साथ आत्मसत हो गयी थी। तभी उन्हेने दूसरों की पीड़ा (दुख दर्द) की अनुभूति अपने भीतर अनुभव की । और वसुधैव कुटम्बकम् की भावना से ओत–प्रोत् हो गये उसका दुख, शोक को शांति सुख में परिणित करने का कार्य गांधी जी ने अपने कंधो पर ले लिया ।

गांधी जी ने सदाचार के सिद्धांतो पर मुख्यतः विचार किया क्योकि समस्त मानव जीवन की शारीरिक उन्नति का स्रोत इसी तत्व में निहित है।

सदाचारी होने के लिए मानसिक अनुशासन व सन्तुलन परमावश्यक है। मन की शक्ति अपरम्पार है, इस शक्ति का अभाव ही मनुष्य के शरीर के स्तर पर रोगो का मूल भी कारण है। तात्पर्य यह है कि रोगावस्था में रोगी की मनोभावना जैसी होगी उसी के अनुरूप उसकी परिचर्या भी होती है। बुरी मनोभावनाओं का प्रभाव हमारे शरीर पर निश्चय ही पड़ता है। केवल शरीर की ही चिकित्सा ऐसे रोगो में करना बिल्कुल अनुचित होगा जो मानसिक उद्वेगों का परिणाम है। क्योकि मन आत्मा का स्थूल रूप है और शरीर प्राणों का । अतः जब तक तीनो को चिकित्सीय आधार नहीं बनाया जायेगा तब तक एक पूर्ण स्वास्थ्य की परिकल्पना निराधार है।

मनोवैज्ञानिक के अनुसार भी अधिकांष रोग मन के भावों के अस्वस्थ होने पर ही उत्पन्न होते है।

यदि मन के भावो और श्वासों को सामान्य स्थिति में रखा जायें तो मनुष्य को रोग बहुत कम रहते है। मानव की भावना का प्रभाव उसके शारीरिक अणुओं पर तुरन्त ही पड़ता है।

हवा अथवा प्राण मनुष्य को मन से जोड़ने का कार्य करते है अर्थात् प्राण मन और शरीर के बीच का सेतू है। हम सांसो के अराजक होते ही मन की गति में परिवर्तन एकदम देख सकते है। नासिका छिद्रों द्वारा प्राण वायु (सांसों) को खीचकर हम फेफड़ो में भरते है, वह न मिले तो मनुष्य जिन्दा नहीं रह सकता। हमारे रक्त की शुद्धता इसी प्राण वायु पर निर्भर करती है। कई लोग मुंह से श्वास लेते है। जो एक बुरी आदत है नासिका से ग्रहण की गयी प्राण वायु छनकर भीतर जाती है, और गरम होकर फेफड़ो में पहुंचती है। मुंह से श्वास लेने से वायु न तो स्वच्छ ही होती है और न गरम ही हो पाती है। इसलिए गांधी जी ने प्रत्येक मनुष्य के लिए प्राणायाम अत्यधिक आवश्यक बताया। उनके अनुसार यह क्रिया जितनी आसान है उतनी ही आवश्यक भी है। अतः गांधी जी ने नियमबद्ध श्वसन की अपील की है। चलते फिरते सोते समय लोगो को अपना मुंह बन्द रखने का सुझाव भी गांधी जी ने दिया है। क्योकि यदि उनके द्वारा अपना मुंह बन्द रखा जायेगा तो नासिका कार्य स्वतः ही करेगी। जिसके कारण चित्त प्राण की गति के अनुसार रहता है। यदि प्राण ऊर्जा प्रबल होती है तो वासनाएें नियंत्रित रहती है। इन्द्रियों पर नियंत्रण बना रहता है और मस्तिष्क की स्थिरता भी बनी रहती है। यदि वासना प्रबल रहती है तो श्वसन अनियमित हो जाता है और मस्तिष्क उत्तेजित हो जाता है। इसका अभिप्राय यही है कि यदि प्रणिक शरीर ढंग से कार्य न करें तो मन भी विक्षिप्त हो जाता है। प्राण प्रवाह में संतुलन स्थापित होने पर मन भी शान्त और सन्तुलित हो जाता है।

1— हठयोग प्रदीपिका के तीसरे अध्याय में स्वात्माराम ने कहा है कि जब तक श्वास और प्राण निश्चेष्ट होते है, तब तक चित्त भी स्थिर रहता है। और इस अवस्था में वीर्य (शुक्र) का नियति नहीं हो सकता है। ऐसे समय में ही साधक की बढ़ी हुई ओजस्विता का उत्कृष्ट और उच्च लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उदात्तीकरण होने लगता है। ऐसे समय में ही वह उर्ध्वरेतस (उर्ध्व–उपर की ओर, रेतस–वीर्य) की अवस्था में पहुंच जाता है। यह एक ऐसी

स्थिति है जिसमें साधक अपनी लैगिक उर्जा का उदात्तीकरण कर लेता है और उसका चित्त शुद्ध चेतना में विलीन हो जाता है।

सामान्यतः जब साधक सांस लेते है तो वायु प्रत्यक्ष रूप से हमे तीन–चार स्थानों पर ही महसूस होती है जो कंठ, हृदय, फेफड़े और पेट यदि साधक प्राण वायु का अनुभव मस्तिष्क में भी करें तो मस्तिष्क की जाग्रति होना भी अनिवार्य ही है। यदि जाग्रति कालान्तर में उसकी स्मृति का कारण भी बन जायेगी। मन संयमित होगा व शरीर का भी रक्षण होगा। भीतर की तीव्र श्वसन प्रक्रिया से हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है। बोन मेरो में नए रक्त का निर्माण होने लगता है। आंतो में जमा मल विसर्जित होने लगता है। न्यरौन की सक्रियता से सोचने समझने की क्षमता पुनः जिन्दा हो जाती है। जैसे शीतल सुगंधित वायु प्रवाह से वातावरण हर्षित दिखाई पड़ता है वैसे ही फेफड़ो द्वारा शुद्ध वायु ग्रहण करने के परिणामस्वरूप शरीर का रोम–रोम उल्लास से भर जाता है। प्रायः देखा जाता है कछुए की श्वास लेने व छोड़ने की गति सामान्य इन्सानों से कही अधिक दीर्घ है जो उसके दीर्घायु होने का प्रमुख कारण है व्हेल मछली के दीर्घ जीवन का रहस्य भी यही स्वीकार्य है। प्राचीन ऋषि महर्षि वायु के इस रहस्य को समझते थे सम्भवतः वे कुम्भक लगाकर गुफाओं और कन्दराओं में इसी कारण बैठे रहते थे। श्वास लेने और छोड़ने में घंटो का समय प्राणायाम के अभ्यास से ही संभव हो पाता है। यही प्राणायाम का रहस्य भी है। जो शरीर से विजातीय तत्वों के निष्कासन का एक सुलभ मार्ग भी है। शरीर में दूषित वायु के एकत्र होने की स्थिति में उम्र क्षीण होती है और रोगो की उत्पत्ति होती है। पेट में पड़ा भोजन दूषित हो जाता है जब जल भी दूषित हो सकता है तो फिर वायु क्यों नहीं यदि मनुष्य दूषित वायु ही ग्रहण करता तो निरन्तर रोग और मौत के निकट जाता है। अतः गांधी जी ने प्राणायाम को आरोग्य साधन का महत्वपूर्ण अंग बताया है। नासिका द्वारा फेफड़ो में शुद्ध हवा भरनी चाहिए। अतः हमें खुले आसमान के नीचे सोने की आदत डालकर भी कई श्वसन सम्बन्धी रोगो से बच सकते है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए हवा के बाद पानी का स्थान है। क्योकि हवा के बिना कुछ क्षणों तक जीवित रहा जा सकता है और पानी के बिना कुछ ही दिनों तक इसी कारण बिना पानी की मरूभूमि में मनुष्य अपना निवास नहीं बनाता। इसकी कारण सहारा के रेगिस्तान में मनुष्य की बस्तियों का आभाव है।

सृष्टि के अन्त में (प्रलय–काल) में सृष्टि जल में समाहित हो जाती है सर्ग काल में फिर जल से ही उसका उदय होता है अर्थात् सृष्टि के आरम्भ में भगवान की चेतना–शक्ति की प्रेरणा से क्रमशः आकाश वायु तथा तेज (अग्नि) के पादुर्भाव होने के रूप तन्मात्रमय तेज के विकृत होने उससे रस तन्मात्र होता है जिससे जल तत्व की उत्पत्ति होती है। यद्यपि जल तत्व अपने शुद्ध रूप में ही स्थापित है तथापि अन्य भौतिक पदार्थो के सम्प्रेषण से वह कसैला मीठा तीखा हो जाता है।

रोगादि दोषो की तथा ताप की निवृत्ति करना सब प्रकार की स्वच्छता प्रदान करना जल का मुख्य गुण है। इसी कारण वेदों में इसकी महिमा का वर्णन किया गया है तथा ऋग्वेद में जल को औषधि के रूप में स्वीकार किया है। जल को रोगो का दुश्मन माना है। इसी कारण महात्मा गांधी ने उपयोगी साधन माना है। उन्होने पानी को छानकर व उबालकर पीने की पद्धति की खूब प्रशंसा भी की है। हवा, पानी के बिना हमारा जीवित रहना सम्भव नहीं है। वैज्ञानिक तथ्यों से ज्ञात होता है कि हम जिन तत्वों से हमारा शरीर निर्मित हुआ है। वे हमारे भोजन में (खाद्य पदार्थो) में विद्यमान होते है। इन्ही मूल तत्वों को जब हम

अपनी अज्ञानता और असावधानी के कारण शारीरिक आवश्यकता के अनुरूप नहीं दे पाते तभी हम अस्वस्थ होते है। आज इसी कारण से संसार में एक भी ऐसे व्यक्ति को खोज निकालता कठिन है जिसे हम पूर्ण शारीरिक, मानसिक अथवा आध्यात्मिक स्तर पर स्वस्थ कह सकें। प्रतिदिन परिश्रम के कारण हमारे शरीर के भीतर विभिन्न तत्वों का ह्रास होता रहता है यदि समयानुसार इनकी पूर्ति न की जाये तो अधिक दिनों तक इसका स्वस्थ रहना कठिन है। अतः शरीर में विद्यमान इन तत्वों की पूर्ति समयानुसार अति आवश्यक है जिसकी पूर्ति के मुख्य अंग शुद्ध सात्वविक आधार, निद्रा तथा विश्राम है। गांधी जी का मानना था कि बहुत से भोज्य पदार्थ (मांसाहाकर) ऐसे है जो किसी दृष्टि से शारीरिक स्तर के लिए भले ही लाभप्रद हो किन्तु मानसिक अथवा आध्यात्मिक दृष्टि से विकार उत्पन्न करने वाले ही होते है। मांस खाने से शरीर मांसल भले ही हो जाये परन्तु उससे मानसिक अथवा आध्यात्मिक स्वास्थ्यों की आशा दिवा स्वप्न के समान अर्थहीन ही है। स्वामी विवेकानन्द द्वारा लिखित भक्ति रहस्य नामक पुस्तक से ज्ञान होता है कि ईश्वर की भक्ति प्राप्त करने के लिए किये गये उपायों में सात्विक या प्राकृतिक खाद्य का सेवन करना सर्वप्रथम है क्योकि जिससे देह और मन का गठन होता है वह शक्ति खाद्य पदार्थो में ही विद्यमान है।

प्रत्येक खाद्य पदार्थो का हमारे मन और शरीर दोनो पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है कई खाद्य पदार्थ उत्तेजक होते है एक मांसाहारी से अहिंसा व्रत धारण करने की आशा अर्थहीन ही सिद्ध होगी। अभिप्राय यह है कि मन की शुद्धता सात्विक आहार पर निर्भर करती है और ईश्वर स्मृति शुद्ध मन पर निर्भर करती है। आहार शुद्धि के होने से सत्व शुद्धि होती है इसी कारण महात्मा गांधी ने आहार को इन्द्रिय निग्रह का मूल तत्व माना है।

गांधी जी ने तीन प्रकार के आहार बताये –मांसाहार,शाकाहार,मिश्राहार

उनके अनुसार असंख्य लोग मिश्राहारी है। दूध को भी वे शाकाहार में नहीं गिनते थे। उनकी दृष्टि में दूध और मांस लेने में दोष ही है क्योकि मांस के लिए हम पशु पक्षियों का नाश करते है और मां के दूध के सिवा दूसरा दूध पीने का हमे अधिकार नहीं है किन्तु फिर भी जब तक को डॉक्टर अथवा वैद्य दुग्ध के समान गुणों वाली कोई वनस्पति नहीं ढूंढ निकालता, तक तक मनुष्य दुग्धाहार या मांसाहाकार करता ही रहेगा।

युक्ताहार से उनका तात्पर्य स्नायु बनाने वाले, गर्मी देने वाले, चर्बी बढ़ाने वाले, क्षार देने वाले और मल निकालने वाले द्रव्यों की आवश्यकता रहती है। जिसके लिए दूध अनाज गेहूँ, बाजरा, हरी तरकारियों व फलों की आवश्यकता होती है। स्टार्च प्रधान शाक को जैसे आलू जमीकन्द, शकरकद आलू को उन्होने अनाज की श्रेणी में रखा था। केला, दूध और भाजी को उन्होने सम्पूर्ण आहार की श्रेणी में रखा था। मनुष्य की आवश्यकता नुखर चिकनाई तेल से मिल जाती है। तेलों में तिल का नारियल का और मूंगफली का तेल अच्छा माना जाता है। यह गांधी जी द्वारा भी स्वीकार्य है।

गांधी जी ने मीठे फलो से पर्याप्त मिठास की प्राप्ति के अतिरिक्त भोजन में गुड़ और खाड़ को भी आवश्यक बताया ।

अतः सत्वहीन, निर्बल मन लोगो को जीवन शक्ति की प्राप्ति हेतु उन्मुख करने के उद्देश्य से गांधी जी ने अपने सन्तति नियमन नामक साहित्य में निम्न निर्देष भी दिये :– यम

आत्म संयम

अहिंसा नियम

अस्तेय	सन्तोष
ब्रह्मचर्य	स्वाध्याय
अपरिग्रह	ईश्वर प्राणिधान आदि की

धारण मन वचन कर्म से इनका पालन अनिवार्य बताया

अशुद्धियों को मिटाने के उपाय

1. उपवास
2. स्वाभाविक श्वास
3. गहरी श्वास
4. योग आसन
5. सहज स्वाभाविक लोचपूर्ण जीवन
6. कम से कम दमन (शरीर की सुनना) आदि

ब्रह्मचर्य अर्थात् परमात्मा जैसे आचरण हेतु जीवन सुक्त :–

1. **प्रतिपल जीना :–** कामवासना से मुक्ति और प्रत्येक क्षण में प्रतिष्ठित हो कर जाना।
2. **सृजनात्मकता :–** जिन्दगी को गम्भीरता से न लेना क्योकि गम्भीरता रोग का आधार है। अंहकारी आदमी गम्भीर होता है और जितना अधिक गम्भीर उतना अधिक बोझल –

– अधिक बोझल अधिक कामवासना की जननी है ।
– जिन्दगी खेल बन जाये तो आदमी आत्म संयम साध सकता है ।
– गुरूकुल में हमने 25 वर्ष तक बच्चो की जिन्दगी को खेल बनाया था ।
– अपने लिए गंभीर न होने का समय अवश्य निकाले ।
– बच्चो के साथ खेलना और बाहर जाना ।
– कामवासना है मृत्यु की खोज, ब्रह्मचर्य है अमृत की खोज ।

ब्रह्मचर्य पालन हेतु नियम :–

1. बच्चो का सादगी भरी कुदरती पद्धति से इस आधार पर पालन किया जायें कि वे जीवन भर पवित्र रहे ।
2. सबको मसालों का मिर्च और गरम पाको का त्याग करना चाहिए ।
3. पचने में भारी खुराक मिष्ठान मिठाई तेल पदार्थ खाना छोड़ देना चाहिए ।
4. पति पत्नी एकान्त को टाले तथा शरीर और मन दोनो को सतत अच्छे कार्यो में लगाने चाहिए ।
5. रात में जल्दी सोने और सवेरे जल्दी उठने का नियम रखें ।
6. किसी भी प्रकार का बीभत्स या अश्लील साहित्य न पढ़ें ।
7. स्वप्नदोष हो जायें तो ठंडे पानी से स्नान करें।
8. पति पत्नी संयम को कठिन मानने के बजाय संयम को जीवन की स्वाभाविक प्रक्रिया मानकर चले ।
9. नाटक सिनेमा या मनो विकारों को उत्तेजित करने वाले नहीं देखने चाहिए ।
10. प्रतिदिन सवेरे उठकर पवित्रता और निर्मलता के लिए एकाग्र मन से प्रभु की प्रार्थना करनी चाहिए इससे हम प्रतिदिन अधिकाधिक पवित्र और निर्मल बनेंगे ।

इन्द्रिय संयम की आवश्यकता आरोग्य की कुंजियों – (मुख्यतः ब्रह्मचर्य) जिस प्रकार कमाये गये पसो को खर्च करने से गरीब बन जायेंगे वैसे ही तीर्थवान व सशक्त बनने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन अति आवश्यक है।

इन्द्रिय संयम के अभाव में

1. अभिमान
2. डर
3. ईष्या में वृद्धि स्वाभाविक

ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए संकल्प, बल द्रण इच्छाशक्ति भी आवश्यक अंग है।

1. बालको को
2. माता पिता को
3. युवा वर्ग को
4. विवाहोपरान्त

जीवन का कानून

गांधी जी का दावा :– विचार व विवेक से काम लेने पर आत्मसंयम निश्चित ।

1. जल तथा मिट्टी से स्नायु संकुचित होते है।
2. सादे तथा विशेषकर फलाहारी भोजन से स्नायुओं का वेग शान्त होता है ।
3. इससे स्नायु पुष्ट व बलवान भी होता है ।
4. प्राणायाम के द्वारा भी आत्मसंयम में लाभ मिलता है ।

कृत्रिम साधनों के द्वारा सन्तति नियमन राष्ट्र के हित में नहीं है इसके विपरीत इन साधनों के फलस्वरूप विवाहबन्धन का नाश मनमाने प्रेम की बढ़ती ।

7.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. आरोग्य की कुंजी – महात्मा गांधी
2. गांधी जी की आत्मकथा – महात्मा गांधी
3. राम नाम – महात्मा गांधी
4. संतति नियमन – महात्मा गांधी
5. प्राकृतिक आर्युविज्ञान – राकेश जिन्दल

7.6 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न–1 गांधी जी के प्राकृतिक जीवन से क्या अभिप्राय है, वर्णन कीजिए ?

प्रश्न–2माता के सम्मुख की गयी प्रतिज्ञाओं ने गांधी जी की किस प्रकार रक्षा की ?

प्रश्न–3शुद्ध शाकाहारी जीवन जीने के लिए गांधी जी कैसे अभिमुख हुये ?

प्रश्न–4ब्रह्मचर्य की साधना में गांधी जी ने सात्विक भोजन क्यों आवश्यक बताया ?

प्रश्न–5प्राकृतिक जीवन की ओर अन्मुख करने में ''रिटर्न टू नेचर'' नामक पुस्तक ने गांधी जी की किस प्रकार सहायता की ?

प्रश्न–6गांधी जी की पुस्तक ''संतति नियमन'' में ब्रह्मचर्य की धारणा में यम नियम की धारणा परमावश्यक है क्यों ?

इकाई –8 स्वास्थ्य एवं रोग की अवधारणा

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 स्वास्थ्य की अवधारणा
8.4 रोग की अवधारणा
8.5 सारांश
8.6 बोधात्मक प्रश्न
8.7 सन्दर्भ ग्रंथ

8.1 प्रस्तावना

आज के इस भौतिकवादी यांत्रिक युग की चकाचौंध में मानव पाश्चात्य संस्कृति का अधानुकरण कर अमर्यादित असंतुलित तनावपूर्ण दिनचर्या, व्यवसायिक जीवन की प्रतिस्पर्धा के कारण अस्वस्थ होता जा रहा है। भोगविलासी संस्कृति ने मानवीय जीवन मूल्य तथा स्वास्थ्य को अधिक नुकसान पहुंचाया है। आज प्रदूषित दिनचर्या, प्रदूषित वातावरण, कीटनाशक रसायनों से उत्पादित आहार सामग्री तथा इलैक्ट्रोनिक उपकरणों मोबाइल की आणविक किरणों का दुष्प्रभाव, भ्रामक विज्ञापन, टोने–टोटके अंधविश्वासों ने ''पहला सुख निरोगी काया'' के सिद्धान्त को चुनौती बना दिया है। मिलावटी आहार विहार एवं सस्ते व्यस्नों के प्रचलन ने मानव जीवन को रोगग्रस्त बना रखा है। ऐसी विषम परिस्थिति में स्वास्थ्य हेतु जन जागरण एवं रोगी की उत्पत्ति का समाधान करने का वर्णन इस इकाई में किया जा रहा है। स्वास्थ्य की रक्षा करना प्रत्येक व्यक्ति का निजी दायित्व है। स्वस्थ रहने के लिए उसे अपनी प्रवृत्तियां तथा बाह्य प्रभाव को समझना आवश्यक है। स्वास्थ प्राणयुक्त शरीर की उस अवस्था का नाम है। जिसके द्वारा मनुष्य जीवन भर आनन्द का अनुभव करता रहता है। रोग का अर्थ स्वास्थ के ज्ञान का अभाव है। अर्थात् शरीर और मन की विकारयुक्त अवस्था होती है। रोग कोई ऐसा तत्व नहीं है जो शरीर पर बाहर से आक्रमण करें। अपितु रोग की उत्पत्ति हमारे शरीर के भीतर ही पनपती है। जिसके लिए आहार–विहार दिनचर्या विचार–व्यवहार आदि उत्तरदायी होते है। जिस प्रकार प्रकाश का अस्तित्व होता है, अंधकार नहीं। इसी प्रकार हम कह सकते है स्वास्थ का अस्तित्व है। रोग का कोई अस्तित्व नहीं होता और केवल लक्षणों को ही रोग नहीं मानना चाहिए और न ही उसे (लक्षणों) रोग मानकर उसका उपचार करना चाहिए। रोग का मूल कुछ अलग ही दिखायी पड़ता है। लक्षणों से रोग के लक्षणों का निराकरण होते रहना स्वाभाविक प्रक्रिया है। आइये इस इकाई में स्वास्थ के अर्थ परिभाषा एवम् अवधारणा के अध्ययन के साथ–साथ रोग का अर्थ परिभाषा एवम् अवधारणा का अध्ययन अगले भाग में करते है।

8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में स्वास्थ्य की परिभाषा, उद्देश्य, स्वास्थ्य की अवधारणा, सिद्धान्त तथा स्वास्थ्य प्राप्ति के सूत्रों का वर्णन किया जा रहा है। साथ ही रोगो के कारण एवं रोगोत्पन्ति की अवधारणा का समाधान हेतु महत्वपूर्ण आरोग्य की दृष्टि से विषय विवेचना किया जा रहा है।

8.3 स्वास्थ्य की अवधारणा

स्वस्थ का अर्थ :– स्व अर्थात अपने में, स्थ यानि स्थित होना। स्वास्थ्य की परमात्मा ने सारी व्यवस्था व्यवस्थित रूप से शरीर के अन्दर ही स्थित कर रखी है। बड़े आश्चर्य के का विषय है कि आरोग्य प्राप्ति हेतु रोगी बाहर की ओर स्वास्थ्य लाभ हेतु दौड़ रहा है।

स्वास्थ की परिभाषा :– विश्व के सबसे प्राचीनतम आयु विज्ञान अर्थात आयुर्वेद में हजारों वर्ष पूर्व स्वास्थ्य की पूर्ण परिभाषा आचार्य सुश्रुत बताते हुये कहा है कि –

''समदोषः समाग्निश्च समधातु कालः क्रिया ।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमना स्वस्थ इत्यमिघयीते ।।

उक्त परिभाषा के अनुसार शरीर, इन्द्रिया, मन तथा आत्मा की प्रसन्नतापूर्ण स्थिति ही स्वास्थ्य है। W.H.O. ने भी स्वस्थ मनुष्य की परिभाषा में बताया है कि जो मानव शरीर से, मन से, सामाजिक तौर पर और आध्यात्मिक दृष्टि से बीमार नहीं है वही व्यक्ति स्वस्थ है।

स्वास्थ्य विवेचन :– भारतीय स्वास्थ्य चितैन में स्वास्थ्य की अवधारणा यही रही है ''सर्वेभवन्तुसुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया। बेहतर स्वास्थ्य के व्यक्तित्व में निम्न 7 तत्व जिस मनुष्य में ''सममात्रा'' में पाये जाते है, स्वास्थ्य की दृष्टि से उसे शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से स्वस्थ कहा जाता है।

1. **समदोष :–** अर्थात् शरीर की सभी क्रियाओं को संचालित करने वाले तीनों वात–पित्त एवं कफ दोष जब सम अवस्था में रहते है तब शरीर स्वस्थ रहता है। वात–पित्त एवं कफ रूपी त्रिदोषों की कमी या अधिकता अर्थात् त्रिदोषों की असमानता होने पर व्याधियां उत्पन्न होती है।
2. **समाग्नि :–** मानव शरीर में 5 भूताग्नि पंचतन्त्र यथा (पृथ्वी–जल–तेज–वायु–आकाश) एवं 7 घात्वाग्नि अर्थात् (रस–रक्त–मांस मेड़–अस्थि–मज्जा–शुक्र) एवं सबसे सुपर पावर ''जाठराग्नि'' इस प्रकार इन 13 अग्नियों की समान स्थिति ही खाये हुये अन्न का सम्यक् पाचन करती है जो स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। पाचकाग्नि सहित सभी 13 अग्नियों की असमानता अर्थात् भूख में भी, या बार–बार खाना या कभी खाना कभी नहीं खाना या अतिमात्रा में खाना आदि लक्षण पाचकाग्नि पर निर्भर करते है।
3. **समधातु :–** हमारे शरीर में सात धातुयें रहती है। सप्त धातुओं से शरीर बलवान एवं पुष्ट बनता है। जब इन धातुओं की न्यूवता या अधिकता होती है। तो दुबलापन या मोटापन आदि लक्षण प्रकट होकर अस्वस्थता हो जाती है। ये 7 धातुयें 1. रस 2. रक्त 3. मांस 4. मेद 5. अस्थि 6. मज्जा 7. एवं शुक्र है।
4. **सम मलक्रिया :–** हमारे शरीर से निकलने वाले मल यथा– मल–मूत्र, पसीने का निर्माण एवं उनका सतत नियमित रूप से शरीर का निकलना आरोग्य का लक्षण है।
5. **इन्द्रियों की प्रसन्नता :–** मनुष्य शरीर में पांच कर्मेन्द्रियां एवं पांच ज्ञानेन्द्रियां अपने–अपने कार्य को सामान्य रूप से प्रसन्नतापूर्वक करें तो स्वास्थ्य की स्थिति बनती है।
6. **मन की प्रसन्नता :–** अणुत्व एवं एकत्व ये दोनो मन के गुण है। मन में तीन प्रकार के यथा 1. सात्विक 2. राजसिक एवं 3. तामसिक मात्र की प्रधानता होती है। स्वस्थ व्यक्ति के मन में सदैव प्रसन्नता का भाव रहता है।

7. **आत्मा की प्रसन्नता :–** 18 पुराणों के सार रूप में महर्षि व्यास जी ने 2 बातें संसार रूप में कही है।

''अष्टादशेषु पुराणेषु व्यासस्य वर्चनद्वयम् ।

प्रोपकाराय पुण्याय, पापाम परपीडनम् ।।

अर्थात् परोपकार से बढ़कर ''पुण्य'' नहीं एवं दूसरे को पीड़ा पहुंचाने के बराबर ''पाप'' नहीं। उक्त ''परोपकार'' के भाव से, निस्वार्थ सामाजिक सेवा कार्य करने से और दीन दुखियों की मद्द करने से ''आत्मा की प्रसन्नता'' होती है।

उक्त सातों तथ्यों के आधार पर संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जिसकी शारीरिक क्रियायें, पाचन शक्ति, सप्त धातु निर्माण एवं उनका पोषण, शरीरस्थ मलों का निर्माण एवं उनका सम्यक् निष्कासन, इन्द्रियों की प्रसन्नता, परहित की सेवा भावना वाला व्यक्ति स्वस्थ है। जो व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ है उसी को सम्पूर्ण रूप से स्वस्थ व्यक्ति माना जा सकता है।

स्वास्थ्य के प्रयोजन :–

स्वास्थ्य की दृष्टि से 2 महत्वपूर्ण उद्देश्य है ।

1. स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का संवर्धन/रक्षण करना ।
2. जो रोगी हो गया है उसके रोग को दूर करना ।

शास्त्रों में कहा गया है ''स्वस्थ्य स्वास्थ्य संरक्षणम्'' आतुरथ च विकार प्रशमनम्''। प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान में स्वास्थ्य प्राप्ति हेतु दिनचर्या ऋतुचर्या सद्वृत्त के नियम, आहार, निद्रा, ब्रह्मचर्य, अष्टांग योग का विशद विवरण वर्णित है।

स्वास्थ्य की अवधारणा :– भारतीय संस्कृति में 2 महत्वपूर्ण विशेषता स्वास्थ्य की दृष्टि से मिलती है। 1. ''सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः'' अर्थात् ''सभी सुखी हो जायें और सभी स्वस्थ रहें।'' दूसरा ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' अर्थात् पूरी पृथ्वी के निवासी मेरे परिवार के सदस्य है। उक्त दोनो मंगल भाव की कामनायें भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल में अद्यतन की जाती रही है।

विश्व के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक अनुसंधानोपरान्त निष्कर्ष रूप में यह कहते है कि हमारी धरती पर जितने भी जीव है, उनमें मनुष्य सर्वाधिक विकसित एवं बुद्धिमान प्राणी है। रामायण में तुलसी दास जी ने भी कहा है कि –

''बड़े भाग मानुष तनु पावा,

सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ।।''

अर्थात् मनुष्य योनि में जन्म लेने को श्रेष्ठ कहा है। बड़े भाग्य या पुण्यकर्मो के परिणाम स्वरूप मनुष्य रूप में जन्म लेना सर्वश्रेष्ठ माना गया है। मनुष्य जीवन में देवाताओं को भी बड़ी मुश्किल से मिलता है। ''मनुष्य शरीर दुर्लभ है'' जो पुण्यकर्मो से प्राप्त होता है। मनुष्य योनि इसलिए भी श्रेष्ठ है कि ''मनुष्य अपने जिये तो जीता ही है, साथ–साथ दूसरों के भले के लिए भी जीवन भर सतत काम करता है। भलाई को दूसरो शब्दो में मानवता, इन्सानियत परोपकारिता आदि प्रकार से कह सकते है।

''पुरूषार्थ चतुष्टय ''अर्थात् – धर्म–अर्थ–काम

एवं मोक्ष प्राप्ति में स्वास्थ्य ही मूल कारण है। यथा– ''धर्मार्थकाम मोक्षाणां आरोग्यं मूल मुन्तमम्'' इसी प्रकार ''पहला सुख निरोगी काया'' का सिद्धान्त भी स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान इंगित करता है।

स्वास्थ्य प्राप्ति के सिद्धान्त :– ''स्वास्थ्य प्राप्ति स्वस्थ जीवन शैली'' अर्थात् आदर्श, संयमित व्यवस्थित दिनचर्या पर आधारित आहार–विहार से है जिसके नियम एवं निर्देशो के पालन करने से शरीर एवं मन स्वस्थ रहना संभव है।

1. **उषाः पान करना :–** रात्रि में ताम्बे के लोटे या जग में पानी भरकर ढक कर लकड़ी के पटिये पर रख दे। प्रातः उठते ही इस पानी को ज्यादा से ज्यादा पियें। इस पानी के पीने को ''उखः पान'' कहा जाता है। यह जल शरीर एवं मन के लिए अमृत के समान लाभदायक होता है। प्राकृतिक चिकित्सा में तो इसे सभी रोगों की दवा भी मानते है। क्योकि उससे कब्ज ठीक होता है एवं कब्ज/मंदाग्नि ही मूल रूप से सारे रोगों की जड़ है।

2. **शौच की आदर्श पद्धति :–** उकड़ु बैठकर शौच करना चाहिए। उकड़ु बैठने की स्थिति में पिंडलियों पर, जांघो का दबाव एवं जांघों पर पेट का दबाव रहने से मल विसर्जन की प्रक्रिया में सुगमता रहती है।

इसी प्रकार शौच के समय दांतो को शान्ति के साथ भींचने से पेट की मांसपेशियां आंतो पर पूरा दबाव डालती है जिससे अपानवायु स्वस्थ रहती है एवं शौच क्रिया पूरी तरह हो जाती है। शौच हेतु ''वेस्टर्न स्टाइल'' का कमोड केवल बीमारों के लिए है, यदि स्वस्थ उसका प्रयोग करेगा तो वह धीरे–धीरे कब्ज का रोगी बन जायेगा। आज बहुत से व्यक्ति व्यवसायिक जीने वाले सुविधा भोगी लोग शौचालय को ड्राइंग रूम या वाचनालय सहित अनेक कार्यो का केन्द्र बना लेते है जो स्वास्थ्य की दृष्टि से गलत है।

3. **मुखमार्जन एवं दन्तधावन :–** शीतल जल से मुंह में पानी भरकर मुखमंडल पर छीटे मारने से चेहरे पर ओधतेज –कांति एवं नैत्र नैत्र ज्योति बढ़ती है। सबसे बड़ी मध्यमा अंगुली से प्रातः सांय भोजन के बाद दांतो की सफाई एवं कुल्ला करने से मुख शुद्धि ठीक प्रकार से हो जाती है। 12 अंगुल लम्बी कनिष्ठा अंगुलि जितनी मोटी नीम या बबूल को दातौन करनी चाहिए।

4. **संचक्रमण (भ्रमण) :–** प्रातः या सांयकाल किसी बगीचे या उद्यान में टहलना चाहिए। टहलने पर वायु तत्व जिसे प्राण भी कहा है। उस प्राण तत्व की शरीर में घूमने से वृद्धि होगी। शुद्ध एवं ताजा प्राण वायु स्वास्थ्य लाभ में वृद्धि करेगी। प्राकृतिक वातावरण में शीतल मंद ताजा हवा के साथ–साथ पक्षियों की चहचहाहट मस्तिष्क को नयी शक्ति देगी। इससे शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य तथा बुद्धि शुद्ध होकर स्मरण शक्ति, बल तथा ''इम्यूनिटी पावर'' अर्थात् रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है, जो कि सुस्वास्थ्य का महत्वपूर्ण आधार है।

5. **अभ्यंग/मालिश :–** प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान एवं आयुर्वेद शास्त्र में स्वास्थ्य सूत्रों के अन्तर्गत मालिश को विशेष महत्व दिया है। अधिकतर वायु के 80 प्रकार के रोग होते है। मालिश से वायु का शमन होता है, यथा :– ''अभ्यंगो वातहा'' ।

यथासम्भव प्रतिदिन नही तो सप्ताह में 1 या 2 बार सरसों या तिल तैल से आवश्यक रूप से सम्पूर्ण शरीर की मालिश करनी चाहिए। वैज्ञानिक मालिश के अन्तर्गत दाये पैर के तलवे की बायी हथेली से एवं बायें पैर के तलवे की दांयी हथेली से, पिंडलियों एवं जंघा की मालिश के समय दिशा नीचे से ऊपर की तरफ, घुटनों एवं पेट पर मालिश दायें से बायी ओर मण्डलाकार ''क्लोफ वाइज'' करनी चाहिए। मालिश से निम्न इलाज प्राप्त होते है :– अभ्यंग करने से त्वचा में व्यान वायु सक्रिय होती है। 2. जिससे रक्त संचार बढ़ता है। 3. वर्ण निखरता है। 4. रोमकूप खुल जाते है। 5. झुर्रिया समाप्त होती है।

6. लचीलापन सदा बना रहता है। 7. शरीर में त्वचा में चमक आ जाती है। 8. एक्यूप्रेशर की दृष्टि से सम्बन्धित हस्त एवं पादतलों में दबाव से सम्बन्धित अंग स्वस्थ हो जाते है।

6. **स्नान :–** अभ्यंग एवं व्यायाम के पश्चात न्यूनतम आधे घण्टे के पश्चात सामान्यतः शीतल जल से सर्दियों में हल्के गुनगुने जल से स्नान करें। प्रतिदिन स्नान करने से 8 लाभ प्राप्त होते है। 1. स्नायु मण्डल शक्तिशाली होता है। 2. थकान का नाश होता है। 3. शारीरिक शुद्धता रहती है। 4. शरीर में ताकत/बल बढ़ता है। 5. जर्मनी के वैज्ञानिकों ने ताजा यह शोधकर निष्कर्ष निकाला है कि ठंडे पानी में नहाने से सर्दी–जुकाम से लड़ने की क्षमता पैदा होती है। 6. शरीर में फुर्ती आती है। 7. हार्ट अटैक का खतरा भी टलता है। 8. श्री अर्थात् लक्ष्मी की प्राप्ति भी शुद्धता के कारण बढ़ती है। भारतीय संस्कृति के अनुसार स्नान के बाद बनियान एवं अधोवस्त्र अर्थात् कच्छा–लंगोट आदि स्वंय को धोना चाहिए एवं तथा शरीर को नरम टावेल से रगड़ते हुये सुखाना/पोछना चाहिए।

7. **ध्यान/ईश्वर प्रार्थना :–** स्नानोपरान्त न्यूनतम 15 मिनट से लेकर यथा सम्भव मुहुर्न्त अर्थात् 48 मिनट तक अपने कुल देवता। इष्ट देवता का स्मरण करते हुये स्वंय के लिए परिवार जनों के लिए एवं ''सर्वेभवन्तु सुखिनः की प्रार्थना करें। हवा–पानी प्रकाश देने वाले प्रकृति रूपी परमात्मा को हृदय से नमन करते हुये धन्यवाद देना चाहिए। आधुनिक वैज्ञानिक कभी अब तो प्रार्थना के पक्ष में बोलने लगे है। हमारी संस्कृति में तो प्राचीन काल से ही हर कार्य के पूर्ण ईश्वर से प्रार्थना करने का, मंत्रोच्चारण जप–तप–ध्यान आदि का व्यवस्थित विधान वर्णित है। ध्यान एवं प्रार्थना से निम्न लाभ प्राप्त होते है। 1. मानसिक एवं शारीरिक रूप से बीमार व्यक्ति ठीक हो जाता है। 2. उच्च रक्त चाप (हाई ब्लड प्रेशर) दूर होता है। 3. मानसिक शांति एवं आनन्द प्राप्त होता है। 4. डोपामीन आदि स्ट्रेस तनाव के हार्मोन दूर होने लगते है। 5. मनोद्रवसाद निराशा दूर होती है। 6. तनाव दूर होता है। 7. आत्महत्या की वृति नहीं पनपती है। 8. सुख–समृद्धि विद्या–बुद्धि और एकाग्रता सहित स्मरण शक्ति बढ़ती है।

8. **आसन एवं प्राणायाम :–** हमेशा शरीर चुस्त और सदैव दुरूस्त बना रहे। इस हेतु आसन शारीरिक सौष्ठव एवं प्राणायाम मानसिक शान्ति स्वास्थ्य हेतु परमावश्यक है। आसन प्राणायाम सूर्य नमस्कार, सूक्ष्म व्यायाम या संधि व्यायाम करने से निम्न आठ लाभ प्राप्त होते है। 1. आक्सीजन मुक्त रक्त की वृद्धि शरीर में होती है। 2. Internal Micro Exercise अर्थात् शरीर के आन्तरिक अंगो तथा लीवर, किडनी आंते आदि की सूक्ष्म व्यायाम होने से उनमें रक्त संचार संतुलित होने लगता है। 3. सकारात्मक जीवन शैली (Positive Life Style) का भाव मन से उत्पन्न होता है। 4. प्राणायाम द्वारा शरीरस्थ प्रत्येक कोशिका को आवश्यक मात्रा में आक्सीजन प्राप्त होती है। 5. मानसिक रोग तनाव चिड़चिड़ापन डिप्रेशन, अनिद्रा सहित नकारात्मक भाव/विचार दूर होते है। 6. सम्पूर्ण मस्तिष्कीय नाड़ी मंडल स्वस्थ होता है। 7. हार्मोन्स/अन्तः स्रावी ग्रंथियों का सम्यक् संतुलन बना रहता है। 8. षट्चक्रो सहित सम्पूर्ण शरीर में आरोग्यता प्राप्त होती है।

स्वास्थ्य के प्रकार :– प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से मुख्य रूप से स्वास्थ्य के दो प्रकार होते है यथा :– 1. व्यक्तिगत स्वास्थ्य 2. सामाजिक स्वास्थ्य, इसके साथ–साथ आयुर्वेद विज्ञान के अनुसार 1. शारीरिक स्वास्थ्य 2. मानसिक स्वास्थ्य 3. सामाजिक अर्थात् नैतिक स्वास्थ्य 4. आध्यात्मिक स्वास्थ्य रूपी 4 प्रकार वर्णित है।

महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग के अन्तर्गत सर्वप्रथम नींव के रूप में यम–नियम का वर्णन किया है। ''पातंजल योग सूत्र'' ने अन्तर्गत स्वास्थ्य को दो भागों में विभक्त कर इसके 4–4 अंगो का वर्णन किया है। 1. बाहिरंग स्वास्थ्य – (i) यम (ii) नियम (iii) आसन (iv) प्राणायाम 2. अन्तरंग स्वास्थ्य – (i) प्रत्याहार (ii) धारणा (iii) ध्यान (iv) समाधि ।

स्वास्थ्य के प्रकारों में इस इकाई के अन्तर्गत प्रधान रूप से व्यक्तिगत एवं सामाजिक दो प्रकार के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में वर्णन किया जा रहा है।

व्यक्तिगत स्वास्थ्य :– आदर्श सामाजिक स्वास्थ्य के लिए व्यक्तिगत जीवन भी मर्यादित एवं पारदर्शी होना चाहिए, इस हेतु योग शास्त्र में महर्षि पतंजलि ने व्यक्तिगत स्वास्थ्य के 5 सूत्र बताये है :–

1. **शौच :–** तीन प्रकार की कायिक–वाचिक एवं मानसिक शुद्धि आन्तरिक एवं बाह्य दोनो प्रकार से होनी चाहिए। वाणी की शुद्धता मितभाषी होने से आती है तथा मानसिक शुद्धता हेतु अहंकार, काम, क्रोध, द्वेश आदि दुगुर्णो के त्याग से मानसिक शुद्धता आती है। तन भी सुन्दर एवं मन भी सुन्दर (पवित्र) शौच के अन्तर्गत आता है। शौच से मन प्रसन्न एवं चिन्ता स्थिर रहता है जिससे तन और मन का स्वास्थ्य बना रहता है। नियमित खाना, स्वच्छ वस्त्र धारण, घर–परिसर को स्वच्छ रखें। बुरी आदतों का त्याग एवं बड़बोला नहीं बनना चाहिए।

2. **संतोष :–** व्यक्तिगत स्वास्थ्य का दूसरा सूत्र है। संतोष जो कुछ हमारे पास है उसी में संतोष करने का अभ्यास करने से दुःख दूर होता है। सदैव संतोखवृत्ति से तृष्णायें न्यून (कम) होती है एवं सुख तथा नित्य–आनन्द की पराकाष्ठा प्राप्त होती है। जो कुछ हमारे पास है उसे सहर्ज स्वीकार करें। लालच नहीं करते हुये जिसे प्राप्त करना है शुद्ध मनोभाव से सुविधायें तथा भोग–विलास में स्पष्ट अन्तर समझना चाहिए।

3. **तप :–** तप अर्थात् तपना। लक्ष्य की प्राप्ति हेतु तन–मन से की जाने वाली साधना का नाम 'तप' है। विद्यार्थी जीवन में श्रेष्ठतम अंक लाने हेतु कष्ट पाते हुये प्रत्यन करना भी एक प्रकार का तप है। तप से शरीर एवं मन दोनो शुद्ध–निर्मल होते है।

4. **स्वाध्याय :–** स्वाध्याय करने से 'अभीष्ट' की प्राप्ति होती है। व्यावहारिक जीवन में जो सिखाया गया है। धर्म सम्मत उसे पुनः पुनः करना स्वाध्याय है। नियमित सद् साहित्य पढ़ना – उनका मनन शुद्ध भाव से करना स्वाध्याय है।

5. **ईश्वर प्राणिधान :–** परम् पिता परमात्मा के अस्तित्व को मानकर उनके महत्व को समझते हुये उनकी निरपेक्ष भाव से भक्ति करना ईश्वर प्रतिष्ठान है। बिना अपेक्षा के भक्ति करना तथा ईश्वर को समर्पित कर सर्व कार्य करना। ''त्वदीयं वस्तु गोविन्दं तुम्यमेव समर्पयेत।'' हे गोविन्द ये सब तेरा ही दिया हुआ है एवं तुम्हे ही अर्पित है। ''ऐसा निरपेक्ष भाव रखना। इससे नुकसान हानि होने पर मन सहित शरीर को उदार सोच होने के कारण कष्ट नहीं होता एवं दुःख सहने की शक्ति प्राप्त होती है।

2. **सामाजिक स्वास्थ्य :–** साधारणतः ऐसा माना जाता है कि योग शास्त्र मन–आत्मा एवं शरीर का विषय है ऐसा ही नहीं है अपितु मनुष्य जिस सामाजिक जीवन में रहता है उसके प्रति सामयिक दायित्व बोध–आदर्श मर्यादित सामाजिक जीवन शैली को सामयिक स्वास्थ्य के सन्दर्भ में वर्णित किया है।

यह सामाजिक जीवन स्वास्थ्य की दृष्टि से 5 प्रकार का होता है। इसे हम 'यम' भी कह सकते है इसकी महत्त इसी में है कि महर्षि पतंजलि ने अष्टांग में इसकी प्रथम गणना की है।

1. **अहिंसा :–** हिंसा अर्थात् मरना। मन वचन एवं कर्म से किसी को दुःखी नहीं करना। इससे दूसरो के प्रति बैर भावना नष्ट होती है। दिल्ली–मुम्बई जैसे महानगरों में आज की स्थिति यह है कि लाखो की संख्या में प्रतिदिन जीव हत्या मांसाहारी होने के ना तो प्रतिदिन हो रही है। गाड़ी का हार्न बजाने, साइड नहीं देने, ओवरटेक करने या गलत ईशारे कर देने के कारण मिथ्याज्ञान (मिस अण्डरस्टेडिंग) के कारण भी छोटी–छोटी सी बातों पर मर्डर/आत्महत्या आदि घटनायें भी हो रही है। वैरभाव नहीं रखने तथा कटुवचन नहीं बोलने से इस सिद्धान्त की सफलता प्राप्त की जा सकती है। जिस कारण सामाजिक जीवन में शांत बनी रह सकती है।

2. **सत्य :–** मनुष्य की वाणी परमेश्वर की देन है जिसे सभी के कल्याण के लिए प्रयोग करना चाहिए। जैसा सुना वैसा देखा उसको उसी रूप में वर्णित करना भी सत्य है।

3. **अस्तेय :–** इसका तात्पर्य चोरी नहीं करने से है। जो वह भौतिक वस्तु हमारी ही ही नहीं उस हेतु वस्तु को मनसा–वाचा–कर्मणा नहीं लेना ही असत्ये है कि दूसरे व्यक्ति के अधिकारों को भी नहीं छीनना। असत्येय की श्रेणी में आता है। दूसरो की वस्तु पर अपना अधिकार नहीं रखना। सार्वजनिक वस्तुयें समाज की सम्पत्ति है यह दृढ़भाव रखना भी अस्तेय है।

4. **ब्रह्मचर्य :–** सांसारिक जीवन में विषय वासनाओं की सीमाओं मर्यादाओं को समझते हुये उन पर नियंत्रण रखना ही ब्रह्मचर्य है। ऐसी चर्चा जिससे ब्रह्म की प्राप्ति हो। नियमित संतुलित दिनचर्या का पालन। दूसरो की आर्कषण वस्तुओं के प्रति निर्विकार भाव एवं इन्द्रियों का संयम रखने से जीवन तेजस्वी बनता है पर शरीर में ओज एवं तेज के साथ आत्म–प्रभा कांटि की वृद्धि होती है।

5. **अपरिग्राह :–** किसी भी प्रकार की भौतिक सुख सुविधाओं की वस्तुओं का संचय आवश्यक मात्रा से अधिक नहीं करना ही अपरिग्रह कहलाता है। संचय की वृति को सामाजिक जीवन में त्यागे। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अपरिग्रह का पालन अर्थात् रिश्वतखोरी भ्रष्टाचार, कमीशन खोरी आदि को नहीं लेने से भी हम ले सकते है। आवश्यकताओं को सीमित करें। आवश्यक वस्तुओं के संचय से बचें। लालच नहीं करें।

<u>स्वास्थ्य प्राप्ति हेतु सूत्र :–</u>

1. आदर्श दिनचर्या अर्थात् रहन–सहन, खान–पान सभी ठीक होना चाहिए।
2. दिनचर्या सुव्यवस्थित होनी चाहिए।
3. रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्या का पालन करना चाहिए ।
4. समय पर ब्रह्ममुहूर्त जागरण करें।
5 संतुलित एवं अंकुरित आहार तथा सलाद का प्रयोग करें।
6. भोजन में सात्विक तथा पौष्टिकता का विशेष ध्यान रखें।
7. निर्धारित मात्रा में शुद्ध जल का सेवन करें।
8. अल्पाहारी शाकाहारी तथा हित् भुक, मित भुक एवं ऋतु भुक्'' के सिद्धान्त का पालन करें।
9. क्रोध–शोक व तनाव से शरीर का नाश होता है। अतः इनसे सदैव दूर रहना चाहिए।

10. शौच–पेशाब, उल्टी, छींके आदि के वेगो को भी नहीं रोकना चाहिए।
11. अति उष्ण तथा अति शीतल आहार का सेवन नहीं करें।
12. भोजन से 1 से 1½ घंटे पश्चात जल पर्याप्त मात्रा में लेवे।
13. भोजन खूब चबा–चबाकर सेवन करें।
14. हरी सब्जियां एवं मौसमी फलो का भोजन में मौसम के अनुरूप उसी मौसम में विशेष सेवन करें।
15. अंकुरित अनाज लेंवे।
16. भोजनोन्तर ताजा तक्र (छाछ) का सेवन करें।
17. रसीलेदार एवं तला हुआ तेज मिर्च मसाले का चटपटेदार भोजन अधिक नही लेंवे।
18. ठंडा बासी एवं सड़ा गला भोजन अधिक नहीं लेवे।
19. पर्याप्त मात्रा में 6 से 7 घंटे लम्बी गहरी निद्रा लेवे।
20. अपना घर एवं आस–पास स्वच्छता रखें।
21. अच्छे श्रेष्ठ लोगो की संगत या अनुकरण करें ।

8.4 रोग की अवधारणा

भारत में रोगो की अवधारणा में वर्तमान समय में ''भोगवादी संस्कृति'' से ऐसे समाज का निर्माण हो रहा है जिसमें ज्यादातर व्यक्ति किसी न किसी रोग से ग्रस्त है। आज जीवनी शैली जन्म (लाइफ स्टाइल डिफीज) रोगो एवं रोगियों की संख्या में दिन दूनी रात चौगुनी अभिवृद्धि हो रही है। कब्ज व घुटनों का दर्द, कमर का दर्द, उच्च रक्त चाप, मधुमेह, अस्थमा, मोटापा, नपुसंकता, तनाव, अनिद्रा, थाइराइड जैसे रोगो ने सम्पूर्ण विश्व में रोगियों में त्राहि–त्राहिी मचा रखी है। नित नवीन खुल रहे चिकित्सालयों, अनुसंधान की .... एक से बढ़कर एक औषधियों की उपलब्धता होने पर भी रोग है कि कम हो ही नहीं रहे। भारतीय संस्कृति जो कभी विश्वगुरू के चरमोत्कर्ष पर आसीन थी। आज सोचना पड़ रहा है कि स्वास्थ्य की दिशा में ''व्यवस्था परिवर्तन'' की नितान्त आवश्यकता है। आज जिस प्रकार नित नवीन रोग 'स्वाइन फ्लू' बर्ड फ्लू, चिकनगुनिया आदि नवीन रूप में आ रहे है उससे सम्पूर्ण विश्व का स्वास्थ्य जगत चिंतित है।

यदि हम गहराई से रोगो के अवधारणा के विषय का अनुसंधान करें तो प्रथम दृष्टया या तथ्य उभरकर आता है कि आधुनिक जीवन पद्धति तथा हमारा प्रदूषित खान–पान रोगों को बढ़ाने में महत्वपूर्ण कारण है। आज भारतीय जीवन पद्धति, एवं खाना–पान को समझना तथा रोगो के प्रति जागरूकता पैदा करना अति आवश्यक है।

रोग अर्थात् व्याधि का परिभाषा एवं पर्याय :– ''तत्र व्याधिरामयों मद आतड़ो यक्ष्मा ज्वरों विकारों रोग इत्यनर्थान्तरम् ।। आचार्य चरक ने व्याधियों के पर्याय बताते हुये इसे आभय, गदा, आतड़, यक्ष्मा, ज्वर, विकार ओर रोग इन्हे एवं सभी एक ही अर्थ को बताने वाले होने कहा है।

''व्याधि विविधं दुःखमाद्घातीति व्याधिः।

''विगतः आधिः यस्मात् स व्याधिः ।

विभिन्न प्रकार के दुःख जिससे आवे उसे ''व्याधि'' कहते है।

रोगों के कारण :– प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार रोगों का एकमात्र कारण ''विजातीय द्रव्यों'' का शरीर में इकट्ठा होना है। वेदों के अन्तर्गत रोगो के तीन प्रमुख कारण बताये गये है –

(1) काल (परिणाम) (2) बुद्धि (3) इन्द्रियां के विषय इनका हीनयोग मिथ्या योग एवं अतियोग ही सभी व्याधियों का मूलरूप से कारण है।

1. काल का तात्पर्य ऋतु से है। ये 3 प्रकार का शीत, उष्ण एवं वर्षा होता है। उदाहरणार्थ ग्रीष्म ऋतु गर्मी की ऋतु है। इस ग्रीष्म ऋतु में गर्मी का कम पड़ना हीयोग, गर्मी का अधिक पड़ना–अतियोग एवं कम, अभी अधिक गर्मी का होना मिथ्यायोग है। स्वास्थ्य की दृष्टि से रोग की अवधारणा के अन्तर्गत कारणों में काल का सर्वप्रथम वर्णन इसलिए किया गया, क्योकि यह कारण सभी प्राणियों के लिए ''दुष्परिहार्य'' है। इसे तो प्राकृतिक रूप से भोगना ही पड़ता है।

2. **बुद्धि – प्रज्ञापराध** – 5 ज्ञानेन्द्रिय, 5 कर्मेन्द्रिय एवं मन सभी मिलाकर इन्द्रियां मानी जाती है। इन एकादश इन्द्रियों के अपने–अपने विषय नियत है, उन विषयों का हीनयोग–मिथ्या योग एवं अति योग होना भी रोग का कारण है। उदाहरणार्थ– पञ्च का ज्ञानेन्द्रिया 1. आंख, नाक, कान, जिह्वा, त्वचा है। इनके क्रमशः रूप गन्ध, शब्द रस एवं स्पर्श ये विषय है। जैसे– चसुनेन्द्रिय इसका विषम रूप को देखना है। अति प्रकाश वाले माध्यान के सूर्य को देखना, बोल्डिंग करते समय उसको देखना आदि अतियोग कहलाता है। नेत्र द्वारा प्रकाश की न्यूवता में या बिल्कुल ही न देखा जाय उसे चसुनेन्द्रिय का आयोग कहते है। नेत्र द्वारा जिन वस्तुओं को नहीं देखना चाहिए उनको देखना अर्थात् सड़ी–गली वस्तु, घृणित वस्तु, अश्लील चित्र आदि को देखना मिथ्या योग कहलाता है। इसी प्रकार सभी इन्द्रियों का हीन योग, अतियोग एवं मिथ्या योग ही रोगो का कारण माना जाता है। बुद्धि इन्द्रिय द्वारा ''प्रज्ञापराध'' के कारण भी रोगों की उत्पत्ति प्रायः देखी जाती है। क्योकि बुद्धि के अपराध स्वरूप ही इन्द्रियों का अतियोग, हीनयोग या मिथ्या योग होता है। काया–मनसा एवं वाचा के अपराध स्वरूप उत्पन्न रोगो का कारण भी प्रज्ञापराध में आता है।प्रज्ञापराध से अधर्म उत्पन्न होता है एवं अधर्म ही सभी कर्मज रोगो का कारण है। आयुर्वेद शास्त्र में आचार्य चरक कहते है कि ''घी घृति स्मृति विग्रशः'' अर्थात् घी–घृति–स्मृति के नाश को ''प्रज्ञापराध'' कहते है। सिगरेट गुटका, तम्बाकू, मद्यपान की बोतलो, पाउचों पर स्पष्ट चेतावनी लिखी होने के बाद भी, जानते समझते हुये भी उसे खाना, पीना प्रज्ञापराध कहलाता है। शास्त्र सम्मत, धर्म सम्मत, सदाचार रूपी सिद्धान्तों का दिनचर्यादि में पालन नहीं करना भी प्रज्ञापराध कहलाता है। तेज गति से वाहन चलाना, यातायात के नियमों का पालन नहीं करना, यम–नियमों के दस सिद्धान्तों का पालन नहीं करना सभी ''प्रज्ञापराध'' अर्थात् बुद्धि का अपराध है जो कि रोगोत्पन्ति का द्वितीय मूल कारण है।

3. **इन्द्रियों के विषयों का हीन–मिथ्या अतियोग :–** सभी 11 इन्द्रियों के विजयों की ''समस्थिति'' होना स्वास्थ्य की श्रेणी में आता है, लेकिन इनका प्रज्ञापराध के द्वारा हीन–मिथ्या–अतियोग होना रोगों का कारण है। उदाहरण के लिए जैसे कर्णेन्द्रिय के द्वारा तेज आवाज ''दिल पर'' तेज आवाज को सुनना अतियोग, कानो से शब्दो को, आवाज को न सुनना आयोग तथा कठोर, प्रियजनों के विनाश सूचक शब्दो का सुनना मिथ्यायोग कहलाता है जो कि रोगों का कारण है।

वर्तमान में रोग की अवधारणा :– वर्तमान परिप्रेक्ष्य में रोगों की अवधारणा के अन्तर्गत अनेक ऐसे कारण है जिनके द्वारा ''रोग प्रतिरोधक क्षमता'' को नुकसान होता है, जिससे रोगों की उत्पत्ति होती है जिनका संक्षेपित वर्णन किया जा रहा है।

1. **मानसिक तनाव :–** आज की भागम–भाग की जिन्दगी में, रोजाना की वैश्विक व्यापार प्रतिस्पर्धा के युग में छोटी–छोटी बातों से ही व्यक्ति तनावग्रस्त होकर अन्तः स्रावी ग्रंथियों, हार्मोन्स, एंजाइम्स, विटामिनों पर दूषित असर होते हुये रोगग्रस्त होना प्रायः देखा जा रहा है। अतः आपाधावी का जीवन मानसिक तनाव उत्पन्न करता है जो कि रोगो का कारण है।

2. **पर्यावरण प्रदूषण :–** आज के इस यान्त्रिक युग में वाहनो और कल कारखानों के धुएं तथा घटते वन और हरियाली, खेतो में अन्न के अधिक उपज की मानसिकता के कारण रासायनिक खाद एवं कीटनाशकों के कारण पानी, हवा एवं उत्पादित आहार सामग्री सब कुछ प्रकृति में चारो तरफ प्रदूषण ही प्रदूषण नजर आता है। इस प्रकृति के प्रदूषण के कारण ''इम्यूनिटी पावर'' तेजी से घटता है। शरीर के रक्त में स्थित WBC प्लेटलेट्स प्रभावित होकर 'चर्म रोग' एलर्जी के रोग, श्वास (दमा) के रोग तेजी से बढ़ रहे है।

3. **व्यसन एवं दवाईयों का सेवन :–** अत्यधिक चाय–कॉफी, बाजार में उपलब्ध प्रोटीन युक्त पाउडर जो टी0वी0 के माध्यम से ''हेल्थ टोनिकों' के रूप में दुष्प्रचारित किये जा रहे है। कोल्डड्रिंक्स, तम्बाकू के उत्पादक, मद्यपान, स्मेक, गांजा, चरस, नशीली गोलियां, बिना डाक्टर से पूछे दवाईयों का सेवन, दवाओं का ''साइड इफेक्ट'' (विपरीत प्रभाव) भी रोगो का वर्तमान में प्रमुख कारण बनता जा रहा है।

रोगो के सामान्य भेद :– जीर्ण रोग, तीव्र रोग की दृष्टि से सामान्यतः दो प्रकार के रोग होत है। आयुर्वेद शास्त्र में चार प्रकार के होते है :– 1. आगन्तुज रोग 2. वातज रोग 3. पित्तज रोग 4. कफ रोग। आगन्तुज रोगों का कारण – अभिघात, अभिचार, अभिशाप–अभिसड़क, दुर्घटना–हत्या–लूट आदि है। वातज रोग सर्वाधिक 80 प्रकार के, पित्तज रोग 40 प्रकार के एवं कफज रोग 20 प्रकार के आयुर्वेद विज्ञान में वर्णित है।

रोग प्रकृति के दो प्रकार के होते है :–

1. निजरोग 2. आगन्तुज रोग

अर्थात्– वातयिन्त से उत्पन्न रोग निजरोग कहलाते है, एवं बाह्य कारणों कीटणु – अभिघात, संक्रमण से उत्पन्न होने वाले ''आगन्तुज रोग'' कहलाते है।

अधिष्ठान भेद से 2 प्रकार :– स्थान की दृष्टि से सारे रोग 2 प्रकार के होते है। इनके स्थान या तो 1. शरीर 2. या मन (या दोनों) होते है। अतः शारीरिक रोग एवं मानसिक रोग अधिष्ठान भेद से दो प्रकार के होते है।

''शरीर सत्वसंज्ञं च व्याधीनाभाश्रयो मतः ।
तथा सुखानां, योगस्तु सुखानां कारणं समः ।।

शरीर एवं मन रोगों का आश्रम स्थल है तथा सुख का भी आश्रम शरीर एवं मन है। काल–बुद्धि एवं इन्द्रियार्थ विषयों का समयोग ही सुख का कारण है।

रोगों की अवधारणा के अन्तर्गत रोगोत्पन्ति का समाधान :– मानसिक तनाव से बचने के लिए 10 मिनट का श्वासन या योग निद्रा का अभ्यास करना चाहिए। विचार शून्य ''ध्यान'' मेडीहेशन करें। आपाधापी को व्यस्त दिनचर्या में तनाव को अपने दिमाग पर सवार नहीं होने दे। प्रसन्न एवं मुस्कुराने की आदत डाले। संतोषी जीवन बनायें। स्वंय के आत्मविश्वास एवं मन को सुदृढ़ आस्तिक एवं सात्विक, वातावरण से बनाये रखे। प्राणायाम एवं ध्यान के आसनों का नियमित अभ्यास करें ।

पर्यावरण के प्रदूषण को रोकने में सहयोग करें, पॉलीथीन का प्रयोग न करें, कीटनाशक आहार सामग्री–सौन्दर्य प्रसाधन में रासायनिक क्रीम पावडरों के सेवन से बचें

सुबह की शुद्ध ताजा हवा, प्राकृतिमय रमनीय वातावरण में घूमें। शाकाहारी बनें। सुपाच्य एवं पौष्टिक आहार सेवन करें। नियमित दिनचर्या–ऋतुचर्या एवं रात्रिचर्या के सिद्धान्तों का पालन करें। व्यसनों से बचें। शुद्ध पानी पीने में कंजूसी ना करें। गलत संगति यौनाचार–अश्लील चित्र, अपठनीय अश्लील पुस्तकें, सिनेमा हस्तमैथुन जैसी विकृत यौनमानसिकता से बचे। टी0वी0 समाचार पत्रों के लोक लुभावन आर्कषक विज्ञापनों पर एकदम विश्वास कर उनका अनुसरण न करें। गलत संगत एवं गुमराह करने वालो से दूरी बनायें रखें। सदाचार–सद्साहित्य का पठन–पाठन पालन करें। माता–पिता, बड़ो का, गुरूजनों का मार्गदर्शन लेने में नहीं झिझकें। सकारात्मक दृष्टिकोण बनाये। परिवार एवं समाज जीवन में परस्पर सहयोग समन्वय एवं सहभागिता का आचरण करें। अस्वस्थ होकर ''कर्म संस्कृति'' को अपनावे। आत्म विश्वासी, मितभाषी मृदुभाषी एवं मिलनसारिता को व्यवहार में अपनायें। दर्द नाशक दवाओं का सेवन सोच समझकर करें क्योकि अनुसंधानों में यह सिद्ध हुआ है कि इनका किडनी एवं पाचन तंत्र पर सर्वाधिक नुकसान होता ही है। मधुर संगीत सुने, इससे रक्त संचार, व्यवस्थित तथा स्नायु दुर्बल्य, अनिद्रा, तनाव व अवसाद में लाभ प्राप्त होता है। ''उपचार से बचाव'' श्रेष्ठ है इस पहेली का ध्यान रखें। घरेलू उपचार में रसोई में उपलब्ध हल्दी, धनिया, हींग, जीरा, काली मिर्च, तेजपत्र, दाल, चीनी आंवला, मिश्री, गो दुग्ध, गोघृत, तिल तेल आदि का चिकित्सकीय उपयोग करें। घर के आस–पास, तुलसी, ग्वारपाठा, मीठा नीम, गिलोम, अडूसा (वासा) दूब, पोदीना, आंवला आदि का रोपण कर इनको स्वास्थ्य सरंक्षण एवं इम्यूनिटी पावर बढ़ाने हेतु सहज सेवन करें। क्षार धर्मी 80 प्रतिशत तथा अम्लधर्मी आहार 20 प्रतिशत सेवन करें। ''विजातीय द्रव्यों'' का शोधन चिकित्सा द्वारा निष्कासन करने की प्राकृतिक चिकित्सा को अनपाते।

8.5 सारांश

संक्षेप में स्वास्थ्य एवं रोग की अवधारणा के अन्तर्गत वर्णित उक्त विषयों का यदि दैनिक जीवन में उपयोग किया जाये तो व्यक्ति रोगग्रस्त नहीं होगा। सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन में परिवार भाव का आपसी समन्वय बढ़ेगा। शांति–सौहार्द्ध बढ़ेगा। सरकारी धन का चिकित्सकीय दुरूपयोग बचेगा। व्यक्ति का सर्वागीण शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं आत्मिक उत्थान होकर पुरूषार्थ चतुष्टम् अर्थात् धर्म–अर्थ काम एवं मोक्ष की प्राप्ति की होगी।

8.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

चरक संहिता– महर्षि चरक भाष्यकार–श्री सत्य नारायण शास्त्री,चौखम्बा प्रकाशन दिल्ली।

8.6 निबंधात्मक प्रश्न

प्र0–1 स्वास्थ्य की परिभाषा एवं स्वस्थ व्यक्ति के लक्षण बताइये ?

प्र0–2 आरोग्य प्राप्ति हेतु आदर्श दिनचर्या का वर्णन क्रमशः कीजिए ?

प्र0–3 सामाजिक एवं व्यक्तिगत स्वास्थ्य के अभिप्राय को बताइये ?

प्र0–4 रोगो का कारण एवं समाधान का विस्तृत वर्णन कीजिये ?

इकाई –9 विजातीय द्रव्य सिद्धान्त

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 विजातीय द्रव्य का अर्थ एवं भाव
9.4 विजातीय द्रव्य एवं तीव्र व जीर्ण रोग
9.5 विजातीय द्रव्य एवं रोगोत्पति का सिद्धान्त
9.6 विजातीय द्रव्यों की प्राकृतिक चिकित्सा का सिद्धान्त
9.7 सारांश
9.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
9.9 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

किसी भी समुदाय संस्था अथवा समाज के कुछ नियम व सिद्धान्त होते है। इन नियम व सिद्धान्तों के आचरण द्वारा ही जन जीवन सामान्य रूप से चल पाता है। इसी प्रकार चिकित्सा पद्धति में भी कुछ आवश्यक सिद्धान्त होते है। इन्ही सिद्धान्तों पर चलकर कोई भी चिकित्सा पद्धति अपना कार्य सुचारू रूप से कर पाती है। उदाहरण के लिए आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति वात, पित्त और कफ पर आधारित है। एलोपैथी चिकित्सा पद्धति बुनियादी रूप से लक्षण तथा जीवाणु व कीटाणु पर आधारित है। ठीक इसी तरह से प्राकृतिक चिकित्सा के भी कुछ सिद्धान्त है जिन के उपर आधारित होकर अपना प्रभाव दिखाती है। उन्हीं सिद्धान्तो में से एक मुख्य सिद्धान्त है जिसको विजातीय द्रव्य के नाम से जाना जाता है, यह विजातीय द्रव्य शरीर में (चयापचय अवशेषो का जमाव व नाड़ी की भित्ति कम पड़ने लग जाती है। धीरे–धीरे एकत्र होने शुरू हो जाते है। यही अवांछित पदार्थ जब शरीर में या उसकी बनावट में बदलाव करते है तभी औषधि विज्ञान को रोग का पता चल पाता है। परन्तु शरीर के इन जहरीलें तत्वों को प्राकृतिक चिकित्सा में या तो तीव्र रोग के माध्यम से या जीवन शैली द्वारा शरीर शुद्धि के माध्यम से इन विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने का कार्य शरीर के ही कुछ अंगो द्वारा निरन्तर चलता रहता है। यह दूषित पदार्थ दैनिक जीवन में बिना काइवर के भोजन करने, सलाद न खाने, वासी व सड़ा गला खाने, अनियमित भोजन करने प्रदूषण युक्त वातावरण में रहना, आदि के कारण शरीर में जमा होते है। जिनको मलदोष भी कहते है। यह ठोस भी हो सकता है। शरीर के भीतर जो भी बेकार की चीजें होती है। जैसे मल, मूत्र, पुरीष, श्लेष्मा तथा पूय आदि रक्त में मिलकर अनेको प्रकार के दोष उत्पन्न करती है। इन दोषो को शरीर से बाहर निकालने में कुछ सिद्धान्त अपना कार्य करते है। आइये आगे इसका विस्तार से अध्ययन करें :–

9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत ''विजातीय द्रव्यों के सिद्धान्त'' का विश्लेषण करते हुये विजातीय द्रव्यों की परिभाषा, विजातीय द्रव्य के पर्याय, विजातीय द्रव्य के प्रकार, विजातीय द्रव्यों के वृद्धिकारक भाव, विजातीय द्रव्य एवं तीव्र तथा जीर्ण रोगों का सिद्धान्त, विजातीय द्रव्य की

पंचमहाभूत प्राकृतिक चिकित्सा, विजातीय द्रव्य की मालिश एवं आहार द्वारा चिकित्सा का वर्णन, क्रमशः जनसामान्य में स्वास्थ्य के प्रति जागरूक होने से स्वास्थ्य सुरक्षा, स्वास्थ्य सवंर्धन एवं अस्वस्थ व्यक्तियों के रोग निवारणार्थ अध्ययन करना है। अर्थात् विजातीय द्रव्य सिद्धान्त की विस्तृत जानकारी हेतु इस इकाई को जानना आवश्यक समझते है।

9.3 विजातीय द्रव्य का अर्थ एवं भाव

हमारे शरीर के दो प्रमुख कार्य होते है :– एक भोजन का पाचन करना तथा दूसरा पाचन के बाद बचा हुआ दूषित मल का निष्कासन। यही निष्कासन की क्रिया जब ठीक प्रकार से ना काम करे तो शरीर में दोष जमा होने लगता है। इस प्रकार वैद्य व उनके द्वारा रचित ग्रन्थों में मिलता है ''जयन्ते विविधा रोगाः प्रायशोमल स चयात्'' और मलिनी करणान्मलः । इससे अभिप्राय यह है कि शरीर के सभी अंग अन्नपान आदि से बचे मल को एवं मृत कोषो को बाहर निकालने का प्रयास लगातार करते रहते है। इन अंगो में मुख्यतया नाक द्वारा, आसुओं के माध्यम से, आंख द्वारा, पसीने द्वारा, मल द्वारा, श्वास द्वारा तथा थूक एवं मूत्र द्वारा इन पदार्थो का निष्कासन चलता रहता है। स्त्रियों में यह मासिक धर्म के रूप में भी निकलता रहता है। इसको हम एक उदाहरण द्वारा समझ सकते है। जैसे किसी भी प्रक्रिया में जहां पदार्थ का उपयोग होता है वहां अवश्य ही कुछ अवशेष दूषित पदार्थ के रूप में बाहर निकलते है। कार में पैट्रोल द्वारा, रेल इंजन में कोयले अथवा डीजल से धूएं के साथ जहरीले कण निकलना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। यदि यही धूएं का कार्बन निकलने की बजाय इंजन में जमता रहे तो अवश्य ही एक दिन ऐसा आएगा कि पूरा इंजन अर्थात् रेल या मोटर का चलना बिल्कुल बन्द हो जायेगा। ठीक इसी प्रकार हमारा शरीर यदि विजातीय द्रव्य बाहर न निकाल पाने की स्थिति में इनका शरीर में इतना जमाव एकत्र हो जाता है कि एक दिन शरीर का कोई भाग अथवा कई भाग अपना कार्य करना बन्द कर देते है। अर्थात् या तो शीघ्र ही बुढ़ापा आ जाता है या फिर शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है।

विजातीय द्रव्य शरीर के उन सभी भागों में जमा हो जाता है जहां पर उनके बाहर निकलने के रास्ते होते है तथा पेट पर सबसे पहले जमा होता है। इसके बाद ही पूरे शरीर में जमा होने लगता है, जिससे पोषक तत्वों की जगह ये विजातीय अर्थात् दूषित ले लेते है। विजातीय द्रव्य अपने रूप को परिवर्तित करने की सहज क्षमता रखते है। इनके भीतर पदार्थ रोगाणु पनपते है तथा उद्वेग पैदा करके रक्त गरमी बढ़ा देते है। इस गर्मी से ही ज्वर, जुकाम, उल्टी, सिर दर्द, अरूचि व अतिसार जैसी बिमारियां (जो तीव्र रोग के रूप से पहचानी जाती है) आ जाती है। विजातीय द्रव्य ऋतु परिवर्तन के साथ ही अपने आवेग में परिवर्तन करते है। जिससे ऋतु परिवर्तन के कारण रोगो के घटने व बढ़ने की स्थिति देखने को मिलती है।

वे द्रव्य जो शरीर को पोषण नहीं देते अपितु उसके विनाश का कारण बनते है, ऐसे दोषो को विजातीय द्रव्य कहते है। सम्पूर्ण शरीर में रोगोत्पत्ति का एक प्रधान कारण है वह विजातीय द्रव्य कहलाता है। शरीर में मलों का जमाव ही विजातीय द्रव्य कहलाता है।

विजातीय द्रव्य पर्याय :– रोग, मल, विकार, संचित, दुर्दष्ट्म, लाड़ीपन, दूषित पदार्थ, जहर, विकृति, विसदृष, द्रव्य आदि विजातीय द्रव्य के पर्याय के नाम से जाने जाते है।

विजातीय द्रव्य कौन से होते है :– शरीर के अन्तर्गत वे सभी पदार्थ जो बेकार है, एवं रोगोत्पति का प्रधान कारण है वे सभी विजातीय द्रव्यों के अन्तर्गत आते है। चाहे वे अनुपयुक्त पदार्थ ठोस, द्रव, गैस किसी भी रूप में हो। आयुर्वेद शास्त्र में उसे त्रिदोषों की

विषम–न्यूनाधिक मात्रा कहा गया है। अर्थात् वात, पित्त, कफ का हीन–मिथ्या या अतियोग होना–रोगोत्पत्ति कारक है। प्राकृतिक आयुर्विज्ञान के अनुसार 1. मल 2. मूत्र 3. पसीना 4. दूषित वायु 5. दूषिम सांस 6. प्रदूषित रक्त 7. प्रदूषित सात धातुयें यथा : 1. प्रदूषित रस 2. प्रदूषित रक्त 3. प्रदूषित मांस 4. प्रदूषित मेड 5. प्रदूषित अस्थि 6. प्रदूषित मज्जा 7. प्रदूषित शुक्र / प्रदूषित आर्तव आदि विजातीय द्रव्य कहलाते है।

नासिका द्वारा रेचक की स्थिति में निष्कासित कार्बन डाई आक्साइड, रोमकूपों के द्वारा सम्पूर्ण शरीर में त्वचा द्वारा निर्हरित स्वेद अर्थात् पसीना, गुदा द्वारा निष्काषित मल, मूत्रेन्द्रिय द्वारा उत्सर्जित मूत्र, नाक एवं मुंह द्वारा कफ तथा थूक, कान द्वारा निष्कासित चिकना एवं गाढ़ा कर्णमल, नेत्रों द्वारा उत्पादित गीद (कीचड़) साथ ही केश, नख एवं स्त्रियों के मासिक धर्म (आर्तव) को विजातीय द्रव्य की श्रेणी में माना जाता है।

विजातीय द्रव्य वृद्धिकारक भाव :–

1. विषैली दवाइयों के अन्धाधुंध बिना डॉक्टर के सेवन करने से या ड्रिप–इंजेक्शन के माध्यम से ''हैवी डोज'' शरीर में एक या मांसपेशियों में प्रवेश कराने से विजातीय द्रव्यों की मात्रा बढ़ जाती है।
2. मुंह मार्ग के द्वारा प्रदूषित अशुद्ध जल के सेवन करने से कीटाणु एवं गंदगी शरीर में पहुंचकर विजातीय द्रव्यों की अभिवृद्धि करते है।
3. दुर्व्यसनों का सेवन यथा गुटका, जर्दा, चुर्री, बीड़ी, सिगरेट, अफीम, भांग चरस, गांजा, स्मैक, मद्यपान, तम्बाकू द्वारा निर्मित पाउच में मिश्रत विष द्रव्य एवं अन्य इसी के समकक्ष अन्य अतः सेवनीय आदि के द्वारा विजातीय द्रव्य की बढ़ोत्तरी होती है।
4. प्रकृति में स्थित विषैले जीव जन्तु, मधु मक्खी, बर्र, सांप, बिच्छू द्वारा दंश करना व पागल कुत्ते व चौपाये जानवर द्वारा काट खाना आदि से शरीर प्रवेशित विशजन्य पदार्थ विजातीय द्रव्य को शरीर में बढ़ाते है।
5. विभिन्न प्रकार के मच्छरों के द्वारा भी शरीर में मलेरिया, डेंगू आदि रोग भी विजातीय द्रव्यों के रक्त में बढ़ने के कारण उत्पन्न होते है।
6. श्वास लेते समय, प्रदूषित वायु के कारण, महानगरों में वाहनों के धुयें के रूप में कार्बन तथा कार्बन मोनो आक्साइड एलर्जी कारक धूल–धुंआ, छोटे–छोटे संक्रामक कीटाणु (अर्थात् टी0वी0 के कीटाणु (बेसिलस ट्यूबर कुलोसिस) जुकाम के कीटाणु, आइ फ्लू के कीटाणु, उस्ट माइट आदि के रूप में द्रव्य शरीर में जाकर विजातीय द्रव्य की वृद्धि करते है एवं रोगोत्पत्ति में कारण बनते है।
7. वर्षा, शरद, हेमन्त तीन ऋतुयें दक्षिणायन की तथा शिशिर, बसन्त, ग्रीष्म ऋतु तीन उतरायण काल की ऋतुयें इस प्रकार कुल 6 ऋतुयें होती है। इन ऋतुओं के एक दूसरे के आने के बीच में काल को 14 दिन का ऋतु संधि काल 7–7 दिन का मानते है। इस ऋतु परिवर्तन काल में ऋतुन्थ विजातीय द्रव्य बढ़ने से ऋतुजन्य बीमारियां उत्पन्न होती है।
8. काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, राग द्वेष आदि मानसिक राजसिक एवं तामसिक भाव शरीर में चिन्ता, उद्वेग आदि के द्वारा विजातीय द्रव्य बढ़कर रोगोत्पत्ति होती है।
9. वे सभी दुष्ट प्रदूषित आहार एवं विहार जो शरीर में जाकर धातुओं को दुष्ट करते है। सप्त धातुओं की असमानता उत्पन्न करते है। शरीर में कुपोषण उत्पन्न करते है। सभी विजातीय द्रव्यों को बढ़ाते है।

10. तेज मिर्च, मसाले, चटपटे मैदा के बने व्यंजन आहार सामग्री, प्राकृतिक चिकित्सा में वर्णित 4 सफेद जहर यथा मैदा, नमक शक्कर एवं डालडा घी (वनस्पति घी) आदि का सेवन शरीर में विजातीय द्रव्यों को बढ़ाते है।

11. पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण, अनियमित भोग विलास रासायनिक सौंदर्य प्रसाधन सामग्री, अमर्यादित अनियंत्रित क्षीण सुख सुविधाओं का उपभोग आदि तत्व विजातीय द्रव्यों को प्रभावित कर उनकी मात्रा को बढ़ाते है।

12. असंयमित दिनचर्या सेवन, दिवास्वप्न अर्थात् दिन में शयन करना, रात्रि जागरण, मानसिक कुविचार, आलस्य जीवन, प्रकृति से दूर एवं कृत्रिमता से अनुराग आदि भाव विजातीय द्रव्यों के वृद्धि करने में सहायक होते है जो रोगों की उत्पत्ति के कारण है।

13. प्रज्ञापराध :– प्रज्ञा अर्थात् बुद्धि। बुद्धि के द्वारा किये जाने वाले सभी प्रकार के अपराध घृति–स्मृति का नाश कर विजातीय द्रव्यों को प्रभावित करते हुये रोगों का कारण बनते है।

14. पतंजलि के अनुसार दस प्रकार के भाव यथा–पांचयम 1. अहिंसा 2. सत्य 3. अस्तेय 4. ब्रह्मचर्य एवं 5. अपरिग्रह तथा पांच नियम– 1. शौच 2. संतोष 3. तप 4. स्वाध्याय 5. ईश्वर प्राणिधान का पालन नहीं करने से येन–केन रूपेण अन्तोगत्वा विजातीय द्रव्य बढ़कर रोगोत्पत्ति होती है।

15. अप्राकृतिक जीवन यापन :– शारीरिक एवं मानसिक रूप से दुष्ट मनोवृत्तियां का असंगत प्रयोग, अहितकर चिन्ता–मय एवं अनिष्टकारी कल्पनायें करना, प्रकृति के विरूद्ध आहार–विहार एवं कदाचार में लिप्त रहना आदि अन्तोगत्वा विजातीय द्रव्यों को प्रभावित करते हुये रोग कारक होते है।

9.4 विजातीय द्रव्य तीव्र तथा जीर्ण रोग

विजातीय द्रव्यों द्वारा शरीर में रोगों की उत्पत्ति होती है। इन उत्पन्न हुये रोगों में भी विजातीय द्रव्य दो प्रकार से सभी रोगों में मूल रूप से रोगोत्पत्ति करते है। 1. तीव्र रोग 2. जीर्ण रोग ।

1. **तीव्र रोग :–** वे सभी रोग जो तेजी से उत्पन्न होते है तीव्र रोग कहलाते है। ये अधिकतर संक्रामक रोग होते है। जैसे– प्रतिश्याय (जुकाम), हैजा (उल्टी, दस्त) आदि तीव्र रोग की श्रेणी में आते है। यह सामयिक, अल्पकालिक होते है। जल्दी ही ठीक भी हो जाते है। कभी–कभी इनकी उपेक्षा शीघ्र मारक भी होती है। तीव्र रोगों की प्रथम एवं द्वितीय अवस्था शरीर में पीड़ादायक होती है। तीसरी एवं चतुर्थ अवस्था में शनैः–शनैः रोगों का स्वतः विजातीय द्रव्यों के निष्कासन के कारण शमन होने लगता है तथा पांचवी अवस्था में विजातीय द्रव्यों की पूर्ण निहर्रण की अवस्था में शरीर स्वस्थ होने लगता है। इसलिए ही तीव्र रोगों को शत्रु नहीं अपितु चिकित्सा की दृष्टि से मित्र माना जाता है।

2. **जीर्ण रोग :–** तीव्र रोगों के विपरीत जो रोग शरीर में दबकर पड़े रहते है, धीरे–धीरे अनिष्ट एवं विनाश की स्थित बनाते हुये, कष्ट सहित असंयमित जीवन यापन से लम्बे समय तक शरीर को जर्जर/पीड़ित बनाये रखते है, जीर्ण रोग कहलाते है। जीर्ण रोगों में चिकित्सा की दृष्टि से धैर्य–विश्वास संयम की आवश्यकता होती है। प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा जीर्ण रोग जो कि वंशानुगत भी हो सकते है। असाध्य श्रेणी के ये रोग कठिनता से लेकिन ठीक अवश्यक होते है।

जीर्ण रोग एवं तीव्र रोग दोनों में मूल रूप से विजातीय द्रव्य ही कारण है। इनमें रोग प्रतिरोधक क्षमता की वृद्धि करते हुये चिकित्सा कार्य सावधानी से पंचतत्वों के द्वारा की जाती है।

9.5 विजातीय द्रव्य एवं रोगोत्पत्ति का सिद्धान्त

_''विजातीय द्रव्यों के द्वारा शरीर की ''जीवनशक्ति'' इम्यूनिटी पावर का नाश होने के कारण जब इनका (विजातीय द्रव्यों) संग्रह अधिक बढ़ता है तत्पश्चात ये आक्रमण कर शरीर में जीवाणुओं/कीटाणुओं को रहने और पनपने लायक अनुकूल वातावरण तैयार कर रोगोत्पत्ति करते है। अतः रोगोत्पत्ति का मूल कारण जीवाणु नहीं अपितु ''विजातीय द्रव्य'' ही है। विजातीय द्रव्यों के द्वारा शरीर में कीटाणुओं जीवाणुओं के पोषण एवं पनपने योग्य मल विद्यमान होता है। जिससे रोगाणुओं की वृद्धि होकर रोग उत्पन्न होते है। स्वस्थ एवं निर्मल शरीर जिसमें ''रोग प्रतिरोधक क्षमता'' बढ़ी हुयी होती है, उसमें कभी भी कीटाणु रोगोत्पत्ति नहीं कर सकते। लेकिन वह शरीर जिसमें विजातीय द्रव्य अर्थात् मल भरा हुआ है वह रोगाणुओं के पनपने में अनुकूल होने के कारण आवश्यक रूप से विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न करने में कारण होता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से कीटाणु रोगों का प्रमुख प्रथम कारण है। लेकिन प्राकृतिक चिकित्सा की दृष्टि से सभी रोगों का प्रथम एवं एकमेव कारण ''विजातीय द्रव्य'' है। प्राकृतिक चिकित्सा का सिद्धान्त यह है कि ''शरीर में जिस प्रकार के विजातीय द्रव्यों'' के मल भरे होते है। कीटाणु उसी प्रकार के उद्वेक पैदा कर उसी रोग के लक्षण उत्पन्न करते है जिस रोग के आधुनिक चिकित्सा सम्मत कीटाणु होते है। विजातीय द्रव्यों द्वारा मानव शरीर में मल निष्कासन वाले मार्गो में विशेषकर पेट और पाचन संस्थान में इकट्ठा होना प्रारम्भ होकर सम्पूर्ण शरीर में शनैः–शनैः जमाव होता है। शरीर में जहां भी विजातीय द्रव्यों का जमाव होता है वहां पोषक तत्वों अर्थात् रक्तादि धातुओं का संचरण–पोषण बाधित हो जाता है। ऐसी स्थिति में शरीर में ''इम्यूनिटी पावर'' पोषण के अभाव में कमजोर होने लगता है। विजातीय द्रव्य भरे हुये शरीर में उद्वेग एवं उद्वेक सहित क्षोभ की स्थिति उत्पन्न होती है। इसी स्थिति में ''विजातीय द्रव्यों'' के अन्तर्गत ही बहुत बारीक–बारीक कीटाणु एवं जीवाणु उत्पन्न होकर पनपने लगते है जो सम्बन्धित आक्रान्त स्थल पर प्रदूषित परिवर्तन करते हुये ''धातुवैलम्य'' की स्थिति उत्पन्न कर रोगोत्पत्ति करते है। सार रूप में यह कह सकते है कि जब मिथ्या आहार–विहार, प्रज्ञापराध या इन्द्रियों का हीन–मिथ्या–अतियोग आदि के कारण जब शरीर में विजातीय द्रव्य मौजूद रहते हुये बढ़ जाते है। उनके निकलने के मार्ग लगभग रूक से जाते है। जब उद्वेग की क्रिया प्रारम्भ होकर उद्वेग जनित गर्मी के कारण सारे सर्वप्रथम तीव्र रोग यथा ज्वर, सिर दर्द, बदन दर्द, अतिसार, वमन, कब्ज आदि उत्पन्न होकर कालान्तर में जीर्ण रोगो को उत्पन्न करते है।

विजातीय द्रव्य ही रोग कारक है इसके समर्थन में देखे :–

एक ही कालखण्ड में कार्यशील वैज्ञानिक बी0चेम एवं लुई पाश्चर थे। आप दोनों ने प्रयोगों से सिद्ध किया कि किस प्रकार से जीवाणु रोग कारक नहीं है या है।

डॉ0 बी0 चेम के प्रयोग :–

डॉ0 बी0 चेम कहते है कि रोग के कारण जीवाणु/विषाणु/कृमि न होकर स्वंय वहां पर एकत्रित अपवित्र त्याज्य (विजातीय द्रव्य) पदार्थ ही है। प्रमाणित करने हेतु उन्होने दिखाया कि एक साफ धुली हुई जगह पर कोई भी मक्खी या अन्य इसी प्रकार के गंदगी कारक

कीट/कीटाणु नहीं होते है, पर यदि वहां पर थोड़ी गंदगी या शक्कर डाल दी जाये तो उसी से सम्बन्धित कीटाणु/मक्खी/चीटी आदि उस पदार्थ को खाने के लिए आ जायेगी। ये कीट वहां पर तब तक रहेंगे जब तक कि उनका प्रिय खाद्य पदार्थ समाप्त नहीं हो जायेगा, उपरान्त वे स्वतः ही चले जायेंगे। अतः यदि इन कीटों को उक्त स्थान पर आने से रोकना है तो उस गंदगी/खाद्य पदार्थ को वहां से अच्छी तरह से साफ कर दें। इस साफ–सफाई/स्वच्छता करने की कई विधियां है :–

डॉ0 बी0 चेम अनुसार – धुलाई करके, गंदगी को हटाये/या कारण को पूर्ण वहां से हटा दें कीटाणु/जीवाणु नहीं आयेंगे ।

व्हीं डॉ0 लुई पाश्चर के अनुसार– उक्त खाद्य पदार्थ/गंदगी को जीवाणु नामक पदार्थ से नष्ट कर दें। या कीटाणुओं, कीटों को मार दें।

डॉ0 बी0 चेम उदाहरण से सिद्ध करते है कि उपरोक्त पड़ी गंदगी/खाद्य पदार्थ को वहां से हटाने के अतिरिक्त एक साफ स्वच्छ श्वेत कपड़े से उसे पूर्णतया ढक दे तो न तो गंदगी दिखायी देगी और कीट/जीवाणु आदि भी भाग जायेंगे (क्योकि वे दिखायी ही नहीं दे रहे हैं)।

प्र कुछ समय उपरान्त उक्त गंदगी/खाद्य पदार्थ (विजातीय द्रव्य) और सड़ेगा गलेगा तो उससे उत्पन्न तरल पदार्थ पुनः उक्त स्वच्छ चादर से चिपक कर सतह पर आ जायेगा जिसकी गंध एवं स्वद से सम्बन्धित पुनः जीवाणु/कीटाणु आदि पुनः खाने के लिए आ जायेंगे और उन्हे पुनः हटाने के लिए पुनः एक स्वच्छ चादर डाल दें। इस प्रकार यह प्रक्रिया हम महीनों तक करते रहे और बार–बार सफेद चादर से ढकते रहें। परिणाम देखने के लिए आप बारी–बारी से चादरें उठाते जाये तो आपको उन सभी स्वच्छ चादरों पर रंग–बिरंगे, काले धब्बे दिखाई देंगे और दुर्गंध भी हर स्तर पर विभिन्न–विभिन्न प्रकार के जीवाणु/कीटाणु/कृमि आदि भी मिलेंगे और तो और सबसे निचली चादर तो आपको फफूंद युक्त सड़ी–गली अति दुर्गंध युक्त मिलेगी। अतः परिणाम मिला :–

अ– विभिन्न स्तरों पर उपलब्ध गंदगी/खाद्य पदार्थ (विजातीय द्रव्य) अनुसार कीटाणु/जीवाणु/फंफूद आदि मिलेंगे।

ब– उक्त विजातीय द्रव्य के कारण ही वहां पर उक्त जीवाणु/कीटाणु आयें।

स– उक्त कीटाणु/जीवाणु/कृमियों के मरने और पुनः सड़ने से और नये जीवाणु/कीटाणु वहां आये।

द– जबकि उक्त स्वच्छ स्थान पर पहले से अ, ब, स, में से वहां पर कुछ भी न था। उपरोक्त परिणाम न आये इस हेतु डॉ0 बी0 चेम कहते है कि गंदगी/विष्द्र को ही वहां से पूर्ण रूपेण हटा दिया जाना चाहिए जो केवल प्राकृतिक चिकित्सा के सैद्धान्तिक उपचारों से ही किया जा सकता है और यही प्रा0चि0 का रोग समाप्त करने का सिद्धान्त भी है।

डॉ0 लुई पाश्चर कहते है कि उपरोक्त गंदगी को जीवाणु/विषाणु नाशक दवाओं से नष्ट कर दो यही ऐलोपैथिक दर्शन का सिद्धान्त है। ऐसा करने से कारण वहीं पर पड़ा रहता है जो कालांतर में अन्य गंभीर रूप में हमारे सामने आता है जिसे आधुनिक चिकित्सा विज्ञान एक नया नाम दे देता है। जैसे प्रतिश्याय–आगे–फुफ्फुसीय श्वास कास–आगे–फेफड़ो का संक्रमण–टी0वी0–आगे फेफड़ो का कैंसर–आगे–जीव की मृत्यु ऐसा अन्याय अंगो के साथ होता रहता है। कहने का तात्पर्य यही है कि राजकीय संरक्षण के अनुसार डॉ0 लुई पाश्चर के सिद्धान्तों को रोग के कारण कीटाणु ही है। आधुनिक

चिकित्सा में मान्यता प्रदान कर दी गई जिससे दवा कम्पनियों का व्यापार खूब बढ़ सकें। वहीं डॉ0 बी0 चेम का सिद्धान्त रोग का कारण कीटाणु/जीवाणु नहीं है।'' के सिद्धान्त को नहीं माना गया पर प्राकृतिक चिकित्सा दर्शन में इसी को मानकर हम रोगी को रोग मुक्त करते है।

9.6 विजातीय द्रव्यों की चिकित्सा का सिद्धान्त

प्राकृतिक चिकित्सा की दृष्टि से प्रथम सिद्धान्त यह है कि सभी रोग, उनके कारण एवं उनकी चिकित्सा भी एक ही है। शरीर में ''विजातीय द्रव्यों'' के संग्रह एवं उनकी वृद्धि से रोग उत्पन्न होते है। अतः शरीर से उनका निष्कासन–शोधन करना ही चिकित्सा का प्रथमोपचार है।

प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत ''इम्यूनिटी पावर'' बढ़ाने की आहार दिनचर्या प्राणायामादि के द्वारा वैज्ञानिक प्रक्रिया है। जिससे रोगाणु–जीवाणु का प्रथम दृष्ट्या ''रोग प्रतिरोधक क्षमता'' बढ़े होने के कारण नाश होता है। मनुष्य का शरीर पंचतत्वों के द्वारा बना हुआ है। इन्ही पंचतत्वों का ''विजातीय द्रव्यों'' के कारण असंतुलन होने पर रोग उत्पन्न होते है। अतः इन्हीं पंचतत्वों के माध्यम से शरीर की मिट्टी–पानी–धूप–हवा एवं आकाश (उपवास) द्वारा चिकित्सा की जाती है। जिससे शरीर के अन्तर्गत जमे हुये, बढ़े हुये विजातीय द्रव्यों का शोधन कर शरीर एवं मन को रोग मुक्त किया जाता है।

1. **पृथ्वी तत्व की मिट्टी चिकित्सा एवं विजातीय द्रव्य :–** मिट्टी शरीर के प्रदूषित ''विजातीय द्रव्यों'' को घोलकर अवशोषित कर शरीर के बाहर निकाल देती है। मिट्टी एवं पंक स्नान के द्वारा उच्च रक्तचाप, तनाव जन्य सिर दर्द, चर्म रोग एवं विशेषकर चक्र के मध्य मिट्टी पट्टी से कब्ज रोग ठीक किया जाता है। जो आयुर्वेद शास्त्र की दृष्टि से रोगो का प्रमुख कारण माना गया है। ''रोगाः सर्वेदपि मन्दग्नौ'' अर्थात् सभी रोगो का वैद्यक शास्त्र में मन्दाग्नी (कब्ज) कारण माना है जिसे मिट्टी पट्टी एवं आहार (पथ्य) द्वारा ठीक किया जाता है।

2. **जल चिकित्सा एवं विजातीय द्रव्य :–** जल चिकित्सा के अन्तर्गत स्नानादि के द्वारा शरीर के त्वचा स्थिति सभी रोम कूप खुल जाते है एवं शरीर का सबसे बड़ा आवरणमय मार्ग से पसीना आदि के द्वारा विजातीय द्रव्य बाहर निकलते है एवं आरोग्य प्राप्त होता है। ''विजातीय द्रव्यों'' को जल चिकित्सा द्वारा निष्कासन हेतु एनिमा, गरम–ठंडा सेक, कटिस्नान, रीढ़ स्नान, गरम एवं ठंडी पटि्टयां, छाती तथा पैरों की लपेट आदि विधियां के द्वारा विभिन्न प्रकार के रोगों का उपचार किया जाता है। प्राकृतिक स्नान के द्वारा शरीर में हल्कापन, स्फूर्ति, मांसपेशियों में सक्रिय, रक्त संचार, व्यवस्थित व संयमित होता है जिससे शरीर रोग मुक्त होता है।

3. **अग्नि तत्व द्वारा सूर्य किरण चिकित्सा एवं विजातीय द्रव्य :–** सूर्य किरणों से विभिन्न सात रंगो की पृथक–पृथक बोतलों में पानी या तेल निश्चित अवधि में सूर्य किरणों के समक्ष रखकर तैयार किया जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा का यह वैज्ञानिक तथ्य है कि सप्त रंगों में बैगनी, नीला, आसमानी एवं हरा रंग ''शीतल'' प्रकृति के होते है जिनका गरमी अन्य रोगों में चिकित्सार्थ प्रयोग करते है। उसी प्रकार शेष तीन रंग लाल–पीला, नारंगी में ये ''उष्ण' प्रकृति के होते है। अतः इन रंगो से तैयार तेल–पानी की बोतलों का शीत जन्य रोगों में उपचारार्थ प्रयोग करते है। उक्त सात रंगो द्वारा रोगानुसार ''विजातीय द्रव्यों'' की चिकित्सा की जाती है।

सूर्य किरण चिकित्सा में– सूर्य हमें चार प्रकार की किरणें प्रदान करती है :–

1. **दृश्यमान श्वेत किरणें (Visible Rays) :-** ये श्वेत किरणें सप्त रंगो से मिलकर बनती है जिसका उपयोग हम रंग चिकित्सा एवं धूप स्नान से करते है। जिनका अलग–अलग प्रयोग शरीर से यथानुरूप विजातीय पदार्थो को निकालता है।

2. **अधोरक्त (Infra Red) किरणें :–** ये किरणे ताप प्रदान करती है जो सुखकर लगती है। ये स्नायुओं को शिथिल व शांत कर वेदना को कम करती है। क्योकि वेदना व थकावट कारक विजातीय द्रव्य– नाइट्रोजन जनित तत्व, लैक्टिक एसिड वहां से दूर होने लगता है।

3. **दूरस्थ (Far Infrared) किरणें :–** ये किरणें अद्रश्य श्रेणी में आती है पर उष्म होती है जो शरीर में अस्थि स्तर तक पहुंचकर विटामिन डी के निर्माण में सहायक होती है तथा कैल्शियम व फास्फोरस का अस्थि में उपयोग बढ़ाने में सहायक होती है साथ–साथ तत्तसंबंधी निर्मित विजातीय तत्वों का निष्कासन भी बढ़ा देती है। ये सबसे सुरक्षित किरणें होती है।

4. **पराबैंगनी (Ultra Violet) किरणें :–** ये भी किरणें विटामिन डी के निर्माण में भाग लेती है। रिकेट्स जैसे रोग को होने नहीं देती है। इनकी प्राप्ति प्रातः काल के सूर्य से ही अच्छी सम्भव होती है।

उपरोक्त के अतिरिक्त सूर्य प्रकाश में क्रीडा, व्यायाम, कार्य करने से स्नायुओं की पुष्टि होती है जो उनके आकार एवं बल में वृद्धि करता है। कैल्शियम की वृद्धि व उसका पाचन बढ़ जाता है। सूर्य प्रकाश अम्ल जनित विजातीय तत्वों को बाहर कर क्षारत्व में वृद्धि करता है जिससे रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़ जाती है।

सुप्रसिद्ध चिकित्सक डॉ0 आर0टी0 ट्राल के अनुसार– ''खानों में कार्य करने वाला या अंधकार में कार्यरत व्यक्तियों में सामान्य रोग भी उग्र स्वरूप धारण कर लेते है। सूर्य प्रकाश की कमी होने पर रक्त में फाइब्रिन और लाल रक्त कण कम से, श्वेत कण व रक्त में पानी बढ़ जाता है जो रोग को और उग्रता प्रदान कर देता है।

डॉ0 शेल्टन लिखते है ''पृथ्वी के जिन हिस्सों में बारह महीने सूर्य प्रकाश उपलब्ध रहता है, वहां कैंसर की मात्रा कम पायी जाती है इसके विपरीत होने पर कैंसर, क्षय रोग, रिकेट्स, न्यूमोनिया, शिशु मृत्यु दर और संक्रमण तेजी से होता है।

4. **वायु चिकित्सा एवं विजातीय द्रव्य :–** पंच प्राण जिन्हे प्राण–उदान–व्यान–समान एवं अपान कहते है। इनकी प्राकृत स्थिति हेतु वायु चिकित्सा का विशेष महत्व है। वायु चिकित्सा का प्राकृतिक चिकित्सा की दृष्टि से ''विजातीय द्रव्यों'' के निष्कासन हेतु 2 प्रकार से चिकित्सा की जाती है।

1. **वायु स्नान द्वारा :–** हल्के कपड़े पहनकर या मौसम के अनुसार कपड़े उतारकर स्वच्छ एकान्त स्थल पर जहां पेड़ पौधे हो। शुद्ध वायु पर्याप्त मात्रा में हो घूमना चाहिए।

2. **प्राणायाम द्वारा :–** अष्टांग योग में ''प्राणायाम'' का दीर्घ जीवन एवं आरोग्य प्राप्ति में बिना धन का इलाज इसे माना है। नियमित प्राणायाम द्वारा श्वास–प्रश्वास दीर्घ होता है। फुफ्फुसों में आक्सीजन अर्थात् प्राणतत्व की वृद्धि होती है। जिससे रक्त द्वारा कोशिकाओं में प्राण तत्व (O_2) बढ़ाकर उन्हे स्वस्थ रखने में सहायता मिलती है। इससे कोशिकाओं का क्षरण/निक्रोसिस रोका जाता है। पर्याप्त रक्त संचार द्वारा प्राण तत्व की उपस्थिति में बीमार कोशिकाओं का पोषण होकर शरीर स्वास्थ होता है।

5. **<u>आकाश चिकित्सा एवं विजातीय द्रव्य :–</u>** मस्तिष्क एवं शरीर के ''विजातीय द्रव्यों'' को निष्कासित करने हेतु ''उपवास चिकित्सा'' का प्राकृतिक चिकित्सा में आकाश महाभूत के अन्तर्गत समावेश किया गया है। पूर्ण रूप से शारीरिक एवं मानसिक विश्राम की प्रक्रिया के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के उपवास यथा :– प्रातः कालिक उपवास, सायंकालिक उपवास, एक आहारोपवास, रसोपवास, फलोपवास, दुग्धोपवास, मठोपवास, पूर्णोपवास, साप्ताहिक उपवास, लघु उपवास, कड़ा उपवास (असाध्य रोगों में) एवं दीर्घोपवास सहित पूर्णोपवास की वैज्ञानिक अनुसंधानित प्रक्रिया चिकित्सार्थ विजातीय द्रव्यों के निषकासन हेतु अपनायी जाती है। उपवास चिकित्सा का विजातीय द्रव्यों के निष्कासन हेतु सिद्धान्त यह है कि उपवास प्रक्रिया में शरीर की जठराग्नि (पाचकाग्नि) अर्थात् पाचन प्रणाली विश्राम में रहती है। अतः भोजन को पचाने वाली जठराग्नि की ऊर्जा पूर्ण रूप से ''विजातीय द्रव्यों'' को निकालने में लग जाती है। जिसे शरीर नहीं अपितु सम्यक् पोषण हेतु तैयार होता है। ''विजातीय द्रव्यों'' का उपवास द्वारा निर्हरण होने से शीघ्र शरीर रोग मुक्त होकर एसिडिटी (अम्लपित्त) पाचन संस्थान जन्य रोग, मोटापा, श्वास, दमा रोग, उच्च रक्त चाप, गठिया आदि वात रोग तथा जीवन शैली जन्य रोगो से मुक्ति हेतु विशेष महत्व है।

<u>विजातीय द्रव्य एवं अन्य प्राकृतिक चिकित्सा :–</u>

(1) मालिश :– स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य के सुरक्षा एवं बीमार व्यक्ति के रोग निवारण हेतु प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत वैज्ञानिक मालिश की विधि वर्णित है। मालिश की विधि के द्वारा रक्त संचार उन्नत होने से विजातीय द्रव्यों का नाश होता है। मालिश से अंग–प्रत्यंगो का परिपोषण होकर पुष्ट एवं लाभदायक शरीर होता है। तैल मालिश के पश्चात धूप स्नान करने से शरीर क्रियाशील होकर ''विजातीय द्रव्यों'' को बाहर निकालने में मद्‌द करता है। मालिश से स्नान एवं व्यायाम दोनो प्रकार के लाभ प्राप्त होते है। शरीर के विभिन्न तंत्रो या अवयवों पर मालिश स्वास्थ्य प्रत प्रभाव डालती है जैसे– 1. त्वचा– रोमछिद्रो की सक्रियता में वृद्धि। 2. स्नायु– लैक्टिक एसिड का शीघ्र निष्कासन होकर स्फूर्ति की प्राप्ती। 3. रक्त संचार– रक्त गतिशील प्राणवायु बढ़ शोध कम होता है। 4. ज्ञानतंत्र– ज्ञानतंतुओं की उत्तेजना शान्त होती है। 5. पाचन तंत्र– मल निष्कासन बढ़ रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़ती है। 6. हृदय– हृदय से रक्ताधिक्य कम होती है। 7. मूत्र तंत्र– मूत्र से विष द्रव्य तीव्रता से निकलते है।

(2) आहार चिकित्सा :– प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत दो प्रकार के आहारों का चिकित्सा की पृष्टि से वर्णन है। 1. क्षारीय आहार 2. अम्लीय आहार – प्राकृतिक चिकित्सा का यह मानना है कि ''संतुलित भोजन'' के अन्तर्गत 20 प्रतिशत अम्लीय एवं 80 प्रतिशत क्षारीय भोजन का आहार में सेवन करना चाहिए। आयुर्वेद शास्त्र एवं गीता के अनुसार आहार तीन प्रकार का सात्विक, राजसिक एवं तामसिक श्रेणी का होता है। शोधन की दृष्टि से शुद्धिकरण आहार शांतकारक आहार 3. पुष्टिकारक आहार के रूप में 3 भागों में विभक्त कर सकते है।

आयुर्वेद शास्त्र कहता है :–

विनापि भैषजैर्व्याधि पथ्यादेव विर्वतते ।
नतुंपथ्य विहीनस्य भेषजानां शतैरपि ।।

अर्थात् बिना किसी औषधि के सभी रोग पथ्य पूर्वक आहार–विहार, सोच–विचार से ठीक हो जाते है। यदि इन्हीं का अपथ्य रखा जाये तो किसी भी औषधि से ये ठीक नहीं किये जा सकते है।

(क) शुद्धिकारक आहार :– कच्चा नारियल का पानी, सब्जियों का सूप (टमाटर–लॉकी) गेहूँ के जवारे का ताजा रस, एलोवेरा एवं आंवले का जूस, नीबू सहित खट्टे इस यथा–हगहत आदि शुद्धिकारक आहार की श्रेणी में आते है।

(ख) शांतकारक आहार :– अंकुरित अन्न, मौसम के अनुसार प्राप्त फल, सलाद (टमाटर, पत्ता गोभी, मूली, गाजार, खीरा, चुकन्दर, ककड़ी) उबली हुई भाप में बनायी सब्जियां तथा अंकुरित अन्न (मूंग–मोठ–मैथी) धनिया एवं पुदीने की चटनी, कढ़ी पत्ता आदि शांतकारक आहार की श्रेणी में आते है।

(ग) पुष्टिकारक आहार :– दही, दालें, सभी प्रकार के अन्न का आटा, दलिया आदि पुष्टिकारक आहार की श्रेणी में आते है। संक्षेप में आहार चिकित्सा का सार यह है कि क्षारीय आहार स्वास्थ्य का संवर्धन करने के साथ–साथ ''विजातीय द्रव्यों'' का निष्कासन कर पाचन संस्थान सहित शरीर का शुद्धिकरण करते हुये ''रोग मुक्त'' शरीर का निर्माण करते है। प्राकृतिक चिकित्सा के 10 सिद्धान्तों के साथ–साथ चूंकि इस पद्धति में औषधियों का प्रयोग नहीं होने से इसे आयुर्वेद से पृथक माना है। प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार ''आहार ही औषधि'' है ऐसा माना जाता है।

उपरोक्त बिन्दुओं से स्पष्ट है कि ''प्रकृति के अनुसार आहार, विहार एवं विचार ही रोग निवारण करते है, दवायें या चिकित्सक नहीं।''

यह सिद्धान्त कहता है कि जब तक ''फिजिस'' अर्थात् ''प्रकृति'' जब तक रोगी की रोग निवारण शक्ति प्रबल नहीं बनाता तब तक अन्य किसी भी उपचारात्मक उपायों का कोई भी प्रभाव रोग को समाप्त करने में नहीं होता है। प्राकृतिक चिकित्सा में ऐसे उपायों के रूप में संतुलित संयमित आहार, संयमित योगासन, प्राणायाम एवं ध्यान, यथोचित मिट्टी, पानी सूर्य के तत्व से सम्बन्धित उपचारों को सम्मिलित किया जाता है।

9.7 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत रोगो के होने का प्रधान कारण ''विजातीय द्रव्य'' के सिद्धान्त की विवेचना करते हुये मिलावटी प्रदूषित आहार प्रदूषित भोग विलासी संस्कृति के युग ने कैसे स्वास्थ्य का विनाश करते हुये ''विजातीय द्रव्यों'' द्वारा रोगोत्पत्ति की है के वर्णन के साथ–साथ उत्पन्न हुये रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा उपचार के सिद्धान्त का वर्णन किया गया है। इस बढ़ती हुई महंगाई के जमाने में, जीवन पर्यन्त आधुनिक चिकित्सा पद्धति की औषधि हृदय रोग, मधुमेह, थायोराइड आदि में खाने की विवशता को कम करने/या औषधि सेवन मुक्त शरीर बनाने असाध्य रोगो से मुक्ति पाने हेतु विजातीय द्रव्य एवं प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त का वैज्ञानिक विवेचन किया है।

1. विख्यात डाक्टर और विएना यूनिवर्सिटी में औषधि विज्ञान के प्रोफेसर डॉ0 पटिनकॉफर का निष्कर्ष है ''जीवाणु स्वतंत्र रूप से रोग उत्पन्न करने में असमर्थ है।
2. डॉ0 पावेल थॉमस अन्य किसी भी व्यक्ति की अपेक्षा अधिक जीवाणुओं को स्वेच्छा से अपने शरीर में प्रवेश कराया, पर वे कोई भी रोग उत्पन्न नहीं कर सके।
3. डॉ0 लण्डन लन्सेट मेडिकल जर्नल आफ कनाडा/जून/1916 के अंक में छह डॉक्टरों के दल द्वारा किये गये एक ऐसे प्रयोग को उल्लेख है जिसमें लगातार ढाई वर्षो तक क्षय, डिप्थेरिया, न्यूमोनिया, टाइफाइड के जीवाणु विविध उपायों से शरीर में डाले गये पर उन्हे किसी भी प्रकार का संक्रमण नहीं हो सका।

4. डॉ0 हण्टर ने आस्ट्रेलिया के कुछ नागरिको पर अनेक प्रयोग किये। प्रथम प्रयोग में डिफ्थेरिया के 50 हजार जीवाणु पानी में मिलाकर पिलाये गये। थोड़े दिनों की प्रतीक्षोपरान्त इन लोगो पर कोई भी प्रभाव नहीं दिखायी दे सका। इसी तरह जीवाणुओं की मात्रा बढ़ाते हुये अन्यान्य कप्रयोग किये, पर कोई भी लक्षण उत्पन्न नहीं हुये।

5. हम तो प्रति घण्टे ऐसे 14,000 जीवाणुओं को शरीर में प्रवेश करने देते है। किन्तु हमारे शरीर में ऐसे जीवाणुओं के लिए योग्य आहार (विष एवं अन्य दूषित तत्व) न हो तो वे हमारी कुछ भी हानि नहीं कर सकते। अंत में वे स्वंय ही नष्ट हो जाते है या शरीर से बाहर स्वतः ही निकल जाते है।

अतः हम कह सकते है कि ''रोग का लक्षण विष संचय ही कारण है और जीवाणुओं की वृद्धि या उनका पाया जाना उसका परिणाम है।

9.8 संदर्भ ग्रन्थ :–

1.प्राकृतिक चिकित्सा (पंचमहाभूत के परिप्रेक्ष्य में) – डॉ0 त्रिभुवन नाथ श्रीवास्तव
2.Philosophy & Practice of Nature Cure – डॉ0 हेनरी लिंडलाहर
3.प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ0 गाला
4.Practical of Nature cure – आचार्य के0 लक्ष्मण शर्मा

9.9 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न–1 विजातीय द्रव्य परिभाषा–पर्याय बताते हुये विजातीय द्रव्य वृद्धिकारक भावों का वर्णन करें ?

प्रश्न–2 विजातीय द्रव्य एवं रोगोत्पत्ति के सिद्धान्त का वैज्ञानिक विश्लेषण कीजिये ?

प्रश्न–3 विजातीय द्रव्य एवं तीव्र तथा जीर्ण रोगो की विवेचना कीजिये ?

प्रश्न–4 विजातीय द्रव्यों की पंचभौतिक चिकित्सा का विस्तार से वर्णन कीजिये ?

इकाई –10 शारीरिक मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 शारीरिक स्वास्थ
10.4 मानसिक स्वास्थ्य
10.5 आध्यात्मिक स्वास्थ्य
10.6 सारांश
10.7 सन्दर्भ ग्रंथ
10.8 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

जैसा कि आपने उपर देखा कि इकाई का उद्देश्य मुख्य रूप से शरीर को स्वस्थ रखने हेतु कौन–कौन सी ऐसी सावधानियां है जिनका पालन तथा उनके उपाय कर हम स्वस्थ बन सकते है। इन सभी के विषय में जानने के लिए आवश्यक है कि हम यह जानने का प्रयास करें कि शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य में क्या–क्या कारण व लक्षण पैदा होते है जिससे ये अस्वस्थता अथवा रोग का रूप धारण करके हमारे स्वास्थ्य की बिगाड़ कर रख देते है अर्थात् रो ग्रस्त हो जाते है। उन्हें दूर करने का प्रयास योग व प्राकृतिक चिकित्सा के माध्यम से किस प्रकार संभव है ? आइये इसका अध्ययन व विवेचन करें।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य विभिन्न प्रकार के रोगो में शारीरिक रोग, मानसिक रोग एवं आध्यात्मिक रोग कौन से है उनका निराकरण कर, इन तीनों प्रकार की स्थिति में स्वास्थ्य कैसे प्राप्त कर सकते है ? शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य में बाधक कुछ मूल कारणों एवं उनके समाधान के विषय में अध्ययन आगे विस्तार से है। प्राकृतिक चिकित्सा में इन तीनों का स्वास्थ्य में योगदान का भी अध्ययन यहां किया जायेगा।

10:3 शारीरिक स्वास्थ्य :–

प्राकृतिक चिकित्सा मत के अनुसार शरीर रचना प्राकृतिक चिकित्सा मत के अनुसार पंच भौतिक शरीर का निर्माण पंच महाभूतों पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश से मिलकर हुआ है। श्री रामचरित मानस के अनुसार –

छिति जल पावक गगन समीरा ।
पंच रचित यह अधम शरीरा ।।

श्रीमद् गीता के अनुसार –

भूमिरापोड्नलों वायुः एवं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मं भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।।
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृति विद्धि में पराम् ।
जीवभूतां महावाहो ययेदं धार्यते जगत् ।।

परमात्मा प्रकृति में जड़ व चेतन रूप में विद्यमान है। जड़ रूप में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश में व चेतन के रूप में मन, बुद्धि व अहंकार के रूप में विद्यमान है।

जब ये पंचमहाभूत सामान्य अनुपात में होते है तो शरीर स्वस्थ होता है। इन पंच महाभूतों का संतुलन बिगड़ने से शरीर के स्वास्थ्य का संतुलन बिगड़ने लगता है। प्राकृतिक चिकित्सा में चिकित्सा साधनों एवं आहार व्यवस्था द्वारा इन्हीं पंचमहाभूतों का अपरोक्ष रूप से संतुलन किया जाता है।

पंचमहाभूत एवं रोग :– शरीर के अलग–अलग अंगो के अनुसार पंच महाभूतों का स्थापन होता है। फेफड़ो में वायु तत्व अधिक होता है। रक्त में जल तत्व अधिक होता है। पाचन अंगो व जठर अग्नि में अग्नि तत्व अधिक होता है। अस्थियों, उपास्थियों एवं मांस पेशियों में पृथ्वी तत्व की मात्रा अधिक होती है। उपवास, रसाहार एवं अल्पाहार की स्थिति में शरीर में आकाश तत्व की मात्रा संतुलित होती है।

वैसे तो शरीर के समस्त कोष उत्तक, अंग एवं तंत्रो में पाचो तत्व अलग–अलग अनुपात में होते ही है। प्रकृति में प्रत्येक पदार्थ इन्ही पांचों तत्वों से मिलकर बनते है। पदार्थ की वैज्ञानिक परिभाषा के अनुसार जिसमें द्रव्यमान है एवं स्थान घेरता है। पदार्थ कहलाता है। शरीर के अंगो में इन्ही पंचमहाभूतों अंग विशेष में निश्चित अनुपात में वितरण होता है।

पंच महाभूतों का अंगो के अनुसार निश्चित अनुपात में वितरण अच्छे स्वास्थ्य की निशानी है। जब भी इन पंचमहाभूतों का संतुलन बिगड़ता है तो विभिन्न प्रकार के रोगो का जन्म होता है।

शारीरिक रोग एवं क्रियाविधि :– हमारा शरीर अत्यन्त जटिल रचना एवं क्रियाविधि से मुक्त है। इसमें कुछ भी अच्छा परिवर्तन प्रकृति के अनुसार ही युक्ति संगत हो सकता है। जीवन उपयोगी विभिन्न कार्यो के लिए यद्यपि अलग–अलग अंग व तंत्र नियत है। इसके अलावा भी इन अंगो एवं तत्वों में परोक्ष अथवा अपरोक्ष सम्बन्ध स्थापित है। एक अंग अथवा तंत्र की क्रिया विधि अथवा रचना से दूसरा अंग अथवा तंत्र प्रभावित होता है। शरीर के द्वारा विभिन्न जैविक कर्म पाचन, श्वसन, रक्त, परिसंचरण, उत्सर्जन, संवेदनशीलता, प्रजनन, पोषण, चलन–गमन, स्वांगीकरण आदि कार्य जब सामान्य रूप से है तो शरीर स्वास्थ्य कहलाता है। ये समस्त कार्य शरीर के विभिन्न तंत्रो पाचन तंत्र, श्वसन तंत्र, रक्त परिसंचरण तंत्र, उत्सर्जन तंत्र, तंत्रिका तंत्र, प्रजनन तंत्र, अस्थि मांसपेशियां तंत्र आदि तत्रों द्वारा किये जाते है। सामान्य रूप से ये सभी तंत्र आपस में संयोजी उत्तको जैसे रक्त, मांस पेशियों एवं अस्थियों द्वारा एक दूसरे से सम्बन्धित है। अर्थात् समस्त क्रियायें आपस में जुड़ी होती है। एक क्रिया दूसरे को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए फेफड़ो का हृदय से सम्बन्ध है व हृदय का सम्पूर्ण शरीर से फेफड़ो द्वारा शुद्ध किया गया रक्त हृदय को जाता है व हृदय से सम्पूर्ण शरीर में जाता है। सम्पूर्ण शरीर से एकत्रित अशुद्ध रक्त हृदय को भेजा जाता है व हृदय से रक्त को शुद्ध करने के लिए फेफड़ो को यह अशुद्ध रक्त भेजा जाता है। शुद्धिकरण के पश्चात यह रक्त पुनः हृदय को भेजा जाता है।

शरीर की इन भौतिक क्रियाओं के नियमन के साथ–साथ शरीर के कोषो व उत्तको के अन्दर व बाहर कुछ जैव रासायनिक क्रियाएं घटती रहती है। ये जैव रासायनिक क्रियाऐं भी दो प्रकार की होती है– Anabolism & Catabolism

Anabolism में उर्जा का संचय होता है व Catabolism में उर्जा का विघटन होता है। ये जैव रासायनिक क्रियाऐं जब असामान्य रूप से कार्य करने लगती है तो स्वास्थ्य में कमी

होने लगती है। शरीर में बीमारियों के होने की सम्भावनायें बढ़ने लगती है। इस प्रकार शरीर की क्रियाविधि एवं जैव रासायनिक क्रियाओं के बिगड़ने से शारीरिक रोग होते है।

शारीरिक रोगों का मूल कारण :– शरीर में जो भी भोजन पोषण के लिए लिया जाता है। सर्वप्रथम उसका पाचन होता है, तत्पश्चात इस पचित भोजन की रक्त में अवशोषण होता है। अवशोषित पचित भोजन का इसके पश्चात शरीर के विभिन्न कोषो एवं अंगो में स्वांगीकरण (Assimitation) होता है। इस बीच इस क्रिया में कही भी रूकावट आती है तो वह भोजन अपशिष्ट पदार्थ के रूप में एकत्र होता है। इस भोजन के द्वारा पोषण की क्रिया होती है। यह भोजन पोषित होकर शरीर के टूटे–फूटे भागों की मरम्मत करता है एवं शरीर का निर्माण करता है, साथ ही शरीर के संचलन के लिए उर्जा प्राप्त होती है। इस क्रिया में अनुपयोगी पोषक पदार्थ एवं व्यय द्वारा बचे भोज्य पदार्थ विजातीय द्रव्यों के रूप में परिवर्तित हो जाते है। ये विजातीय द्रव्य यदि समय से शरीर से बाहर नहीं निकलते तो रोग के रूप में एवं लक्षणों के रूप में शरीर पर प्रकट होते है। भोजन के अर्न्तगमन से लेकर मल–मूत्र के रूप में शरीर से अपशिष्ट पदार्थो के निष्कासन का क्रम इस प्रकार है।

भोजन का अन्तर्गमन – पाचन – अवशोषण – स्वांगीकरण – उत्सर्जन

इस अन्तर्गमन से उत्सर्जन के क्रम में यदि कही पर भी नियत समय से यह प्रक्रिया कम या तीव्र वेग से होती है तो शरीर में रोग पनपने की सम्भावना होने लगती है। इस प्रक्रिया के बिगड़ने से शरीर में विजातीय द्रव्यों का जमा होना प्रारम्भ हो जाता है जिससे अंगो की क्रिया विधि, सरंचना एवं जैव रासायनिक प्रक्रिया में नकारात्मक बदलाव होने लगता है। यह नकारात्मक बदलाव शरीर पर लाक्षणिक परिवर्तन लाता है। ये लक्ष्य विभिन्न रोगों के नाम से जाने जाते है।

सब रोगो का कारण एक :– प्राकृतिक चिकित्सा के अलावा अन्य चिकित्सा पद्धतियों में शरीर पर प्रकट लक्षण अलग–अलग रोग के नाम से जाने जाते है। कब्ज, गैस, बवासीर, एसिडिटी, अर्थाराईटिस, कैंसर, ब्लड प्रेशर, माइग्रेन, ऑसिलाइटिस, ज्वर, खांसी–जुकाम, दमा, टी0वी0 आदि आदि। इन्ही रोगो के नाम से एवं लक्षणों को रोग कहते है। इन्ही लक्षणों एवं रोग के नाम के अनुसार उपचार किया जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा में समस्त रोगो का एक ही कारण मानते है वह है विजातीय द्रव्यों का शरीर में जमा होना। भोजन के अन्तर्गत से निष्कासन की प्रक्रिया में जहां पर भी अपशिष्ट उत्सर्जी पदार्थ अपना स्थान बना लेते है। वहीं पर विजातीय द्रव्य एकत्रित होने लगता है। यही विजातीय द्रव्य अंगो की क्रियाविधि, रचना एवं जैव रासायनिक क्रियाओं को हानि पहुंचाने लगता है। संक्रमण (Infection) जैसे रोगो में भी प्राकृतिक चिकित्सा में विजातीय द्रव्य को ही दोषी मानते है। यही विजातीय द्रव्य शरीर में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जब एकत्रित होने लगता है तो दूसरा रोग कहलाता है। विजातीय द्रव्य एक ही है परन्तु रोग का नाम अलग–अलग होता है।

उदाहरण के लिए किसी को त्वचा का रोग है। त्वचा में एक्जिमा, फोड़े फुन्सी है। इन रोगो को दबाने की दवाई दी जाती है तो इन त्वचा के रोगो के दबने के कारण यह विजातीय द्रव्य उभार के श्वसन तंत्र पर एकत्रित होता है। तो श्वास दमें के रूप में शरीर पर रोग प्रकट होने लगता है। त्वचा रोगो के दबने के कारण यदि यही विजातीय द्रव्य जोड़ो पर एकत्र होने लगता है तो जोड़ो का दर्द, आर्थराइटिस का रूप धारण करने लगता है।

इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा में समस्त रोगो का एक ही कारण मानते है। विजातीय द्रव्यों का शरीर में एकत्रित होना। प्राकृतिक चिकित्सा साधनों एवं आहार व्यवस्था से इन विजातीय द्रव्यों को शरीर के छिद्रो से बाहर निकालकर सहज स्वास्थ्य प्रदान किया जाता है। विजातीय द्रव्यों के शरीर से बाहर निकलने से रोगो का रूपान्तरण नहीं होता।

शारीरिक रोगो का रूपान्तरण बनाम विजातीय द्रव्यों का स्थानान्तरण :– विजातीय द्रव्यों के निकलने की प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से शरीर से होती रहती है। हमारी जीवनी शक्ति हानिकारक विषों एवं विजातीय द्रव्यों को शरीर से अपने आप बाहर निकलने की प्रक्रिया में 24 घण्टे प्रयास रत रहती है। परन्तु विकृत जीवन शैली (आहार, विहार, व्यवहार एवं विकृत सोच) के कारण जीवनी शक्ति दोषो को बाहर निकालने में जब सफल नहीं होती तो इसी कारण शारीरिक रोग होने लगते है। विजातीय द्रव्य अथवा हानिकारक विष एक नियत जगह अपना स्थान बनाकर किसी रोग का रूप ले लेते है। जब यह विजातीय द्रव्य अलग स्थान पर जाता है। तो दूसरा रोग कहलाता है और तीसरे स्थान पर जाता है तो तीसरा रोग कहलाता है। इस प्रकार वही विजातीय द्रव्य बढ़ता घटता एवं स्थान बदलता रहता है। इसी प्रकार रोग भी बढ़ते घटते एवं रूपान्तरित होते रहते है। रोग का नाम बदलता रहता है। जैसे एक चोर अधिक धन की चोरी करता है वही चोर सामान की चोरी करता है वही चोर जेब काटता है तो जेब कतरा कहलाता है। चोर एक है परन्तु चोरी के नाम व ढंग अनेक है। इसी प्रकार रोग एक ही है ''शरीर में विजातीय द्रव्यों का जमा होना'' रोगो के बाह्य रूप से नाम अनेक है। शुद्ध होना आवश्यक है। उचित प्राकृतिक आहार व्यवस्था के लिए नियमित अनुशासित आहार तालिका रोग, रोगी एवं ऋतु के अनुसार निर्धारित की जाती है।

आहार तालिका में कच्चे आहार फल, सब्जियां, सलाद एवं अंकुरित पदार्थो (कच्चे आहार) का भरपूर समावेश होता है। कभी–कभी रोगी के रसाहार, फलाहार अथवा जलाहार पर ही रखा जाता है। लघु उपवास, रसोपवास अथवा दीर्घ उपवास भी प्राकृतिक चिकित्सा अति महत्वपूर्ण है। महान प्राकृतिक चिकित्सक महात्मा जगदीश्वरानन्द ने तो उपवास को ब्रह्मास्त्र की संज्ञा दी।

प्राकृतिक आहार विहार, विचार एवं उपचार से शारीरिक रोगो से सहज छुटकारा सम्भव है।

शारीरिक रोग एवं जीवन शैली :– समस्त चिकित्सा विधाओं के बड़े–बड़े चिकित्सक मंचो से प्रतिवर्ष अलग–अलग दिवसों ''कैंसर डे, आर्थराइटिस डे, डायबिटीज डे एवं हार्ट डे पर एक ही बात की घोषणा करते है कि समस्त रोगो का मूल कारण आधुनिक जीवन शैली है अर्थात् जीवन शैली में नकारात्मक परिवर्तन है। परन्तु बड़े दुख की बात यह है कि जब ये बड़े–बड़े डॉक्टर रोगियों का उपचार करते है तो जीवन शैली के विषय में रोगी को बहुत कम शिक्षित करते है। सारा जीवनशैली दवाओं पर होता है। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा में प्रारम्भ से ही जीवन शैली में रचनात्मक सुधार कर स्थाई स्वास्थ्य प्राप्त करने पर जोर दिया जाता है।

जीवन शैली से अभिप्राय यह है कि आहार विहार एवं विचार । आहार–विहार एवं विचार जीवन शैली के प्रमुख अंग है।

आहार :– मैदा अधिक मिर्च मसालेदार तला भुना, सफेद मीठा (चीनी, बूरा) एवं सफेद बारीक आटा आहर में सम्मिलित होने का अभिप्राय है कि ''बहुत से रोगो को निमंत्रण''। कच्चा आहार, सलाद, अंकुरित फल सलाद एवं फलो का रस आहार शैली का आवश्यक

महत्वपूर्ण काम होना चाहिए भूख से कम खाना, नियमित समय से खाना, धीरे–धीरे चबा चबाकर खाना अच्छे स्वास्थ्य की निशानी है।

विहार :– उठना, बैठना, घूमना, सोना, लेटना, आराम, विश्राम विहार शैली का ये अंग है। प्रतिदिन योगाभ्यास प्राणायाम एवं 4–5 किमी0 का घूमना एवं दैनिक व्यायाम अथवा खेल कूद से शारीरिक स्वास्थ में सुधार किया जा सकता है। रीढ़ को सीधी करके बैठने से कमर दर्द की समस्या से छुटकारा मिलता है।

विचार :– शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से मन का सहज, शीत एवं निर्मल होना आवश्यक है। हमारे शरीर में स्थित अन्तः स्रावी ग्रंथियों का श्वास के लेने छोड़ने की गति से एवं सोच विचार से सीधा सम्बन्ध है। रचनात्मक विचार एवं कलात्मक जीवन शैली का हमारे शारीरिक स्वास्थ्य को बनाये रखने में सीधा सम्बन्ध है।

10.4 मानसिक स्वास्थ

आधुनिकता से बढ़ते कदम से व्यक्ति जितना खुश होने का प्रयास कर रहा है। मन से उतना ही बीमार होता जा रहा है। प्राचीन समय में जहां व्यक्ति शरीर को ही महत्व देता था परन्तु आज व्यक्ति शरीर को छोड़कर केवल मन पर ही भार डाल रहा है। अधिक समय कम्प्यूटर, टी0वी0, इंटरनेट, मोबाइल पर ही समय बीतता है। मन को न जानने पर व्यक्ति मानसिक रोगो से ग्रस्त होता जा रहा है। शरीर से सुगठित, सुन्दर दिखने वाला व्यक्ति बैचेनी, अनिद्रा एवं चिंता से ग्रसित है। वह असन्तुष्ट है जीवन व्यतीत कर रहा है। आज मन को जानने की आवश्यकता है। मन क्या है ? आज भारत में 5 से 7 प्रतिशत लोग गंभीर मानसिक रोग से ग्रस्त है। आज रोगो के होने के 50 प्रतिशत कारण मानसिक रोग है। यहां तक की शारीरिक रोगो जैसे (रक्त दाब, अल्सर, कैंसर, डायबिटीज, अस्थमा, एसिडिटी) मानसिक समस्याग्रस्त है।

कहा जाता है मन के हारे हार है। मन के जीते जीत, जब मन ही चिंताओं का पुलन्दा है तो जीत या प्रसन्नता की स्थिति आ नहीं सकती है।

मनोविज्ञान मन के तीन स्तर की बात करता है। चेतन स्तर, अवचेतन स्तर एवं अचेतन स्तर

1. **चेतन स्तर –** जब भी व्यक्ति कार्य कर रहा जैसे– सोचना, बोलना, लिखना, अनुभवकरण, याद करना, व्यवहार करना शारीरिक कार्य जिसमें वह शरीर के साथ जागरूक बना रहता है। अतः लोगो के केवल चेतन मन का ही ज्ञान होता है।
2. **अवचेतन मन –** में पुरानी छिपी हुई यादें, आदते अच्छी या बुरी जैसे– टाईपिंग, कारमोटर चलाना, गाली देना आदि।

अचेतन मन – में बचपन, पुराने जन्मों की यादें, भय, रोकी गई इच्छाएं संचित रहती है। इनको जानना एवं इनके आवेग को दूर करने का प्रयास करना आवश्यक है।

शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली के द्वारा शरीर की रक्षा होती है। लेकिन उसका दुरूप्योग शरीर में रोगो के कारण बनते है।

जैसे शरीर के सामने आने पर भय के कारण स्वंय ही शरीर अधिक ऊर्जा उत्पन्न करता है। जिससे व्यक्ति भागने में अपनी ऊर्जा लगाये। जो जरूरी है। परन्तु बिना बात की चिंता भय के कारण, धड़कन तेज होना, रक्त संचार तेज होना अंगो के कार्य में शिथिलता होना, भूख न लगना, तनाव होना, हर समय जरूरी नहीं है। यह रोगों का कारण है।

मन के स्वास्थ्य को जानना कठिन है। क्योकि उसका प्रकटीकरण नही के बराबर है। प्रायः व्यक्ति, चिंता, बैचेनी, क्रोध, लोभ आदि को सामान्य समझकर जीते रहते है। क्योकि वह मन के स्वास्थ्य पहलू को नहीं जानते।

इसी मन के कारण एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता है। स्वस्थ मन सभी का एक जैसा है। जो बदलते वातावरण में बदलता रहता है। स्वस्थ मन अपनी इच्छाओं एवं सामाजिक व्यवहारों में संतुलित स्थापित कर सकता है।

अब कुछ मन के रोगों की चर्चा करते है। कुछ आवेगों में जैसे भय, बैचेनी, ईर्ष्या, क्रोध, चिंता, सपने देखना परन्तु कार्य न करना आदि है। इसको दो भागों में मानते है। 1. **कायिक मनोरोग** – में मन सीधे प्रभावित होता है। जबकि 2. क्रियात्मक में मन के कार्यो में रूकावट होती है।

कायिक रोग में – एडिक्सन (एल्कोहल, ध्रुम्रपान), मिरगी आदि रोग होते है। ऐसा व्यक्ति स्मृतिह्रास, मंदबुद्धि, फटे पुराने कपड़ो में रहना इत्यादि से ग्रस्त हो जाता है। जबकि क्रियात्मक रोग में – मनोविक्षिप्ति (Psychoses) और विक्षिप्त (Neurosis) में आवेश, विचार, भाव व्यवहार पर प्रभाव पड़ता है। यहां तक (Shizophsenia) तक की दशा आ जाती है। ऐसे रोगी समाज से अलग हो जाते है। उनमें आलस्य, काल्पनिक विचारो एवं किसी भी सनक की आदत होने से वह अपने अलग संसार में खोये रहते है।

उपनिषदों में कहा गया है।

मनः एव मनुष्याणां कारण बोधमोक्षयोः ।

मन ही मनुष्य के वंधन एवं मोक्ष का कारण है। अतः मन का स्वस्थ होना जरूरी है। नही तो व्यक्ति सांसारिक बंधनों में ही फंसा रहता है। मोक्ष (शान्ति) को अनुभव नहीं कर पाता।

मनो रोग कैसे बनते है ?

1. सपने अधिक देखना, उनका पूरा न हो पाना ।
2. अन्धविश्वास में घिरे रहने के कारण मूल प्रकृति या व्यवहार से दूर होना ।
3. ईमानदार एवं सच्चा बनने को सिद्ध करने के कारण शरीर और मन को कष्ट पहुंचाना एवं इच्छाओं का दमन करना ।
4. अपने परिवार एवं दोस्तों से लगाव होना एवं मृत्यु होने पर शोक होना ।
5. बच्चो में शारीरिक एवं मानसिक शोषण होना ।
6. माता–पिता या आदरणीय व्यक्ति द्वारा अरूचि के कार्यो के प्रति दबाव ।
7. दूसरों की गलतियां निकालना एवं फालतू गपशप के कारण ।
8. आर्थिक समस्याओं के कारण लगातार परेशान रहना ।
9. प्रत्येक को शक की नजर से देखना, काम, क्रोध, लोभ, मोह के जंजाल में फसे रहना ।
10. शारीरिक रोगों से लगातार फसे रहना ।
11. परिस्थिति ताल–मेल न बैठ पाना, हर समय बैचेनी का अनुभव करना ।
12. छोटी–छोटी बातों में घबरा जाना एवं भय का वातावरण बनाना ।
13. नींद न आना, दुखी जीवन व्यतीत करना ।

मनसिक रोग के प्रकार

आनुवांशिक रोग – माइग्रेन, पारकिन सन्स, फोबिया, पागलपन आदि।

शारीरिक दुर्घटना के कारण– विक्षिप्तता, फोबिया, स्मरण शक्ति का ह्रास।

महर्षि पातंजलि के अनुसार ''योगा चित्तवृति निरोधः'' योग चित्तवृति का निरोध है। अर्थात् (मन, बुद्धि, अहंकार) चित्त के विचारों को रोकना ही योग है। मन विचारों का संग्रह है। नये–नये विचार इकट्ठा होते रहते है। पुराने विचारों को बाहर करने की कला हमें आती नहीं। यही विचार चिन्ता एवं परेशानी का कारण है। व्यक्ति अपनी बुद्धि के कारण विचारों को सही या गलत ठहराता रहता है। लेकिन अपने अनुभव ज्ञान ही उसे परेशानी में लाता है। उसका ज्ञान अज्ञानता ही है। क्योकि सत्य ज्ञानी व्यक्ति चिंताओं में नही फसता है। अज्ञानी नकारात्मक विचारों में फसा रहता है। और तनाव और उदासी के गिरफ्त में आ जाता है।

विचारों का समूह

चेतन मन –	**बुद्धि, अहंकार, ज्ञान** –	**अचेतन मन कुन्ठाये आदि**
स्वंय के अनुभव, परिवार के संस्कार, समाजिक एवं धार्मिक नियम ।		चेतन मन में जो भी प्राप्त किया वह यह दिखाता है।

इस तरह अवचेतन मन में आये नाकरात्मक विचार ही रोगों का कारण है। यही रोग बाद में मनोरोग फिर स्थूल रोगों में प्रभाव दिखाते है। मनोवैज्ञानिकों की शोध में पाया गया गलत विचारों के कारण उदासी, आलस्य, खून की कमी, विक्षिप्तता, कब्ज, अल्सर, मधुमेह, भय, साइजोफ्रेनिया मिरगी, हृदय रोग, उच्च रक्त चाप, एग्जिमा, अस्थ्मा, आदि रोग प्रकट होते है।

दोषपूर्ण जीवन शैली के कारण– सिर दर्द, डिप्रेशन, अनिद्रा, भय, कामुकता, लालच मोह, दुखी रहना, बैचेनी, पागलपन आदि।

मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए जीवन शैली को योगमय बनाने की आवश्यकता है। उसके लिए योग के आसन प्राणायाम, मुद्रा, षठकर्म, ध्यान आदि तो है ही योग मनोविज्ञान को व्यवहार में पालन करना होगा। जैसे मन को शान्त एवं प्रसन्न करने के लिए प्रेम, निष्काम कर्म ईश्वर समर्पण, श्रद्धा एवं विश्वास त्याग शील जीवन, दूसरों के लिए दया करने की आवश्यकता है। साथ में अष्टांग योग के पहले दो प्रकार यम, नियम, अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यम– सत्य, अहिंसा, अस्तेह, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह । नियम– शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान। ये ही योग मनोविज्ञान है जिसे लोग कठिन समझते है। जबकि योग अभ्यास के कारण शरीर में सकारात्मक स्राव निकलने लगते है। तनाव दूर होता है। तनाव के दूर होते ही व्यक्ति स्वंय ही प्रकृति के साथ हो जाता है। कहते है बच्चा भगवान का रूप है। क्योकि वह संसार के गलत नियमों एवं व्यवहारों को नहीं जानता, उसकी प्रसन्नता, खेलना, मस्ती, सरल स्वभाव, आकर्षण ही मानसिक स्वास्थ है।

प्राकृतिक चिकित्सा के लिए सबसे पहले आकाश तत्व चिकित्सा जिसमें मौन रहना, उपवास अपने सामर्थ्य के अनुसार ही करना आवश्यक है। ध्यान के लिए मन को तैयार करना। **वायु चिकित्सा में –** शुद्ध वायु का सेवन, सुबह टहलना, योगासन आदि।

सूर्य चिकित्सा– तेल मालिश के साथ गर्मियों में 15 मिनट एवं सर्दियों में 30 से 40 मिनट तक सूर्य स्नान से विटामिन डी का अवशोषण एवं शरीर में Ca^+ का अवशोषण होता है। जिससे व्यक्ति तनाव मुक्त होकर शरीर भी शिथिल हो जाता है।

जल चिकित्सा– एनिमा, ठंडा गर्म रीढ़ स्नान, कटि स्नान आदि ।

मिट्टी चिकित्सा– सिर एवं पेट की मिट्टी पट्टी, मिट्टीस्नान आदि ।

आसन– उत्तान पादासन, पवन मुक्तासन, नौकासन, सर्वागासन, मकरासन, भुजंगासन, सूर्य नमस्कार आदि।

प्राणायाम– अनुलोम–विलोम, भ्रस्त्रिका, भ्रांमरी आदि।

षटकर्म– नेति, कुंजल, त्राटक, कपाल भांति ध्यान एवं योग निद्रा प्रतिदिन।

आहार में– दिनचर्या के साथ

प्रातः जागरण– 5.00 से 6.00 बजे के बीच, सूर्य उदय से पहले 2 गिलास नीबू पानी शहद, उठने के बाद।

9.00 सुबह नाश्ता– फल, पपीता, सेब आदि, भीगे हुये अखरोट, बादाम, अंजीर आदि, अंकुरित दाल, चना, मूंग।

दोपहर–12.00 बजे– सलाद, खीरा, मूली, प्याज, गाजर आदि चोकर वाली रोटी, सब्जी के साथ, हरी पत्तेदार, सब्जियों, दही बिना मलाई का।

नाश्ता– 4 बजे– मौसमी फल, हर्बल चाय, सत्तू ।

रात्रि भोजन–7 बजे– उबली सब्जी, खिचड़ी, नमकीन, सब्जी वाला दलिया।

नीम, तुलसी, जायफल एवं अशोक की पत्ती को सुखाकर सुबह शाम शहद या दूध से लेने चाहिए। रात्रि में सोते समय गर्मपाद स्नान। मन की शिथिलता के लिए मन की बच्चे की तरह देखभाल करनी पड़ती है।

1. 6 से 7 घण्टे की आरामदायक नींद, दिन में 45 मिनट का आराम श्वासन में जरूरी है।
2. अपने शुभचिंतकों के साथ अपने तनावों को दूर करने की बात करना एवं सतसंग करना।
3. अपनी सामर्थ्य की ज्ञानकारी होना एवं कर्तव्यों को पूरा करना।
4. काम के अतिरिक्त, व्यायाम, खेल, चित्रकारी, बागवानी आदि मनोरंजक कार्यो के प्रति समय एवं लगाव होना।
5. तनाव को दूर करने का प्रयास करते रहें। सलाह ले, प्रकृति प्रेमी बन रहें।
   यह सभी मानसिक स्वस्थ के लिए आवश्यक कदम है, करें एवं प्रसन्नचित रहकर जीवन यापन करें।

10.5 आध्यात्मिक स्वास्थ्य

शरीर के जन्म लेने के पश्चात ही मृत्यु निश्चित हो जाती है। जिसने जन्म लिया है उसे एक न एक दिन मरना आवश्यक है। इन्द्रियों एवं मन का विकास इच्छाओं आवश्यकताओं महत्वाकांक्षाओं, अहंकार, बुद्धि एवं विचार के साथ–साथ होता है। परन्तु एक ऐसा तत्व है। इस शरीर व मन के साथ जो अजन्मा है, अमृत है, अपरिवर्तनशील है। यह अदृष्य है। बिना इसके जीवन का अस्तित्व नहीं है। यही वह जीवन तत्व है जिसे आत्मा कहते है। चित की शान्त अवस्था जिसमें सुख एवं आनन्द की अनुभूति रहती है जो सत्य है, आध्यात्मिक स्वास्थ्य की अनुभूति कराती है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य के प्राप्त होने पर मानसिक स्वास्थ्य की स्वतः ही प्राप्ति हो जाती है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य की अवस्था में शरीर में आध्यात्मिक स्वास्थ्य ज्ञान की यात्रा पर ले जाता है। ईश्वर सत्य एवं स्वपनवत् लगने लगता है। इस आध्यामिक स्वास्थ्य को प्राप्त करने में प्राकृतिक चिकित्सा में कुछ उपाय निम्न प्रकार है।

1. **रामनाम की औषधिः–** महात्मा गांधी जी प्राकृतिक चिकित्सा के दौरान रामनाम जाप की शिक्षा देते थे। रोगी चिकित्सा लेते समय मन को शान्त रखे इसके लिए रामनाम का जाप किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए टब स्नान के समय जब रोयेदार कपड़े से पेड़ू को रगड़ना होता है तो हर रगड़ के साथ रामनाम का प्रेम मयी भाव हमारे भीतर चलना चाहिए। वैज्ञानिक प्रयोगो द्वारा भी यह सिद्ध हो चुका है कि शब्द की शक्ति अनन्त है। बार–बार एक नाम को प्रेम व श्रद्धा से जपने से शरीर व मन स्वस्थ होता है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।
2. **श्वास पर ध्यान :–** हमारे शरीर की घटनाओं में सांस लेने व छोड़ने की सामान्य प्रक्रिया पर ध्यान लगाने से आध्यात्मिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है। वास्तव में सांस का सम्बन्ध सीधा हमारे विचारों से है। प्रत्येक विचार के साथ श्वास की स्थिति बदल जाती है। क्रोध की अवस्था में श्वास की गति तीव्र हो जाती है, प्रेम की अवस्था में धीमी हो जाती है। श्वास पर ध्यान लगाने से विचारों पर नियंत्रण सम्भव है।
   श्वास के नासिका पुटो के द्वारा भीतर जाने, नलिका, कण्ठ, श्वास, नली व फेफड़ो तक की प्रक्रिया एवं डायफ्राम व फेफड़ो से नासिका पुट तक श्वास के आने की प्रक्रिया पर ध्यान रखने से श्वासों पर ध्यान लगाना प्रारम्भ हो जाता है। फलस्वरूप अन्तः स्रावी ग्रन्थियां एवं तंत्रिका तंत्र की क्रियाओं पर स्वाभाविक स्वास्थ्य वर्धक नियंत्रण होने लगता है। आध्यात्मिक स्वास्थ की प्राप्ति होती है।
3. **प्राणायाम :–** विभिन्न प्रकार के प्राणायामों का दैनिक अभ्यास प्राण शक्ति को बढ़ाता है। यह प्राण शक्ति हमारे शरीर मन व आत्मा में संतुलन स्थापित करती है (Balance in body mind and soul) प्राणायाम के दौरान विभिन्न मुद्राओं का अभ्यास भी किया जा सकता है। प्राणायाम से केवल शारीरिक ही नहीं मानसिक व आध्यात्मिक स्वास्थ्य भी प्राप्त होता है। जीने के लिए सर्वप्रथम आवश्यक वायु ही है। वायु के बिना कुछ मिनट भी जीवन कल्पना नहीं की जा सकती। प्राणायाम के अभ्यास पूरक रेचक व कुम्भक क्रियाओं का अभ्यास किया जाता है। पूरक में सांस भीतर की जाती है, कुम्भक श्वास को भीतर रोकने की प्रक्रिया कहते है। रेचक में सांस को बाहर छोड़ा जाता है। प्रत्येक प्राणायाम में पूरक, कुम्भक व रेचक का समय अलग–अलग होता है।
   साधारणतः दैनिक रूप से भस्त्रिका, कपाल भांति, अनुलोम विलोम, उज्जयी व भ्रामरी प्राणायामों का अभ्यास किया जाना चाहिए। रोग व रोगी की स्थिति को ध्यान में रखकर ही प्राणायाम का अभ्यास किया जाना चाहिए।
4. **धारणा :–** कार्य में इतना तल्लीन होना कि अन्य विषयों से ध्यान हटकर उस कार्य में आनन्द आने लगे उसे धारणा कहते है। एक अंग्रेजी कहावत है –
   Work while you work and
   Play while you play
   काम के समय काम व खेल के समय खेल में ही ध्यान होना चाहिए। जब बालक कार्य कर रहा हो तो अथवा पढ़ रहा हो तो उस समय खेल अथवा अन्य गतिविधि में ध्यान होना एकाग्रता का अभाव है। ध्यान का मार्ग एकाग्रता से होकर जाता है। ऐसा भी देखने में आता है कि कम समय तक पढ़ने वाला बालक अधिक समय तक पढ़ने वाले विद्यार्थी के अंक अधिक आ जाते है। इसके पीछे साधारण सा यह

नियम है कि एकाग्रचित होकर पढ़ने से अधिक शीघ्र समझ आता है। दैनिक रूप से एकाग्रता का अभ्यास आध्यात्मिक मार्ग की ओर ले जाता है। धारणा के अभ्यास से जीवन में सुख की अनुभूति होने लगती है। प्राकृतिक चिकित्सा उपचार लेते समय पंचमहाभूतों का शरीर से स्पर्श अनुभव एवं शरीर में हुये परिवर्तन को अनुभव करने से धारणा बनती एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य का आनन्द प्राप्त होने लगता है।

5. **तपयोग :–** प्राकृतिक चिकित्सा उपचार को तप एवं त्याग के साथ अपनाकर जीवन के प्रति भौतिक सुख का शमन एवं आध्यात्मिक आनन्द का वर्धन तपयोग का साधक है। इन्द्रियों पर नियंत्रण से मन की गति पर अंकुश लगता है। रसना इन्द्रियों की विशेष रूप से साधना करनी होती है। यह तप एवं त्याग का अभ्यास भौतिक सुखों को आध्यात्मिक आनन्द में बदल देता है।

6. **जप योग :–** गायत्री साधना, प्रणव का उच्चारण महामृत्युंजय एवं अन्य ईष्ट सम्बन्धित मंत्र के जपने से भी आध्यात्मिक स्वास्थ्य का लाभ मिलता है। मंत्र योग की अपनी शक्ति है। इस त्याग एवं तपस्या से पूर्ण प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में जप योग का साधन लाभकारी है।

7. **स्वाध्याय :–** वेद, गीता, उपनिषद, ब्रह्मसूत्र, दर्शन शास्त्र पतंजलि योग सूत्र एवं प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धित पुस्ते ज्ञान योग में लाभकारी है। इस प्रकार की आध्यात्मिक धार्मिक नैसर्गिक पुस्तके ज्ञान योग द्वारा मन को शान्ति प्रदान कर आध्यात्मिक स्वास्थ्य का आनन्द प्रदान करता है।

8. **ईश्वर प्राणिधान :–** समस्त चर–अचर में एक ही शक्ति का वास है जिसे भगवान कहते है। इस मिथ्या स्वप्न जगत में एक ही बात सत्य है कि राम नाम सत्य है। न्यायकारी जीवन दायी एवं समस्त ब्रह्माण्ड का संचालन इस शक्ति से चलता है जो है ही उसे मानने में हानि भी क्या है। बस एक ही हानि मानने के बाद जानने क मात्रा रूक जाती है। मानने के बाद जानने की भी उत्सुक्ता बनी रहनी चाहिए।
वास्तव में प्राकृतिक चिकित्सा ईश्वरीय चिकित्सा है। इसलिए तो भगवान (भ+ग+व+अ+न) शब्द की .... है भ – भूमि, ग – गगन, व – वायु, अ – अग्नि, न – नीर, भगवान अर्थात् भूमि, गगन, वायु, अग्नि नीर ईश्वर विश्वासी एवं सत्य पथगमी को प्राकृतिक चिकित्सा का शीघ्र अति शीघ्र लाभ मिलता है।

9. **चेतनता का विकास :–** अस्तित्व से एक छोटे से छोटे जीव का भी सम्बन्ध होता है। मनुष्य के साथ तो विकसित एवं ब्रह्माण्ड का परोक्ष सम्बन्ध है। जब एक जीव जन्म लेता है तो ब्रह्माण्ड की समस्त चेतना उसमें सहयोगी होती है। इस चेतना के सिद्धान्त को समझने की आवश्यकता है।
उपनिषद में वर्णन है कि जीवात्मा एवं परमात्मा रूपी दो पक्षी शरीर रूपी वृक्ष पर वास करते है। जीवात्मा कर्ता व भोक्ता है, परमात्मा न कर्ता है न भोक्ता। इस परमात्मा तत्व को ज्ञान एवं विवेक शक्ति द्वारा पहचानने का प्रयास विभिन्न साधना पद्धतियों के करते रहना चाहिए। इस ज्ञान कार्य पर एक ऐसी स्थिति आती है कि शरीर व मन के कष्ट मात्र नाटकीय, स्वप्नशील अनुभव होने लगते है। यह परमात्मा की चेतनता आध्यात्मिक स्वास्थ्य प्रदान करने में सहयोगी है।

10. **साक्षी भाव :–** जन्म दूसरो ने दिया, पालन पोषण भी दूसरो ने किया, पढ़ना–लिखना भी दूसरो ने सिखाया। मरने के पश्चात शमशान घाट पर भी दूसरे ही ले जाते है। अपना क्या है ? स्वंय मार्गदर्शक है। यदि हर घटना में यह अनुभव करें कर्म तो शरीर व मन के

खेल है। स्वंय को दर्शक, साक्षी अनुभव करें। दृष्टा भाव आध्यात्मिक स्वास्थ्य की पराकष्टा है। आध्यात्मिक विकास ही वास्तव में उत्तम अर्थ है। स्वास्थ्य जो अपने आप में स्थित हो गया है। जिसने सबको पा लिया है। वही स्वास्थ्य है वही आध्यात्मिक स्वास्थ्य है।

साक्षी एवं दृष्टा भाव में सांसो पर ध्यान सात्विक आहार एवं प्राकृतिक उपचार सहयोगी है।

10.6 सारांश

आपने उपर शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य के विषय में लक्षण—कारण एवं उनके उपचार से सम्बन्धित जानकारी का विस्तार से अध्ययन किया। जो रोग हमारी जीवन शैली दूषित होने के कारण अथवा शरीर में विजातीय द्रव्य एकत्र हो जाने पर आते है उन्हे शारीरिक रोग कहते है। जिनका विस्तार से कारण, लक्षण व उपचार पर अध्ययन किया। दूसरा अपनी सामान्य अवस्था से विचलित हो जाने से रोग आते है, जिनसे मन से सम्बन्धित क्रियायों प्रभावित होने लगे तो अवश्य ही मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ने लगता है। इनके विषय में पूरा अध्ययन भी इस इकाई के माध्यम से किया गया। तीसरा आध्यात्मिक स्वास्थ्य समाज में रहने के लिए उपासना, प्रार्थना अथवा ईश्वर में विशाल एक महत्वपूर्ण तत्व है। अर्थात् अज्ञान, आत्मनिग्रह इत्यादि ऐसे घटक है जैसे बिना सुगन्ध के फूल का सुन्दर दिखाई पड़ना। इसी को विस्तार से उपर वर्णन किया गया है।

10.7 बोधात्मक प्रश्न

1. आध्यात्मिक, मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य से आप क्या समझते है ?
2. मानसिक रोगों का वर्गीकरण करते हुये उसके उपचार पर टिप्पणी कीजिये ।
3. शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त करने में किन मुख्य बिन्दुओं का वर्णन करना आवश्यक है।
4. आध्यात्मिक स्वास्थ्य में शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य किस प्रकार सहायक होते है।

10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. जीवन विज्ञान की रूप रेखा (समा कलन) मुनि धर्मेश
2. हम और हमारा स्वास्थ्य जैन विश्व भारती संस्थान
3. वृहद प्राकृतिक चिकित्सा नेशनल बुक ट्रस्ट इन्डिया
4. प्राकृतिक आयुर्विज्ञान राकेश जिन्दल
5. मानसिक रोग— कारण और निवारण डॉ0 राजीव शर्मा

इकाई 11 निदान की विधियाँ

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 निदान का अर्थ व रोग के कारण
11.4 मल द्वारा निदान
11.5 मूत्र द्वारा निदान
11.6 आंख की पुतली द्वारा निदान
11.7 जीभ द्वारा निदान
11.8 आकृति द्वारा निदान
11.9 आंख द्वारा निदान
11.10 उंगली और नाखुन द्वारा निदान
11.11 थूक द्वारा निदान
11.12 सारांश
11.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.14 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

मानव शरीर 5 मूलभूत तत्वों से निर्मित हुआ है। इन्ही तत्वों के सन्तुलन व असन्तुलन के कारण ही स्वास्थ्य एवं रोग की अवस्थायें बनती है। इन तत्वों की कमी अथवा अधिकता रोग है तथा इनका सन्तुलन बने रहना स्वास्थ्य है, इन्ही पंचमहाभूतों के असन्तुलन से प्रत्येक व्यक्ति का शरीर का आकार व उसका स्वभाव, खानपान की आदतें, फल सब्जी तथा अन्य खाद्य वस्तुओं के स्वाद में विभिन्नता आना स्वाभाविक है अर्थात् पंचमहाभूत के असन्तुलन से ही प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति बन जाती है।

अन्य प्रचलित चिकित्सा प्रणाली में रोग के अनुसार ही विभिन्न रोगों का अस्तित्व बनता है, अर्थात् लक्ष्णों आधार पर ही रोगों का नाम निर्धारित किया जाता है। किसी भी कारण से लक्षण बदल जाने पर रोग भी बदल जाता है।

आयुर्वेद में निदान उसे कहा गया है जिससे व्याधि का निर्देश हो ''निर्दिश्यते व्याधिनेनति निदानः'' । वैसे तो हर चिकित पद्धति की अपनी–अपनी अलग निदान पद्धति है। लेकिन लुईकूने ने चिकित्सा की तरह ही निदान के विषय में भी अपनी एक विशेष पद्धति का वर्णन किया है जो चिकित्सा की तरह ही बहुत ही सरल है। आपको यह जानकर बहुत आश्चर्य होगा कि कूने द्वारा प्रतिपादित निदान पद्धति एवं रोग के कारणों की व्याख्या बहुत कुछ आयुर्वेद से मिलती है। कूने ने मिथ्याहार–विहार को दोष संचय का मुख्य घटक माना है। आयुर्वेद भी कहता है ''सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलः । तत्प्रको यस्यतु तु प्रोक्तं विविधा हितसेवनं'' अर्थात् सभी रोगों का कारण कुपित मल दोष है। और उनके प्रकोप का कारण अनक प्रकार के अहितकारी आहार विहार का सेवन है। (चरक) कूने के अनुसार दोष संचय का उभाड़ आने अथवा बढ़ने तक वह शरीर में सुप्त

पड़ा रहता है। मौसम के परिवर्तन से शारीरिक व मानसिक प्रभाव में परिवर्तित होकर रोग का स्वरूप धारण करता है।

आयुर्वेद में भी दोष संचय की 6 अवस्थाएं बतायी गई है। ''संचय च प्रकोपं च प्रसरं स्थान संश्रयम् । व्यक्ति भेदम् च योवेति दोषाणां स भवेदमिषक्'' (सुश्रुत) 1– संचय 2– प्रकोप 3– प्रसर 4– स्थान संश्रय 5– व्यक्ति 6– भेद ।

उपरोक्त भी विजातीय द्रव्यों के विभिन्न स्वरूपों को ही दर्शाता है। आइए अब हम निदान के अर्थ व रोग के कारणों का अध्ययन करें :–

11.2 उद्देश्य

दैनिक जीवन में रोग आने की पूर्व पहचान करना । मंहगे जांच के तरीकों से बचाव । समय रहते अर्थात् रोग की पहली अवस्था में ही उपचार करा लेना जिससे भंयकर (जीर्ण रोग) रोग के आने से बचाव हो जाता है । स्वास्थ्य के विषय में सामान्य ज्ञान वर्धन ।

11.3 निदान का अर्थ व रोग के कारण

प्राकृतिक चिकित्सा को छोड़कर अन्य सभी चिकित्सा प्रणालियों में रोगों का अस्तित्व माना जाता है। विभिन्न चिकित्सा प्रणालियों में हर रोग के कुछ विशेष लक्षण देखने को मिलते है। इन्ही लक्षणों के आधार पर विभिन्न रोगों के नाम दिये जाते है। आकस्मिक रोग के लक्षण परिवर्तित होने पर रोग का नाम भी बदल जाता है। किन्तु प्राकृतिक स्वास्थ अथवा प्राकृतिक चिकित्सा शास्त्र के अनुसार रोगों का नाम दिया जाना ना ही महत्वपूर्ण है। और ना निदान है। क्योंकि लक्षण मात्र से रोग के मूल कारण का जानना असंभव है। इस प्रकार हम कह सकते है कि रोग का उपचार बिना मूल कारण के करना प्रायः असंभव ही है। आज की निदान परीक्षणों की विधियां जैसे एण्डों, स्कापी, एक्स–रे, रेक्ट्रास्कापी एम0आर0आई0 द्वारा निदान किये जाने पर सही कारण की जानकारी मिलने के अभाव में शरीर पर पड़ने वाले विभिन्न तरंगों के प्रभाव को शरीर पर अन्य बिमारियों का बीजारोपण होता है। प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में इस प्रकार का कोई भी निदान करने की आवश्यकता नहीं होती अपितु रोगी की खान–पान रहन–सहन आदतें तथा रोगी की शारीरिक प्राण शक्ति एवं अवस्था के विषय में व्यक्तिगत रूप से जानना आवश्यक होता है। रोगी की जीवन शैली, दिनचर्या इत्यादि से उसके स्वास्थ स्तर की जांच करना ही वास्तविक निदान है। इस तरह से रोगी को स्वंय को भी जानकारी प्राप्त होती है कि वे स्वंय के स्वास्थ को पुनः कैसे प्राप्त किया जा सकता है। दोषपूर्ण एवं अप्राकृतिक जीवनचर्या ही रोग को मुख्य कारण है। यह चिकित्सा प्रणाली निदान के साथ–साथ शिक्षित करने का भी कार्य करती है।

विजातीय द्रव्य का शरीर में एकत्र होना ही सभी रोगों का मौलिक कारण होता है। लक्षण चाहें कितने ही भयंकर क्यों ना हो। रोग का मुख्य कारण विजातीय द्रव्य एकत्र होना निश्चित है। इसी विजातीय पदार्थ को बाहर निकाल फेंकने के लिए जब शरीर प्रयास करता है तो तीव्र रोग उत्पन्न होने शुरू होते है। जैसे जुकाम, बुखार, खासी, दस्त, उल्टी के रूप में सामने आते है। जिनका सीधा सम्बन्ध विजातीय द्रव्य से विजातीय द्रव्य के एकत्र होने में निम्न कारण पाये जाते है।

1. **भय, तनाव, गुस्सा एवं चिन्ता :–** इन सब परिस्थितियों ने किसी भी मानव का Metabalsm प्रभावित हो जाने से शरीर की सभी कार्य प्रणाली अव्यवस्थित हो जाती है जिसके कारण शरीर की ग्रन्थियां कम या ज्यादा काम करना शुरू कर देती है, इस प्रकार

शरीर से विषाक्त पदार्थ निकालने की प्रक्रिया या तो बिल्कुल काम नहीं करती या बहुत कम काम करती हैं।

2. **लम्बे समय तक बैठे रहना :–** एक ही स्थान पर बैठे रहना अथवा श्रम के अभाव में बहुत सारी विषयताएं जैसे– अग्नाशय का काम करना, पाचन तन्त्र की गड़बड़ी इत्यादि के कारण विजातीय द्रव्य शरीर में बढ़ जाते है।

3. **संतुलित भोजन न करना :–** आहार में रेशेदार पदार्थो की कमी के कारण कब्ज, गैस, जैसी जैसे रोग पैदा हो जाते है, जिससे दूषित पदार्थ शरीर में एकत्र हो जाते है।

4. **बेमेल भोजन :–** दूध के साथ अचार का सेवन, दूध के साथ मछली का सेवन, दूध के साथ मूली, प्याज का सेवन इत्यादि शरीर में दूषित पदार्थ उत्पन्न करते है।

5. **प्रदूषण :–** वायु प्रदूषण एवं ध्वनि प्रदूषण से फेफड़े एवं गले के रोग, दमा इत्यादि हो जाते है।

6. **मिर्च मसालों के गरिष्ठ भोजन का सेवन :–** इस तरह का तामसिक भोजन ग्रहण करने से दूषित पदार्थो का एकत्र होना तथा उनसे विभिन्न लक्षणों का पैदा होना स्वाभाविक है।

7. **नशीले पदार्थो का सेवन :–** वर्तमान में तनाव से बचने के लिए युवक नशीले पदार्थो का सेवन करने के अभ्यस्थ होते जा रहे है जैसे :– शराब, धुम्रपान, अफीम, चरस आदि का सेवन उनके भविष्य को अन्धकार में धकेल रहा है। इस प्रकार के नशीले पदार्थो का सेवन करने से शरीर की ग्रन्थियां सुचारू रूप से कार्य नहीं कर पाती है।

8. **शरीर के विभिन्न वेगों को रोकना :–** मल–मूत्र, वमन, दस्त, क्षींक, डकार, उबकाई, भूख–प्यास, नीद्र, आंसू, अपान वायु को रोंकने से शरीर में विषाक्तता उत्पन्न होती है।

9. **आवश्यक विश्राम न करना :–** देर रात तक जागते रहना अथवा नींद पूरी न लेने से शरीर के विभिन्न अंगो की कार्य क्षमता प्रभावित होती है। जिससे शरीर का सन्तुलन बिगड़ जाता है।

10. **नकारात्मक सोच का होना :–** जीवन में नकारात्मक सोच को प्राथमिकता देना जिसके कारण मानसिक विकार उत्पन्न होने लगते है।

11. **क्षारीय एवं अम्लीय भोजन की अनुपात का असन्तुलन :–** क्षारीय एवं अम्लीय भोजन में असन्तुलन होने पर रक्त में भी उसका सन्तुलन बिगाड़ देता है जिसके कारण शरीर का रूधिर और अन्य तन्तु जिनसे क्षारतत्व खींच लिया जाता है। निःसत्व, निर्बल और रोगी हो जाते है।

12. **शरीर में पंचतत्वों का असन्तुलन :–** जब शरीर में मिट्टी, धूप, हवा, जल, आकाश पंचतत्वों में असन्तुलन हो जाता है तो हम रोगी हो जाते है।

13. **तीव्र रोगों को दवाओं से दबा देना :–** अत्यधिक दवाओं का प्रयोग शरीर को विजातीय द्रव का घर बना देता है जिससे हमारे रोगो से लड़ने की शक्ति कमजोर होने लगती है।

14. **शारीरिक क्षमता से अधिक श्रम करना :–** जो लोग अपनी क्षमता से अधिक कार्य करते है। वह भी अपनी जीवनी शक्ति का ह्रास करते है। कार्य के साथ–साथ भरपूर विश्राम की भी आवश्यकता होती है। जो हमे पुनः ऊर्जावान बनाती है। अत्यधिक कार्य करके शरीर कमजोर और विभिन्न प्रकार के रोगो से ग्रस्त होने लगता है।

11.4 मल

पेट सम्बन्धी रोगों के निदान के लिए विशेष रूप से मल परीक्षण ही महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान कर सकता है। दस्त–पेचिस जैसे जान लेवा रोगों के निदान हेतु अथवा कारण जानने व समझने के लिए हमें विशेषकर मल का ही परीक्षण करना अनिवार्य हो जाता है। मल निरीक्षण द्वारा ही महत्वपूर्ण परिणाम प्राप्त किये जा सकते है। रक्त अभाव, पेट के कीड़े और पेट दर्द का पता लगाने, आंतो से रक्त स्राव का पता लगाने, पेट के संक्रामक रोगों का पता लगाने के लिए मल परीक्षण एक प्रभावशाली तरीका सिद्ध हुआ है। मल परीक्षण हेतु एक चौड़े मुंह की बोतल लेकर उसमें मल डालकर तुरन्त ही टैस्ट कराना चाहिए अन्यथा उसमें उपस्थित कीड़े तथा बैक्टीरिया नष्ट हो सकते है।

एक विशेष बात यह है कि आज हृदय से सम्बन्धित आपातकालीन रोगियों की संख्या में 65 प्रतिशत लोगों की ई0सी0जी0 में खराबी पाई जाती है। बाद में जब हृदय से सम्बन्धित अन्य गहन जांच करने पर उन रोगियों में किसी प्रकार के हृदय से सम्बन्धित रोग के लक्षण नहीं पाये जाते। अर्थात् 65 प्रतिशत की ई0सी0जी0 खराब आने में मुख्य भूमिका मल द्वारा सड़न से उत्पन्न गैसे ही होती है। आपको बायो गैस पैदा करने की विधि की जानकारी तो अवश्य होगी। उसमें एक कुऐं में गोबर तथा पानी मिक्स डालते रहते है और उसको ढक्कन से बन्द कर दिया जाता है। आप देखते है कि कुछ दिन बाद ही उसमें से जो गैस पैदा होकर बाहर आती है। वह चूल्हा, बल्ब तक जला सकती है। ऐसे ही हम दो तीन दिन तक खाते व उपर से पानी पीते रहते है। तो यही गैस हमारे सभी ग्रन्थियों तथा शरीर की कार्यप्रणाली को अपने दाब से प्रभावित करती है। इसलिए कब्ज पूरे शरीर को रोगी बना सकती है। इसे दूर करने अथवा अन्य शरीर के रोगो में निदान करते समय मुख्य भूमिका मल के गांठदार, पतला या सूखा होना अथवा जाम हो जाना एक मुख्य कारण हो सकता है। निदान प्रक्रिया में परिणाम जानने के लिए। इसलिए कहा गया है कि सिर ठण्डा, पेट नरम व पैर गरम हो तो स्वस्थ रहने में सहायक होता है।

11.5 मूत्र परीक्षण

मूत्र परीक्षण भी रोग निदान में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मूत्र परीक्षण से कुछ मुख्य ग्रन्थियों के कार्य क्षमता के विषय में विशेष तथ्य सामने आते है। गुर्दे–मूत्र नसिका रोगों का निदान किया जाता है। सवंमित रोगो का पता अर्थात् निदान भी मूत्र द्वारा ही लगाया जा सकता है। संक्रामक रोगों के रोगाणु उसमें सम्मिलित पाए जाते है। महिलाओं में गर्म धारण करने का निश्चय भी करते समय मूत्र परीक्षण सर्वप्रथम किया जाता है। इस परीक्षण से 95 प्रतिशत से लेकर 98 प्रतिशत यह पता चल जाता है कि उक्त महिला गर्भवती है कि नहीं। इस परीक्षण में एक हारमोन की जांच की जाती है। शरीर में वसा के पाचन से सम्बन्धित गड़बड़ी के विषय में भी परीक्षण मूत्र द्वारा ही किया जाता है। मूत्र द्वारा ही प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार शरीर में आने वाले विजातीय द्रव्य को गुर्दे की सहायता से बाहर निकालना सम्भव हो पाता है। इसी प्रक्रिया से रक्त में से ये तत्व गुर्दा बाहर करके रक्त शुद्ध करता है।

11.6 आंख की पुतली द्वारा निदान

निदान प्रक्रिया में आंखो की पुतली द्वारा निदान बहुत ही प्रचलित रूचिकर एवं महत्वपूर्ण बन गया है क्योकि प्राकृतिक चिकित्सा के आधार भूत सिद्धान्तों की पुष्टि इसके द्वारा होती है। इसी पुष्टि के आधार पर तथ्य रोगी एवं उनके सम्बन्धियों के सामने आ जाने से उनके मस्तिष्क पर विश्वास से भरा हुआ प्रभाव पड़ता है। इसी से प्राकृतिक चिकित्सा का विश्वास

भी बढ़ जाता है। जब रोगी किसी पद्धति में पूर्ण विश्वास करने पर अपना उपचार लेता है तो उसके मस्तिष्क में सकारात्मक भाव उत्पन्न होते है तथा यही सकारात्मक भाव रोग उपचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

पुतली द्वारा किया गया निदान उपचार में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आंखों की पुतलियां तीव्र और जीर्ण रोगों की पहचान कराने तथा उनके कारणों को समझने में सहायक सिद्ध हुई है। क्योकि कारणों को सही रूप से पता लगाना बहुत ही कठिन है। पुतलियों द्वारा शरीर में निहित जीवनी शक्ति वंशानुगत रोग, शरीर की चुस्ती, शरीर में जमा दूषित पदार्थ एवं उनके जमा होने की जगह तथा औषधि सेवन से पैदा हुये विभिन्न प्रकार के विष के प्रभाव को दर्शाता है। इसके द्वारा जितनी अधिक जानकारी प्राप्त होती है उतनी दूसरों की विधि से ज्ञात नहीं हो पाती। सामान्यतः पुतलियों का रंग हल्का नीला अथवा हल्का भूरे रंग का पाया जाता है। इन रोगों का गहरापन ही बताता है कि शरीर में विजातीय द्रव्य जमा होकर हमारी जीवनी शक्ति को प्रभावित कर रहा है।

पुतलियों में काले या सफेद धब्बे होना भी रोग सूचक स्थिति को दर्शाता है। इससे शरीर के विभिन्न जोड़ो में विकृतियों का ज्ञान कराता है।

11.7 जीभ द्वारा निदान

रोगी की जीभ देखकर बहुत से रोगो का पता लगाया जा सकता है। जीभ को देखकर दसकी विभिन्न अवस्थाओ की जानकारी कर उस पर जमे मैल और बनावट का जानकर रोग के विषय में महत्वपूण जानकारी प्रदान की जा सकती है। जीभ के रंग के विषय में कोई निर्णय लेने से पहले यह जानकारी जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक है कि रोगी कीह सिगरे, मादक द्रव औश्र शराब वर्गेरह तो नही लेता है इसके जीभ के रेग औश्र प्रभाव पडता हैक रो के विषय में नित्नानुसार जानकारी की जा सकती हे।

जीभ पर सफेद –सफेद जमना – अपच, ज्वर पेट की खराबी यकृत तथा आंतो की बीमारी
जीभ का रूख सुख होना – पीनी की कमी, ज्वर ।
जीभ पर लाली तथा चारो ओर दाने (छाले) – पाचन, विकार, कब्ज, आदि
जीभ का भूरा व काला पन होना – टाइफाइड
जीभ का ज्यादा लाल होना– बहुमूण होना
जीभ की जड में सफेदी – दातो की खराबी
जीभ पर नीलापन– हृदय रोग
जीभ की लाली में कमी – खून की कमी
जीभ का लंबा होना – मस्तिक रोग
जीभ बढना तथा दांतो के निशान होना– यकृत विकार
जीभ का तीखा व नुकीला होना – दिमागी उत्वेजना
जीभ का रंग सीसे जैसा होना – हैजा, फेफडे के रोग तथा की सडन के कारण
जीभ का एक ओर धूम जाना – पक्षाधात के कारण
जीभ पर घाव होना – रक्त विकार के कारण
जीभ पर काली तह जमना – चेचके रोग मृत्यु सुचक सडक यकृत रोग के कारण तथा मृत्यु की सुचना
जीभ का रंग सीसे जैसा होना तथा जीभ पर छाले पड जाना– मृत्यु की सूचना

जीभ पर जख्म व जगह जगह कटी हुई होना – रोगी के बिगड जाने के कारण
खून की कमी के कारण यदि शीघ्र उपचार नही किया जाये तो मृत्यं तय होना
जीभ बोंलते समय लडखडाये या सुन्न होना – शारीरिक कमजोरी
जिस भाग पर उपरोक्त बताये अनुसार रंग व मेल जमता है तो वह अंग विकार युक्त होता है। तथा उस अंग के उपचार की आवश्यकता होती है। जीभ का अंग्र भाग व अंगो की स्थिति कहा जाता है। कि जीभ हृदय का दर्पण है और प्ली से भी सम्बन्ध है इस प्राकर हृदय व प्लीहा की जानकारी प्लीहा कं मेरिदीधन इससे होकर निकलते है। इसे देखकरी चिग देखकर सम्बन्धित भाग की जानकारी प्राप्त करने के बाद अंग विशेष के विषय में निर्णय लिया जा सकता है। यह केलव अनुभव से ही जाना जा सकता हे। विभिन्न रोगियो की जीभ देखकर सम्बन्धित रोग के विषय में जानकारी प्राप्त कर लेने से उवचार भी दिया जा सकता है।

11.8 आकृति द्वारा निदान –

मनुष्य का शरीर भोतिक तत्वो से बना है हर व्यक्ति दसरे व्यक्ति से भिन्न होता है उनके रहने, खाने पीने का तरीका अलग अलग होता है मनुष्य शरीर में प्रकृति के अनुसार विभिन्न रोग होते है रोग होने के पश्चात निदान के लिए उसके उभरे लक्षणो पर अध्ययन कर रोग के पश्चषात निदान के लिए उसके उभरे लक्षणो पर अध्ययन कर रोग के कारण को जाना जाता है जिससे सही चिकित्सा देकर उसे पुनः स्वस्थ किया जा सके आकृति निदान भी निदान का ही एक विज्ञान है जिसके अन्तर्गत शरीर के विभिन्न अंगो में आए बदलाओ का अध्ययन कर शरीर में रोगो के कारण का पता लगाया जा सकता है। आकृति निदाान को ही मुखाकृति निदान पद्यति भी कहा जाता है मुखाकृति विज्ञान शरीर के सारे अवनवो से संबंध रखता है। पर मुख पर सबसे पहले प्रभाव दिखाई देते है जैसी रोग रोगी की आंखो को रंग पीला या लाल है आंखो के नीचे काले घेरे, उसके चेहरे पर मुंहासे, उसके समुने शरीर का रंग आदि देखकर व उसकी बीमारी का अंदाजा लगाया जा चकता हैमुखाकृ विज्ञान में शारीर के विभिन्न अंगो की बनावट परिचालन, एवं गति `मं सब साबधानी से देखकर रोग का सही सही निदान करना होता है इसमे शरीर की घाहरी आकृति को देखकर शरीर की आवंरिक दशा का ज्ञान प्राप्त किया जाता है शरीर के लक्षणो को ग्रहण कर वर्तमान मे ंहो रहे रोग का पता लगाना तथा भविष्य में क्या हो सकता है तथा उस रोग को अच्छा होने की क्या सम्भावना है ये सभी बाते मालूम की जा सकती है आकृति निदान बहुत ही विस्तृत विज्ञान है। जिसमें रोग अवस्था में उत्पन्न छोटे छोटे लक्षणो का जाच परखकर ठीक ढंग से अध्ययन कर रोग के कारणे को जलानकर उसे पूरा किया जा सकता है जैसे रोग का पाचन तंत्र किस प्राकर कार्य कर रहा है। उसे खाना खाने के बाद भारीपन या जलन खटटी डकार आदि की शिकायत तो नही रहती उसे भूख लगती है या नही तेज मशालेदार चीजे खाने की इच्छा आदि का पता लगाना क्याकि यह अप्राकृतिक है और रोग का कारण भी उसकी प्यास का पता लगाना वह दिन में कितना पानी पीता है। प्यास लगने पर केवल पानी ही पीकर प्यास बुझााता है या नही पेशाब कैसा है सफेद है, पीला है या गंदा पीला है , पेशाब करने में कोई कष्ट तो नही है सधारणता : इसका रंग हल्का, पीला, बादामी होना चाहिए ।

मल कैसा होता है बहुत ही महत्वपूर्ण है मल सख्त हो या पतला है, बदबूदार जो नही है उसका रंग कैसा है मल के साथा आंव तो नही जाती रहती है इसी प्राकर त्वचा

को उखाडकर भी काफी कुछ मालूम किया जा सकता है त्वचा सूखी होना या नर्म रोग के विषय में पता लगाया जाता है अनुभाव की आवश्यकता देखने व परीक्षण से यह दक्षता हासिल की जा सकती है।

चेहरे को ध्यान से देखने के पश्चात रोग के विषय में निम्न निर्णय पर पहुचा जा सकता है जो कि निरंतर प्रयास व अनुभव से ही सम्भव हो सकता है

चेहरे पर कोमलता, पलके झपकी हुई और आंखे भीतर की धसी हुई – क्षय तपेदिक रोग
चेहरे की कुदरती हीनता – छाजी के रोग ओर जोडों का दर्द
चेहरे पर झेंप तथा शर्मिलापन– शक्ति हिनता
चेहरे पर थकान – ज्वर व कब्ज
चेहरे व पलको पर सुजन – वृक्क शोथ
चेहरे पर पीलापन – पीलिया, पाडुरोग (रक्त की कमी)
चेहरे की लाली में कमी – खून की कमी
चेहरे पर लाली तथा धब्बे – खसरा
चेहरे पर घबराहट – न्योमोनिया
गर्भवत्ती के चेहरे का बैठ जाना – गर्भ स्त्राव अवस्था
चेहरे का बैठ जाना – किसी भयंकर रोग की सुचना

व मुलायम है ?स्पर्श करने पर हल्की गरम, कोमल व लचीली होना चाहिए श्रम अधिक करने पर शारीर का थकान की सूचना देना दीन का ठीक व गाढा होना 6 से 8 घंटे की निछा लेना जागने पर स्फर्ति व प्रसन्नता का अुनभव करना गर्दन का आकार कैसा है, पेट से चौडी है या नही पेट बाहर तो नही है। घुटनो की आकृति चलने का तरीका आदि कैसा है इन्ही लक्षण्णे द्वारा मनुष्य के रोगो का निदान किया जा सकता है चीनी चिकित्सा पद्यति के अनुसार नीचे लिखे 5 रंगो का शरीर के अंगो का प्रतिनिधि माना है। ,

जैसे कि–काला रंग, गुर्दे, मूत्राशय, आन्तरिक ग्रन्थियं, विशेषकर सम्बन्धी असन्तुलन को प्रदर्शित करता है

लाल रंग– हृदय, मस्तिष्क और रक्त वाटिनी नहिलयों को प्रदर्शित करता है।
सफेद रंग– फेफडे, त्वचा और श्वास प्रणाली को प्रदर्शित करता है।
पीला रंग – प्लीहा, अग्नाशय, पेट और लिम्फेटिक प्रणाली को प्रदर्शित करता है।
हरा रंग – यकृत और नाडी संस्थान को प्रदर्शित करता है। उपरोक्त रंगो के अनुसार अंग विशेष में रोग के विषय मे पता लगाया जाता है इसमे अनभव की आवश्यकता है धीरे धीरे विभिन्न प्राकर के रोगियो को प्रतिदिना ददेखने व यह दक्षता हाकसल की जा सकती है ।

चेहरे को ध्यान से देखने के पश्चात रोग के विषय में निम्न निर्णय पर पहुचा जा सकता है जो कि निरंतर प्रयास व अनुभव से ही सम्भव हो सकता है।

चेहरे पर कोमलता, पलके झपकी हुई और आंखे भीतर की धसी हुई – क्षय तपेदिक रोग
चेहरे की कुदरती हीनता – छाजी के रोग ओर जोडों का दर्द
चेहरे पर झेंप तथा शर्मिलापन– शक्ति हिनता
चेहरे पर थकान – ज्वर व कब्ज
चेहरे व पलको पर सुजन – वृक्के शोथ
चेहरे पर पीलापन – पीलिया, पाठडुरोग (रक्त की कमी)
चेहरे की लाली में कमी – खून की कमी
चेहरे पर लाली तथा धब्बे – खसरा

चेहरे पर घबराहट – न्योमोनिया
गर्भवत्ती के चेहरे का बैठ जाना – गर्भ स्त्राव अवस्था
चेहरे का बैठ जाना – किसी भयंकर रोग की सुचना
होठो का लीना पड जाना – हैजा यकृत रोग, ज्ञानेन्द्रीय के रोग
मुह से बार बार सांस लेना – टांसिल बढ जाने के कारण श्वांस नील में अवरोध होने के कारण
कानो को बार बार खुजलाना– कर्ण रोग की चेतावनी
आंखो को बार बार खुजलाना– हृदय व यकृत के रोग हडिडयो, आंखे, बालो, अंगुलियो तथा नाखूनो और श्लेषमा की दशा उपराक्त विषय में उपचार इस प्राकर विश्लेषण करे।

11.9 आँख द्वारा निदान –

आंखे–आंखो का बाघ्य रूप पूर्ण परीक्षण करने पर नीचे लिखे अनुसार रोगी की जानकारी प्राप्त करे।
आंखो के अन्दर धंसा होना – श्वेत प्रदर चमेय दंर्बलाता, स्वप्न दोष शरीर में पानी की कमी करने वाले रोग और रक्त स्त्राव आदि ।
आंखो की सूजन व पलकों की सुजन– यकृत गुर्दे व हृदय रोगो के कारण।
आंखो का लाल होना – नजला, जुकाम उच्च रक्त चाप मस्तिष्क विकार, पागलपन व तेज बुखार के लक्षण कारण ।
आंखो में रूखापन होना – यकृत व गूर्दो के रोग वंशानुगत रोग होने के कारण।
आंखो के आगे अंधेरा छाना – बेहोषी, सिरदर्द, खून की ज्यदा कमी दृहय की अत्यधिक धडकन, चक्कर आना।
आंखो की झिल्ली सफेद होना – खून की कमी के कारण ।
आंखो की पुतलियो का सिकुडना – अफीम सेवन के कारण
आंखो की पुतलियो का फैलना – मोतियाबिक, मिर्गी सांप के काटले के कारण
एक आंख का उभरा हुआ लगना– सिर में रसौली के कारण
आंखो के चारो ओर नीला अथवा काल गोलाकार घेरा पड जाना – पेट के रोग के कारण
आंखो में दर्द होना या जलन होना – हृदय रोग के कारण
आंखो में धुंधला दिखायी देना – खून की खराबी के कारण
आंखो से एक वस्तु का दो दिखना– यकृत व गुर्दो में विकार के कारण तथा मधुेह में अत्यधिक शुगर स्तर बडे से
यदि छोटा बच्चा आंख थोडी खुली रखकर सोता है– जो यह यकृत में खून कम आने का संकेत है प्लीहा इतना खून न बना पाता जिता यकृत को चाहिए।
यदि व्यस्त या बृद्व व्यक्ति खुली आंखे रखकर सोता है।– सही काम करना नही .... है जिसमे र्प्याप्त खून यकृत को नही पहंच पाता है यह स्थिति अत्यन्त दयनीय होती है इसका तरन्त उपचार लेना आवष्यक है
बल – बालो को देखकर साधारणतया प्राथमिक परीक्षण इस प्रकार करना चाहिये
1.' बाल शुष्क व रूखे होने पर – गुर्दो का रोग
2. बाल सफेद होने पर – नजला, जुकाम, दमा, ष्वांस रोग ।
3. बाल झडने पर – पिट्च्यूटरी का काम कम करना हृदय रोग सिर में रक्त संसास कमी आदि ।

11.10 अंगुली और नाखुन द्वारा निदान –

अंगुलियो को देखने पर निम्नलिखित रोगो के बारे में जानकारी मिलती है

1. अंगुलियो को जोडो को दबाने से दर्द हो तो संधिवात इस रोग से अंगुलियो के जोडो पर सुजन भी आ जाती है ।
2. अंगुलियो को जोडो में विकृति अथवा हाथो व पांवो की अंगुलियो में टेडापन हो जाने पर गठिया ।
3. अंगुलियो में यदि लाली कम दिखाई दे तो खून की कमी । नाखमनी को यकृत द्वारा नियंत्रित कियाा जाता है। स्वस्थ व्यक्ति के नाखून लाल (पिंक) होने चाहिए । इनकी चहचाान हम इस प्राकर करेंगे। बडे नाखूनो वालो के पांव के उपर के हिस्से मे जैसे फेफडे हृदय और मस्तिष्त के रोग होते है।
4. छोटे नाखून वालो के आंत के रोग व खून के रोग तथा पैर व कमर के निचले हस्सि में दर्द आदि रोग होते है।
5. पतले नाखूनो वालो के शारीरिक दुर्बलवता सुस्ती हृदय रोग तथा की सम्भावना बनी रहती है।
6. पतहे परन्तु मोटे नाखुन – श्रीड में खराबी ।
7. पतले व पीले या नीले नाखून नीचे की ओर अंगली में धंसा हुआा हो तो गले के रोग, दमा तथा फफडो के रोग दर्शते है।
8. छोटे नाखून नुकीले हो तथा अधिक चपटे हो तो पक्षाद्यात, नकवा की सम्भावना को दर्शात है
9. कठोर कांच की तरह टुटने वाले नाखून व खुरदरे स्नायु रोगो की ओर इंगिल करतेंहै।
10. नाखून अबर बहुत छोटे हो तो – रीड की हडडी कमजोर होंती है
11. नाखून ओगे झुके हुए याटुट रहे हो अथवा झुर झुर हो तो कैल्शियम की कमी दर्शाते है।

    पीले या पीले धब्बे वाले आसानी से टूटने वाले पीलिया कामला पाण्डु रोग तथा नपुसंकता का होना बतायेगें। यदि नाखून एक और कम तथा दूसरी और ज्यादा चौड़ा हो तो – संधिवात की ओर इषारा करता है।

11.11 थूक द्वारा निदान –

साधारण तथा थूक (श्लेषमा) पतला ही होता है और इसका रंग सफेदी लिये होता है। इसमें कोई गंध या रंग नहीं होता परन्तु रोग की दषा में इसमें निम्न प्रकार परिवर्तन आ जाता है।

यदि थूक पतला नम हो तो – शरीर में पानी की अधिकता तथा सर्दी के रोग होने के की सम्भावना होती है।

थूक बदबूदार व पीपयुक्त होने से – फेफड़ों की सूजन व फेफड़ों का फोड़ा

थूक चिपचिपा, लेसदार, कफयुक्त – प्रोकाइटस

थूक झागदार व लालिमा लिये – दांत विकार

थूक के साथ रक्त की मिलावट होने पर – टी0 वी0

थूक का रंग मटमेला अथवा नारंगी – श्लेषमिक सन्निवात।

थूक का रंग हरेपन में होने पर – पीलिया

थूक अपेक्षाकृत अधिक गाढ़ा होने पर – पेट, प्लीटा, गुर्दों की कमजोरी
थूक ज्यादा गाढ़ा चिकना भीगा या सूखा – अपच प्लीटा का सही काम नहीं करना आदि।

11.12 सारांश :–

उपरोक्त अध्ययन के पश्चात आपने निदान के विषय में विभिन्न विधियों द्वारा कैसे हम रोग आने से पहले उसकी पहचान कर पाते है। इसका ज्ञान होना एक बहुत बड़ी उपलब्धी होगी, क्योंकि आरम्भिक रोगावस्था में रोग का पता चलने पर उसका उपचार सम्भव होता है। हम ज्ञान के अभाव में समय रहते उपचार केन्द्र नहीं जा पाते जिससे रोग भयंकर स्थिति में आ पहुंचते है।

नोट :– उपरोक्त निदान विधियां रोग आने से शरीर में कुछ लक्षण व स्वभाव परिवर्तन अथवा आकृति परिवर्तन अर्थात् शरीर की व हड्डी की बनावट में बदलाव आदि की पूर्व सूचना है। इसको देखकर किसी भी भयंकर स्थिति को मान लेना अथवा उससे तनाव में आने की आवश्यकता नहीं होती है। ऐसे लक्षण व परिवर्तन को आवश्यकता पड़ने पर आधुनिक जांच करवा सकते है, एवं कुशल उपचारक या चिकित्सालय से सम्पर्क कर मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते है।

11.13 सन्दर्भ ग्रंथ

1. प्राकृतिक आयुर्विज्ञान
2. वृहद प्राकृतिक चिकित्सा ओ0पी0 सक्सेना
3. प्राकृतिक चिकित्सा दर्शन एवं व्यवहार
4. आकृति द्वारा रोगी की पहचान लुई कूने

11.14 निबंधात्मक प्रश्न

1– मल द्वारा तथा मूत्र द्वारा निदान पर संक्षिप्त विवरण दीजिए ।
2– जीभ द्वारा निदान की विस्तृत जानकारी का वर्णन कीजिए ।
3– पुतली व अंगुली द्वारा निदान प्रक्रिया समझाइए ।
4– प्राकृतिक चिकित्सा में निदान की आवश्यकता अथवा महत्व का विवरण दें ।

इकाई –12 प्राकृतिक चिकित्सा में तीव्र व जटिल रोगों की अवधारणा

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 तीव्र रोगों की अवधारणा
12.4 जटिल रोगों की अवधारणा
12.5 सारांश
12.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.7 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

मानव का शरीर एक विचित्र यन्त्र है। परमात्मा का अंश ही जीवन शक्ति के रूप में इस शरीर में स्थिति होकर इसे उसकी क्रियायें विचार और इच्छाओं का बाहरी रूप है। इसमें सभी काम संचालित है। अर्थात् शरीर ही सब काम स्वंयम् करता है। यदि कोई शरीर का पुर्जा खराब भी हो जाये तो शरीर के अन्दर ही दूसरे ऐसे पुर्जे अर्थात् ऐसी सुव्यवस्था है।

जो शरीर की किसी भी गड़बड़ी को ठीक करने हेतु सक्षम है। शरीर के अन्दर कुछ भी ग्रहण करना हो तो उसके केवल दो ही रास्ते है एक मुंह के द्वारा एक नाक के द्वारा। परन्तु शरीर के अन्दर से दूषित पदार्थ अथवा विजातीय द्रव्य बाहर निकालने के लिए चार रास्ते है पहला फैफड़े जो श्वास के द्वारा कार्बन डाइ आक्साइड तथा बलगम के रूप में शरीर से बाहर निकलता है दूसरा रास्ता आंतो द्वारा मल के रूप में गुदा द्वार से बाहर निकालता है तीसरा गुर्दे के माध्यम से पेशाब द्वारा दूषित पदार्थ बाहर निकलते है और अन्तिम शरीर के रोम छिद्रो द्वारा पसीने के रूप में बाहर निकलता है। किसी भी कारण से यदि एक भी रास्ता बन्द हो जाये अथवा ठीक से काम न करें तो शरीर में रोगो का जन्म होता है। शरीर की आन्तरिक प्रतिरोधक क्षमता के रूप में विद्यमान शक्ति शरीर में एकत्र हुये विजातीय द्रव्य को बाहर करने हेतु प्रयास करती है तब उस प्रयास के लक्षणों को तीव्र रोग के रूप में जाना जाता है। उदाहरण के लिए जुकाम, बुखार, सिर दर्द, उल्टी, पेट दर्द इत्यादि सभी तीव्र रोग शरीर से गन्दगी बाहर निकालने के लिए आते है। जब शरीर से गन्दगी निकालने वाले सभी रास्ते लम्बी अवधि तक बन्द रहने के कारण अथवा तीव्र रोग बार–बार होने से हमारे शरीर में जटिल रोगों की समस्या पैदा होना प्रारम्भ हो जाती है। जो जटिल रोगों की समस्या पैदा होना प्रारम्भ हो जाती है। जो जटिल रोगों के नाम से ही जानी जाती है। उदाहरण के लिए जोड़े के दर्द, उच्च रक्त चाप, मधुमेह, पथरी का रोग, मोटापा, धातु निर्वलता, माइग्रेन इत्यादि। आइये इन सभी तीव्र एवम् जटिल रोगो की विस्तृत जानकारी का अध्ययन करें।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम अध्ययन करेंगे कि तीव्र रोग क्या है उनकी अवधारणा क्या है ? तथा जटिल रोग कौन–कौन से है इनकी क्या अवधारणा है।

12.3 तीव्र रोग

तीव्र रोग शरीर में विजातीय पदार्थ के जल्दी से (अर्थात् तीव्र गति से निष्कासित विजातीय द्रव्य) बाहर निकलने की एक प्रक्रिया होती है। प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त के अनुसार शरीर पर बाहरी चोट के अतिरिक्त मनुष्य अपने आहार–विहार व गलत जीवन शैली के कारण ही बीमार पड़ता है। जिसमें अज्ञानता अथवा विषय भोग का लोभ होता है। चाहे वह जीभ के स्वाद के कारण हो या फिर इन्द्रियों के सुख के कारण गीता में कहा गया है

युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु
युक्तस्वप्नाबवोधस्य योगो भवति दुःखहा।

अभिप्राय यह है कि आहार विहार, खान–पान, सोना जगना ठीक करते हुये यदि जीवन यापन किया जाये तो कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ता। अन्यथा शरीर में विजातीय द्रव्य का जमा होना अर्थात् दुःख भोगना आवश्यक है। तीव्र गति से दूषित पदार्थ बाहर निकलकर तीव्र रोगों की स्थिति पैदा करें तो हमें उपवास व उपयुक्त उपचार करते हुये ही आन्तरिक स्वच्छता करनी चाहिए। यदि सफाई (आन्तरिक) न की जाये और दवाओं से उसे दबा दिया जाये तो विजातीय द्रव्य शरीर में ही कुछ समय के लिए दब जाते है। यदि दबे हुये विजातीय द्रव्य तीव्र रोग की स्थिति से जटिल रोगो में बदल जाते है। परन्तु जब प्रतिरोधक क्षमता शरीर में एकत्र हुये मल को अजीबो–गरीब ढंग से जल्दी शरीर से बाहर फैकना शुरू करती है। तब उस स्थिति को तीव्र रोग की स्थिति बनना कहते है। यह स्थिति रोगी को अत्यन्त बेचेन कर देती है। तीव्र रोग आने पर कई बार शरीर में छिपी हुई कुछ अन्य बीमारियां भी बाहर निकलकर दिखाई देने लगती है। क्योकि तीव्र रोग की तेजी से बाहर निकलने के कारण ही ऐसी स्थिति पैदा होती है। इसमें रोगी अपने आप को बहुत कमजोर महसूस करता है। इस कमजोरी का मुख्य कारण यह होता है कि उस समय हमारी शरीर की प्रतिरोधक क्षमता एवम् प्राण शक्ति (जो हमारे शरीर को शक्ति प्रदान करती है) शरीर के अन्दर जमा हुये दोषो को बाहर निकालने में व्यस्त रहती है। ऐसी हालत में खाने–पीने की इच्छा और अच्छी भूख खत्म हो जाती है। और यह उचित भी है। क्योकि यदि हम खाते रहे तो विजातीय द्रव्य बनते रहेंगे जिससे शरीर की शुद्धि क्रिया कभी भी अपना काम भली–भांति नहीं कर पायेगी। भूख खत्म होना भी शरीर की शुद्धि प्रक्रिया का स्वचालित रूप ही है। इन रोगों की (तीव्र रोगों की) विशेषता यह है कि ये बहुत शीघ्रता से आते है और शीघ्रता से ही चले जाते है। तीव्र रोग पूरे शरीर में विजातीय द्रव्य के एकत्र होने की बजाय किसी अंग विशेष में एकत्र होते है। अथवा उसके किसी एक भाग में एकत्र होते है। तीव्र रोग बच्चों में या फिर युवाओं में अधिकतर आते है। जिसका मुख्य कारण प्रतिरोधक क्षमता अत्यधिक सुदृढ़ होना होता है। अर्थात् प्रतिरोधक क्षमता या जीवनी शक्ति अच्छी होने के कारण शरीर के किसी हिस्से में भी जैसे ही मल जमा होता है वैसे ही जीवनी शक्ति तुरन्त बाहर निकालना शुरू कर देती है। हमें तीव्र रोगों का धन्यवाद करना चाहिए कि इनके कारण प्रकृति हमें मजबूर करती उपवास एवम् आराम करने के लिए बिस्तर पर लिटा देती है और साथ में खाने की इच्छा को भी पकड़ के रखती है। ऐसी स्थिति में पानी की मात्रा को बढ़ा देना चाहिए अर्थात् ज्यादा पानी पीना चाहिए। तीव्र रोग यदि आते है तो समझ लेना चाहिए हमारे शरीर की जीवनी शक्ति बहुत अच्छी है। जीवनी शक्ति अच्छी नहीं होने पर शरीर में दूषित मल एकत्र होकर के ऐसी स्थिति बना देते है कि कुछ समय बाद जटिल रोग भी शरीर को घेर लेते है। प्राकृतिक चिकित्सा में जीवन शक्ति की मल

निष्कासन क्रिया को कभी नहीं रोकना चाहिए। न ही इससे भयभीत होना चाहिए। क्योकि यह स्थिति मात्र कुछ दिनों के लिए है तथा जीवनी शक्ति की प्रतिक्रिया है। प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक हेनरी लिण्डलहार ने तीव्र रोगों को अपनी पुस्तक में तीव्र रोगों की पांच अवस्थाऐं बताई है। जिसमें 1. पहली अवस्था को रोग की नीव पड़ने की अवस्था के रूप में जाते है जिससे मल भर जाने के कारण उत्तेजना शुरू हो जाती है तथा इसके बाद धीरे से या कभी–कभी जल्दी से वे अपना एक खास रूप धारण कर लेते है। यह अवस्था कुछ मिनटो में भी पैदा हो जाती है। कभी इसके पैदा होने में कई वर्ष भी लग जाते है। और 2. दूसरी अवस्था में शरीर में कष्ट बढ़कर के ज्वर बढ़ जाता है। अकड़ाव अथवा सूजन बढ़ जाती है जिसमें रोगी की आन्तरिक शक्ति क्षीण होकर शरीर को न काम करने की क्षमता बचती है न ही खड़ा रहने अथवा चलने फिरने की शक्ति रहती है। और यह बिस्तर पकड़ लेता है। ऐसी स्थिति में कुछ चिकित्सकों का मत है कि जब शरीर में जीवनी शक्ति अधिक कमजोर हो तो दवाई का सहारा ले लेना चाहिए। परन्तु अधिकतर चिकित्सक दवाओं के प्रयोग को लक्षणों का देना जटिल रोगों को नियन्त्रण देना मानते है। तीसरी अवस्था आने पर रोग के लक्षण वाले हिस्से पर रोग के दूर होने की स्थिति बन जाती है। उदाहरण के लिए एक फोड़े बनने में हल्का दर्द होकर फुन्सी बनना पहली अवस्था है। उसका सूजन के साथ लाल होना दूसरी अवस्था कहलाती है तथा तीसरी अवस्था में मवाद पड़कर फूट जाना या मवाद या रक्त बहकर निकलना शुरू होना तीसरी अवस्था है। इसी तरह से पसीना–पेशाब या फिर श्वास में भयंकर दुर्गन्ध आना दस्त या उल्टी होना आदि रोग की भयंकर दशा कहलाती है। इस अवस्था में मृत्यु तक का खतरा पैदा हो सकता है। क्योकि यहां आकर मस्तिष्क तक काम नहीं कर पाता है। सभी अंग ढीले पड़ कर जोखिम पैदा हो सकता है। इस स्थिति में हमारी जीवन की परीक्षा की घड़ी आ जाती है। यदि इस हालत में जीवनी शक्ति जवाब दे दे तो अवश्य ही जीवन के लिए खतरा हो सकता है। यदि जीवनी शक्ति अच्छी है तो शीघ्र ही ऐसे लक्षण कम होकर मल को निष्कासित करते हुये हमें पूर्णतया रोगमुक्त कर देती है। उदाहरण के लिए हैजा दस्त इत्यादि में जीवन चले जाने तक के खतरे आ सकते है। इसलिए कहा गया है कि तीव्र रोग एक सेफ्टी वाल्व का कार्य करते है जो विजातीय द्रव्य जमा होते ही स्वतः खुल जाते है और शरीर से बाहर आने लगते है। तीव्र रोग को डॉ0 बर्नर मैकफेडन ने इस प्रकार स्पष्ट किया है :–

"If is disease that saves life, It is disease that actually cures the body, by means of disease, poisions are eliminated which might have caused death, had they been allowed to remain."

ऐसे समय में जल का महत्व बहुत बढ़ जाता है। वैदिक मंत्रो के माध्यम से भी जल के महत्व को इस प्रकार व्यक्त किया है :–

आपो इन्द्रां उभेषजोरायो अभीव चातकीः ।
आपस सर्वस्य भेषजो स्तास्तु कृष्णन्तु भेषजः ।।
आपो इट्रा भोषजोरायों अभीव चातनी।
आपस सर्वस्य भेषजो स्तास्ते मुञजंत सोतयः।। अर्थवेद !!2!!

इसी प्रकार से श्लोक 3 में कहा है कि जल में अमृत है। तथा श्लोक 4 में कहा गया है कि ''हे मनुष्य सभी प्रकार की औषधी मैंने जल में रखी है।'' कुशल चिकित्सक

उपरोक्त जल के गुण, जीवनी शक्ति आदि के द्वारा उपचार करके यश और कीर्ति का भागीदार बन जाता है।

4. चौथी अवस्था में रोग के शमन की अवस्था आनी प्रारम्भ हो जाती है। इसमें रोग के लक्षण एक, एक करके विदा होना प्रारम्भ हो जाते है। इनमें सुजन अकड़ाहट, मवाद, अथ्वा उल्टी यादास्त की मात्रा में कमी या फिर ज्वर आदि में कमी आनी प्रारम्भ हो जाती है।

5. रोग की यह अन्तिम अवस्था मानी जाती है। जिसमें शरीर के अन्दर से मल अथवा विजातीय द्रव्य पूरी तरह से बाहर निकल जाते है तथा शरीर के नष्ट हुये, तत्व दुबारा से बनने प्रारम्भ हो जाते है। और शरीर के विभिन्न अंग अपनी क्षमता के अनुसार कार्य करना प्रारम्भ कर देते है। जिससे हमारा शरीर कुछ समय में स्वस्थ हो जाता है। तीव्र रोग इस प्रकार हमारे सहायक बनकर शरीर शुद्धि करते हुये हमे आगे आने वाले जटिल रोगो की सम्भावना से बचा लेते है। यह सब कुछ तभी सम्भव हो पाता है। जब हम प्रकृति के समीप रहकर पंचतत्व चिकित्सा द्वारा उपचार प्राप्त करते है। आइये पंचमहाभूत द्वारा तीव्र रोगो की चिकित्सा हेतु कुछ उपचारों का अध्ययन अगले भाग में करते है।

तीव्र रोगो में निम्न बिन्दुओं अथवा उपचार करने हेतु ध्यान देना चाहिए।

1. जिस समय रोग की तीव्रता हो उस समय जो स्वर चल रहा हो उसे बन्द करके दूसरा स्वर चला लेना चाहिए।
2. धीरे–धीरे प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।
3. यदि किसी अंग में सुजन है और छुने से ठंडा लगे तो उस पर गर्म सिकाई करनी चाहिए। तथा व मात्र गर्म प्रतीत हो तो उस पर ठंडी सिकाई करनी चाहिए।
4. मलेरिया, टाइफाइड, वायरल, सिर दर्द, जुकाम, खासी इत्यादि में उपवास करते हुये विश्राम करना आवश्यक है। यह उपवास तीन से चार दिनो तक कर लेना चाहिए।
5. रोग के ठीक हो जाने पर अथवा उपवास तोड़ने पर एक दम गरिष्ठ भोजन ना करके हल्के फल, रस, बिना तला भुना सुपाच्य आहार ही ग्रहण करना चाहिए। शरीर का तापमान कम होने पर गर्म मिट्टी का प्रयोग पेट पर तथा गर्म पानी की बोतल बगल एवं पैरो पर रखनी चाहिए।
6. यदि पेट में तेज दर्द हो अथवा गैस बन रही हो तो एक–एक पैर से पवन मुक्तासन बार–बार करायें। यदि नाभि स्थान पर दर्द हो तो नौकासन में लिटा देना चाहिए।
7. एक–एक कर ज्वर आने पर ज्वर आने से पहले या तो एक दो गिलास ठंडा पानी पीना चाहिए या ठंडे पानी से नहाकर रजाई या कम्बल ढक कर लेट जाना चाहिए।
8. गर्मी से सिर दर्द होने पर ठंडे पानी का तोलिया आधे घंटे के लिए सिर पर लगा देना चाहिए।
9. एक दम ब्लड प्रेशर प्रेशर बढ़ जाने पर दोनो पैर तक गर्म पानी को बाल्टी में 10 मिनट के लिए डाल दे तथा गर्दन व सिर पर ठंडे पानी का तौलिया रख ले। इसके साथ ही गुनगुने पानी का एनिमा भी दिया जा सकता है।
10. गर्म स्नान रक्त कणो को कम करता है तथा श्वेत कण बढ़ाता है। गर्म स्नान करने से सोडियम क्लोराइड पसीने के द्वारा बाहर निकल जाता है।

11. चक्कर आने अथवा बेहोश होने पर सबसे पहले ताजी अथवा आक्सीजन देकर उसे इस प्रकार से लिटा देना चाहिए जिससे छाती से सिर का हिस्सा नीचे रहे। उसके बाद ठंडे पानी के छीटे मुंह पर व सिर पर मारने चाहिए। जिससे मस्तिष्क में रक्त संचार होते ही रोगी होश में आने लगता है। ऐसे में उसके कपड़े भी ढीले कर देने चाहिए। होश में आने पर उसे जूस अथवा फलो का रस देना चाहिए। बेहोशी के दौरान रीढ़ की हड्डी पर गर्म सेंक किया जा सकता है।
12. नाक से रक्त स्त्राव होने पर तुरन्त बर्फ का टुकड़ा नाक के दोनो ओर तथा माथे पर एवं देना चाहिए।
13. बड़ी आंत पर सूजन आ जाने से दर्द एवं मरोड़ पैदा हो जाती है जिसके लिए पेट पर ठंडी पानी की बोतल अथवा ठंडा तोलिया और कमर पर गर्म पानी की बोतल अथवा ठंडा तोलिया रख देना चाहिए। ऐसी स्थिति में उपवास करते हुये केवल फल अथवा जूस ही लेना चाहिए।
14. गन्दगी बाहर निकालने के चारो रास्तो, फेफड़ा, त्वचा के रोम छिद्र अर्थात् पसीना निकालने वाली ग्रथियां मूत्र द्वार एवं मल द्वार की सफाई रखने का प्रयास करना चाहिए। जिससे शरीर के विजातीय द्रव्य बाहर निकलने में कठिनाई न हो।
15. रोग के लक्षणों को दबाने का प्रयास नहीं करना चाहिए। अर्थात् तीव्र रोग आने पर शरीर से विजातीय द्रव्य निकालने में सहायता करनी चाहिए। अपितु उनको दवाओं से दबाना नहीं चाहिए।
16. खांसी अथवा जुकाम में गर्म हस्त और पाद् स्नान देते हुये हल्दी एवं शहद मिलाकर सेवन करना चाहिए। छांती पर भाप देकर गर्म पैक भी लगा सकते है। इसके साथ ही अजवाइन के उबले पानी की भांप देनी चाहिए।
17. अतिसार में अदरक का रस नाभि के चारो ओर लगाकर मिट्टी की पट्टी अथवा बर्फ की सिकाई कर देनी चाहिए। साथ ही हरी इलायची के 20 दाने कूट कर पानी से खिला देना चाहिए तथा हैपाटिक पैक लगाना चाहिए।
18. उल्टी, आने पर शीतली अथवा शीतकारी प्राणायाम होठो के आगे बर्फ का टुकड़ा लगाकर करना चाहिए। नीबू के आधे टुकड़े पर मिश्री और धनिया रस रस कुछ बूंदे डालकर सीप करते रहने से उल्टियां बंद हो जाती है।
19. तीव्र रोगो में किसी प्रकार के वेग को रोकना नहीं चाहिए जिसमें मल, मूत्र, छींक आना, खासी आना बलगम उल्टी, दस्त इत्यादि को कभी भी रोकने का प्रयास न करें।
20. कम से कम 6 से 8 घंटे तक सोना आवश्यक है। इससे शरीर की कमजोरी में वृद्धि नहीं होती।
21. बीमारी की अवस्था में मानसिक चिंता बढ़ाने वाले सभी कार्यो से बचना चाहिए। इसके लिए ध्यान, प्राणायाम का सहारा लिया जा सकता है।
22. दिन में दो बार तौलिये से घर्षण करते हुये स्नान करें तथा स्नान के बाद भी फिर से घ्रष्ण करें।
23. रोग की अवस्था में बिना भूख के कुछ भी खाना पीना नहीं चाहिए। तथा पेट साफ करने के लिए जुलाब की दवा या पेट साफ करने वाली दवा न लेकर केवल एनिमा का प्रयोग करना चाहिए।

24. आंतो में यदि घाव है तो पेट पर ठंडी मिट्टी की पट्टी बर्फ भी सिकाई के साथ–साथ महानीम (बकायन) के दस बारह पत्तों को पीस कर सेवन करना चाहिए।

25. एसीडिटी हो जाने पर ज्यादा गर्म पदार्थ व खाना बन्द कर देना चाहिए। दो खानो के बीच में कम से कम 3 से 4 घन्टो का अन्तर रखना चाहिए। ठंडी चीजो का सेवन बढ़ा देना चाहिए। इसमें षटकर्म क्रियाओं का अभ्यास करना चाहिए। जिसमें मुख्य रूप से कुंजल का प्रयोग अवश्य करें। एसीडिटी में पेंट पर मिट्टी की पट्टी व जी0एच0 पैक (बाण्ड हैपाटिक पैक) इसके साथ–साथ दिया जाता है। खाने के बाद थोड़ा सा गुड़ खाकर ऊपर से 1 लॉग व इलायची 10 मिनट मुंह में रखते हुये उससे निकलने वाले लार को अन्दर लेते रहना चाहिए। एक बादाम और उसके बराबर मात्रा में आजवायन लेकर दोनो को मुंह में रखकर खूब चबाकर खाने के बाद दिन में दो से तीन बार खाना चाहिए।

26. सिर दर्द की अवस्था में यदि खाली पेट है तो कुंजल करना लाभदायक है। तथा एनिमा का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। पेट व माथे पर मिट्टी की पट्टी लगा देनी चाहिए। पानी का अधिक से अधिक सेवन करना चाहिए। यदि सिर दर्द ठंड या जुकाम होने से हुआ है तो अजवायन के उबले पानी की भाप अवश्य देनी चाहिए। बहुत ज्यादा नाक बन्द है तो गर्म तवे पर एक चम्मच हल्दी डालकर उससे निकलने वाले धुये को नाक द्वारा ग्रहण करना चाहिए।

27. किसी भी जगह कट जाने अथवा रक्त बहने पर बर्फ से सिकाई करना आवश्यक है। बर्फ की सिकाई के बाद कटे हुये स्थान पर ठंडे पानी की पट्टी से बांधना आवश्यक है अथवा साफ मिट्टी का लेप भी कर सकते है।

28. किसी प्रकार के भी तीव्र रोग में सूर्य स्नान अथवा प्रातः काल उगते सूर्य को कम से कम आधे घण्टा देखना चाहिए। सूर्य के प्रकाश में रहने से अथवा सूर्य स्नान करने से विटामिन डी तो प्राप्त होता ही है साथ में हड्डियों को मजबूत बनाने में सहायक होता है। पीलिया रोग में भी सूर्य स्नान की बहुत आवश्यकता होती है। सूर्य में निहित सात रंगो का तीव्र रोग एवं जटिल रोग सभी प्रकार के रोगो में विशेष योगदान पाया जाता है। सूर्य प्रकाश में जो सात रंग पाये जाते है। उनमें बैगनी रंग सिर से सम्बन्धित बीमारियों में और गहरा नीला आंख व कान के रोगो में नाक के रोग में, (हल्का नीला) गले से सम्बन्धित रोगो में हरा हृदय व फेफड़े के रोगो में पीला रंग पेट के मधुमेह इत्यादि रोगो में नारंगी और लाल रंग घुटने और कमर के दर्द में प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग इन रंगो का पानी चार्ज करके अथवा तेल चार्ज करके प्रयोग किया जाता है।

<u>तीव्र रोग के नाम मुख्य रूप से निम्न है :–</u>

1.	उल्टी	–	टाईफाइड	–	हैजा
2.	दस्त	–	चेचक	–	पेट दर्द, अफारा
3.	बुखार	–	फोड़ा–फुन्सी	–	पीलिया
4.	जुकाम	–	सूजन	–	सिर दर्द
5.	खांसी	–	मोच आना	–	आंख लाल होना
6.	नजला	–	चेचक निकलना –		भूख न लगना
7.	किसी अंग में अचानक पीड़ा या दर्द			–	पेशाब में जलन

8.	नकसीर आना –	लू लगना	–	नींद न आना
	हिचकी लगना –	छाती में जलन		
	पेशाब बन्द होना –	प्यास अधिक लगना		
	डेंगू बुखार –	मलेरिया, प्लेग	–	मस्तिष्क का बुखार
	चिकन गुनिया –	गला बैठना	–	टॉसिंल में सूजन
	दांत में ठण्डा –	गर्म लगना	–	मुंह के छाले
	कान में दर्द अथवा कान में फुन्सी आदि ।			

12.4 जटिल रोगों की अवधारणा

तीव्र रोगों को बार–बार दवाओं के प्रयोग द्वारा दवायें रखने से शरीर में विजातीय द्रव्य एकत्र होते हुये पूरे शरीर को अपने प्रभाव से ग्रस्त कर देते है। तो वह स्थिति जटिल या जीर्ण अथवा मारक रोग के रूप में निकलकर आती है। दवाइयों के निरन्तर सेवन और घटिया रहन–सहन के कारण शरीर की जीवनी शक्ति इतनी कमजोर हो जाती है। और वह कमजोरी के कारण शरीर से विजातीय द्रव्य बाहर निकालने में असमर्थ हो जाती है और विजातीय द्रव्य लम्बे समय तक शरीर में बने रहते है। इसलिए मारक रोगों के आने का रास्ता बन जाता है। जीर्ण रोगों में यह धारणा पाई जाती है कि ये जल्दी जाते नहीं है अर्थात् इनको जल्दी ठीक करना कठिन है। किन्तु प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा ठीक अवश्य हो जाते है। ऐसी अवस्था में रोगी अपने शरीर में बहुत कमजोर महसूस करता है। धीरे–धीरे उसकी कार्य क्षमता घटती जाती है। भूख, प्यास प्रभावित हो जाती है। बात–बात पर क्रोध आने लगता है। अच्छी या गहरी नींद नहीं आती सिर में भारी पन बना रहता है। घबराहट पैदा होती है। काम करने की रूचि घट जाती है तथा परिवार एवम् मित्र सम्बन्धियों से दूरी पनपती है। सदा चुप–चाप रहने को मन करता है, इत्यादि लक्षण आ जाते है। जिससे रोगी हताश या परेशान हो जाता है। एक सुप्रसिद्ध डॉक्टर ने ऐसे रोगों के उपचार में दवाओं के प्रयोग को अनावश्यक बताते हुये अपने शब्दों में व्यक्त किया है। ''यदि आज की प्रचलित दवाओं को समुद्र में डुबो दिया जाये तो मानव की तो भलाई ही होगी परन्तु आपत्ति हो जायेगी जल जन्तुओं को'' दवाइंया मानव के लिए कभी भी वरदान नहीं बन सकती। यदि स्वास्थ्य में सुधार करना है तो दवाईयों का पूरी तरह से त्याग करना होगा। इसके लिए प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा उपचार देकर इस विधि का अहिंसक तरीके से उपचार देते हुये मारक अथवा जीर्ण रोग के लक्षणों को कम करना प्रारम्भ हो जाता है तथा एक दिन में सभी मारक रोग के लक्षण हट कर मन्द रोग के लक्षण आने प्रारम्भ हो जाते है। बाद में इनको भी धीरे–धीरे प्राकृतिक चिकित्सा उपचार द्वारा समूल नष्ट करते हुये रोगी को स्वस्थ बनाने का प्रयास किया जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा स्वास्थ लाभ प्राप्त करके ही अपनी जीवनी शक्ति दुबारा से विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने के काम में लग जाती है। जिसके कारण रोगी अपने स्वंय के शरीर पर एक अलग स्वास्थ सुधार की अनुभूति करता है। शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए बाहर की किसी दवा की आवश्यकता नहीं होती है। इसके लिए तो प्राकृतिक चिकित्सा उपचार द्वारा अनुकूल परिस्थितियों बनाकर जीवनी शक्ति को मल निष्कासन करने हेतु बल प्रदान करना है। इन उपचारों में एनीमा, गीली पट्टी, रीढ़ स्नान, सूर्य स्नान, सहज प्राणायाम, वैज्ञानिक मालिश, तथा पथ्य एवम् सुपाच्य आहार आदि का समावेश आवश्यक हो जाता

है। ये साधन दवाई की तरह नहीं होते जो लक्षणों के बाद बन्द कर दी जाती है। अपितु स्वास्थ्य के प्राप्त करने के बाद भी उनको अपनाये रखना लाभदायक बना रहता है। जिनकों हम परहेज के रूप में अपनाते रहते है। अन्य चिकित्सा पद्धतियों में अलग–अलग रोगो के उपचार हेतु दवाइंया भी अलग–अलग दी जाती है तथा उनका असर रोगी को उसके कष्ट के लक्षणों से कुछ आराम दिलाना तथा शीघ्र प्रभाव दिखाना हो सकता है। लेकिन वहां केवल कष्ट कारक स्थिति से तो राहत प्राप्त होती है। परन्तु रोग की उपस्थिति में किसी प्रकार की कमी नहीं दिखाई पड़ती है। अर्थात् स्वास्थ्य के स्तर में किसी प्रकार की लाभ की स्थिति दिखाई नहीं पड़ती इससे दिन प्रतिदिन स्वास्थ का स्तर गिरता ही रहता है। दूसरी ओर मारक रोगो में प्राकृतिक चिकित्सा आराम देने के साथ–साथ रोग निर्वारण का कार्य भी निरन्तर करती रहती है।

जटिल रोगो में कोई भी व्यक्ति इतना घबरा जाता है कि वह सबसे पहले अन्य चिकित्सा पद्धतियों की दवाओं एवम् उनकी शल्य चिकित्साओं पर ही विश्वास करके उपचार लेता रहता है। इन्ही पद्धतियों को वह सरल मानते हुये झुक जाता है। क्योकि इन पद्धतियों के उपचार में उसे स्वंय कोई कार्य नहीं करना पड़ता। न ही किसी प्रकार का परहेज एवम् मनोवांछित आदतों का त्याग करना पड़ता है। इन सभी स्थितियों से थक जाने के पश्चात ही वह इस कुदर्ती उपचार की दुनिया में आता है। वह भी ऐसी स्थिति में जबकि जटिल रोग अपनी अन्तिम अवस्था में पहुंच चुका होता है। ऐसी अवस्था में प्राकृतिक चिकित्सा उपचार कारगर सिद्धि होते हुये जीण रोगों में सुधार की स्थिति बनाने के लिए अपनी सर्थकता सिद्धि करने में सफल होती है।

जटिल एवं जीर्ण अथवा पुराने रोगो की सूची निम्न प्रकार है :–

1. मधुमेह – मानसिक हीनता
2. दमा – उच्च रक्त चाप/निम्न रक्त चाप
3. बवासीर – भगन्दर/नासूर
4. कैंसर – प्रोस्टेट ग्रंथी का बढ़ना
5. हाइपर एवं हाइपो थाईराईड
6. गुर्दा रोग – हृदय रोग
7. मिर्गी – एड्स (एच0आई0वी0)
8. पार्किन्सन – सन्धि शोध
9. हरनिया – कब्ज – असल्सर– आंत व अमाशय
10. एनीमिया– मल्टीपल स्कलेरिसस
11. अनियमित दिल की धड़कन
12. पुराने फेफड़े के रोग – चिड़चिड़ापन – क्रोध
13. ब्रोंकइटिस – वर्टिगों (गर्दन की हड्डी के कारण चक्कर आना)
14. पथरी रोग (गुर्दे में) पित्ताशय पथरी
15. नपुसंकता – चर्म रोग– सोराइसिस – एग्जिमा आदि
16. अतिसार– संग्रहणी – पोलियो
17. हीमोफिलिया – अंगो का विकृत या टेड़ा हो जाना इत्यादि ।
18. गुर्दे तथा ओवरी सिस्ट
19. शीघ्र सफेद बाल होना तथा शरीर पर सफेद दाग आदि ।
20. अनिद्रा – एसीडिटी – हिसटिरिया

21. माइग्रेन – याद दास्त कम होना – फोबिया

कोई भी व्यक्ति जीर्ण रोग का पता लगाते ही यदि प्राकृतिक चिकित्सा की शरण में आ जाए तो निश्चित रूप से उसका स्वस्थ होने की स्म्भावना 90 प्रतिशत अधिक बढ़ जाती है। जीर्ण रोगों की अवस्था हमे आवश्यकता होती है। शरीर शुद्धि की ना कि औषधि व ऐसे रसायनों की जो रोग की अवस्था में शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को कम कर देते है। जीर्ण रोगों में प्रतिरोधक क्षमता ही एक ऐसी शक्ति है जो हमें रोगो से लड़ने में सहायक होती है। प्रतिरोधक क्षमता जीर्ण रोग पनपने से पहले ही यत तीव्र रोगों के रूप में जीर्ण रोगों की मूल (जड़) को ही समाप्त कर सकती है। यदि यह शक्ति सुदृढ़ है तभी यह सम्भव हो पाता है। लेकिन यह शक्ति यदि पुष्ट व मजबूत बनाने में केवल एक मात्र उपचार पद्धति है जिसका नाम है जीवन शैली द्वारा प्राकृतिक उपचार/दूसरी कोई भी पद्धति (औषधि विज्ञान) इस शक्ति को सुदृढ़ नहीं अपितु कमजोर बनाती है। कुछ आपरेशन आदि की अवस्था को छोड़कर प्राकृतिक चिकित्सा से बढ़कर कुछ भी उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकता है। केवल, उपवास, रसाहार का पालन करते हुये पंचमहाभूत उपचार की सफल का अहसास करा सकता है। कुछ ऐसे महत्वपूर्ण बिन्दु निम्न प्रकार है जो जटिल रोगो को आमान्त्रित करते है। ,

1. भय, क्रोध, इर्ष्या, द्वेष आदि का स्वभाव होने पर जटिल रोगों का आगमन अथवा मानसिक रोगों का आना निश्चित है। संयमी व सात्विक लोगो को रोग (जटिल) कम आते है।
2. सड़े, गले, बासी भोजन व अधिक मैदे व तेल–घी से पदार्थो का निरन्तर सेवन।
3. ऋतु विरूद्ध आहार, ऋतुचर्या अथवा शारीरिक व्यायाम के साथ–साथ धूप के सेवन व प्राकृतिक हवा अथवा वातावरण (शुद्ध) का अभाव।
4. शोच (पाखाना), मूत्र, अपान वायु छींक, उबासी इत्यादि के वेग को रोक कर रखने से अफारा, नाभि अथवा वात्ज रोग आ जाते है।
5. कार्य की अथवा खान–पान में अनियमितता के कारण शरीर की प्राकृतिक रक्षा प्रणाली बाधित होकर जीर्ण रोगों की स्थिति बना देती है।
6. उत्तेजक एवं नशीले पदार्थो का निरन्तर सेवन करना।
7. पानी का कम प्रयोग करना और उपवास आदि के बिना ठूंस–ठूंस कर खाना।
8. चिन्ता एवं तनाव चाहे ज्यादा अर्जित करने की हो अथवा कार्य पूरा ना कर पाने की आदत दोनो अवस्थाओं में लम्बी अवधि तक इसका बने रहना जीर्ण रोग का कारण बन जाता है।
9. रात में जागना तथा दिन में सोना प्रकृति विरूद्ध है। इस कारण पाचन संस्थान हमेशा बाधित होकर पोषक तत्वों की कमी से ग्रस्त होना निश्चित होता है।
10. कुपोषण के कारण भी जटिल रोगों का आगमन हो सकता है।
11. कुपोषण के कारण भी जटिल रोगों का आगमन हो सकता है।
12. मन में नकारात्मक विचार निरन्तर चलते रहना व एसुरक्षा की भावना का बना रहना।
13. पारिवारिक कलह, किसी बहुत प्रिय व्यक्ति से विक्षुड़ जाना, अच्छी नौकरी का ना मिलना, परिवार के किसी सदस्य को असाध्य रोग हो जाना या फिर किसी भी कारण से मन का अशान्त रहना, अभाव ग्रस्त जीवन परिस्थिति बन जाना या शारीरिक अपंगता के कारण

निराश व हताश होने की स्थिति में जटिल रोग जैसे–मधुमेह, अस्थिमा, हृदय रोग, उच्च रक्त चाप, माइग्रेन, अथवा संग्रहणी, बवासीर आदि का आना लगभग तय हो जाता है।

अब हम कुछ मुख्य जटिल रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा उपचार देने के कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं का अध्ययन इस प्रकार वर्णन करना चाहते है।

1. **उच्च रक्त चाप :–** इस रोग के आने पर चक्कर आना, सिर दर्द रहना, किसी कार्य में दिल न लगाना, श्वास कष्ट, नींद न आना, मन्दाग्नि, चिड़चिड़ापन, शिथिलता, कभी–कभी नाक से खून गिरना, छाती में दर्द होना, जरा सी मेहनत करने से ही हाँफने लग जाना आदि लक्षण दिखाई पड़ते है। ऐसा रोगी दो–तीन बार आहार लेने पर भी शरीर में कमजोरी महसूस होती रहती है। उसे नींद कम आती है। लक्वे की बीमारी भी उसी को आती है जिनकों उच्च रक्त चाप होता है। इस बीमारी का बहुत से लोगो को पता भी समय पर नहीं चल पाता। उच्च रक्त चाप में हृदय स्वास्थ्य तथा आकार में बड़ा भी हो जाता है। कई बार हृदय गति भी प्रभावित हो जाती है जो प्राणों के लिए घातक तक हो जाती है। खून में विजातीय द्रव्य मिलकर इस रोग को शरीर में पैदा करने में सफल हो जाते है। इस रोग में असंयम, नमक का अधिक सेवन, चिन्ता, क्रोध व गुर्दे के रोग कब्ज एवम् आँव अथवा ऐसेडिटी गैस का होना घातक सिद्ध होता है। इस रोग की चिकित्सा में सर्वप्रथम आहार प्रधान देना आवश्यक है। खाने के साथ अधिक पानी पीना, बिना चबाये भोजन करना, बिना भूख के भोजन करना, दिन में सोना, मूत्र वेग को रोककर रखना, कब्ज होना ज्यादा विषय भोग में लिप्त रहना, अधिक शारीरिक श्रम करना इत्यादि को ठीक करते हुये उपवास, रसाहार, अंकुरित व कच्चा भोजन, प्रातःकाल शहर या व्यायाम करना, गहरी नींद लेना, पानी का अधिक सेवन करना, शान्त चित व एकान्त में भोजन करना चाहिए। प्राकृतिक उपचार में शरीर की तेल या सूखी मालिश हृदय की ओर करनी चाहिए। माथे पर मिट्टी की पट्टी अथवा पानी की गीली पट्टी गर्दन व कमर पर रखनी चाहिए, तथा 8 से 10 मिनट तक गर्म पैर का स्नान करना चाहिए। पेट पर पानी अथवा मिट्टी की पट्टी रखना भी लाभदायक है। उक्त रक्त चाप में सूर्य नमस्कार हलाशन, सर्वांग आसन, योग निद्रा या योग मुद्रा, मतस्यासन, आसनों के साथ प्रिफला, वेल पत्र और केले के तने का रस लेना लाभदायक है। इस रोग का उपचार कर लेने से अन्य जीवन शैली से जुड़े रोग चाहे व मोटापा हो एसीडिटी, गैस, कब्ज, हृदय रोग अपने आप ही दूर हो जाते है।

2. **क्षय रोग :–** मुख्यतः यह तीन प्रकार का होता है।

1. अस्थिक्षय
2. पेटकाक्षय
3. फुफ्फुसीय

इन तीन के अतिरिक्त इसके कीटाणु फेफड़ो, त्वचा व जोड़ो, कंठ, रीढ़ की हड्डी, पेट की आंत तथा शरीर की विभिन्न हड्डियों पर समान रूप से आक्रमण करता है। इसकी आरम्भिक अवस्था में उपचार लगभग सम्भव होता है। परन्तु दूसरी अवस्था में इसके लक्षण बढ़ने शुरू हो जाते है। जिससे शरीर का वजन काफी कम हो जाता है। दोनो फेफड़े खराब हो जाते है और अन्तिम स्थिति आने पर खून की उल्टियां आने लगती है और बहुत कष्ट कारी स्थिति पैदा हो जाती है। पेटकाक्षय में पेट के अन्दर गाठे पड़ जाती है तथा दस्त के साथ संग्रहणी बन जाती है। हड्डी काक्षय में शरीर में फोड़े फुन्सी होकर जख्म बन जाते है और जल्दी ठीक भी नहीं हो पाते इस तरह के रोग में रोगी को पूर्ण विश्राम करना बहुत आवश्यक है। चीड़ के पेड़, पीपल के पेड़ आदि के शुद्ध हवा में रहते हुये

बकरी के दूध का अधिक से अधिक सेवन करना चाहिए। इसमें गहरी नीली बोतल द्वारा सूर्य किरण चिकित्सा से तैयार जल का चार बार सेवन करना चाहिए इसमें फलो का अधिक से अधिक सेवन करना चाहिए। नीबू, शहद, पानी का सेवन अधिक से अधिक करना चाहिए। गरम हाथ व पैर स्नान, प्राणायाम, षठकर्म, उपवास, ध्यान, अनुरोम विलोम छाती पर नीले रंग का प्रकाश, मेहन स्नान, एनिमा, हल्की मालिश, पेट पर गीली पट्टी इत्यादि उपचार लेना चाहिए।

3. **संधि शोध या संधिवात :–** यह असाध्य मानी जाने वाली बीमारी जो बहुत से दवाओं के प्रयोग से और भी खतरनाक बन जाती है, मानव को अशक्त बना देती है। यह जीर्ण रोग की श्रेणी में आती है। यह धीरे से शुरू होकर विकारात रूप धारण कर लेती है। यह शरीर के विभिन्न जोड़ो को जकड़ लेती है। यह रोग आलसी जीवन, मिठाई व घी–तेल का अधिक सेवन, मदिरापान, तनाव, क्रोध, चिन्ता, अम्लता, मैदा आदि सेवन के साथ गलत उठने–बैठने की आदत द्वारा शरीर में आता है। इसके उपचार में मालिश, लेप, पुलटिस–पौटली, होठ व कोल्ड हाथ, पैर का स्नान सोना बाथ, विद्युत लैम्प की सिकाई, तरेस घुटने व कमर दर्द, उपवास व रामनाथ का जाप आदि के साथ उपचार भी नियमित रूप से करवाते रहना आवश्यक है। सावधानी के तौर पर खट्टे अंगूर, चीनी, केक, डिब्बा बन्द सभी चीजें व हरी मिर्च, बैगन, मटर, गोभी, भिन्डी, फूल, क्रीम, दूध, राजमा आदि का सेवन बन्द करना चाहिए तथा उपवास आदि के साथ बिस्कुट व नशीले पदार्थ का सेवन भी हानिकारक है।ऐसे ही जीर्ण रोग अनेकानेक है जिनका उपचार व वर्णन दूसरी इकाईयों में किया गया है। इस कारण यहां पर केवल कुछ सुझाव (जटिल रोगों से बचने के लिए) निम्न प्रकार दिये जा रहे है :–

1. भोजन में 80 प्रतिशत क्षारीय तथा 20 प्रतिशत अम्लीय भोजन ही करना चाहिए।
2. प्रत्येक माह एक–दो दिन का उपवास तथा 3–4 माह में 2–4 दिन का उपवास फलों पर करना चाहिए।
3. पेट को नरम, सिर ठण्डा तथा पैर सदैव गर्म रखने चाहिए।
4. समय–समय पर, नेति, कुंजल, मिट्टी पट्टी, कटि स्नान व रीढ़ स्नान, एनीमा व तेल मालिश आदि अवश्य होनी चाहिए।
5. व्यायाम, प्रातः कालीन भ्रमण, प्राणायाम का अभ्यास अवश्य दिनचर्या में जोड़ ले।
6. संतुलित आहार, सूर्य स्नान, रामनाम जाप के द्वारा ''स्वस्थ तन स्वस्थ मन'' को प्राप्त करें।
7. खाने से पहले बीच में व बाद में अधिक पानी ना पीये। खाने के समय निर्धारित करके उस समय क्रोध, शोक, जल्दबाजी बिल्कुल न करें।
8. बासी भोजन कभी भी ना ग्रहण करें।
9. तीव्र रोगों को कभी दबाने का प्रयास नहीं करें।
10. प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने हेतु दूसरी इकाई में बताये गये सुझावों का पालन करें।
    इस प्रकार बहुत ही जीवन शैली के सुझाव है जिनका वर्णन अनेक बार किया जाता रहा है। वे सभी अति आवश्यक रूप से पालन करें।

12.5 सारांश

इस इकाई में आपने अध्ययन किया कि किस प्रकार तीव्र रोग आते है ? वे हमारे शत्रु नहीं अपितु मित्र की भूमिका निभाते हुये हमारे शरीर का शोधन तो करते ही है साथ में भविष्य

में पैदा होने वाले सभी तरह के जीर्ण रोगों की भी सम्भावनाओं की जड़ को क्षीण करने का कार्य करते है। हमारे शरीर के विभिन्न अंग शरीर में एकत्र होने वाले सभी प्रकार के विजातीय द्रव्यों को तीव्र रोगों के द्वारा ही बाहर करता है। ऐसे सभी रोग जो असावधानी अथवा अत्यधिक दवाओं के सेवन द्वारा जब बार–बार दबाकर लम्बे समय तक शरीर में विजातीय द्रव्य एकत्र रहने से ही जटिल एवं जीर्ण रोग उत्पन्न होते है। ये जीर्ण रोग अधिकतर असाध्य रोग बन जाते है। इस इकाई में इन सभी बातों का विस्तार से अध्ययन करते हुये इनके कुछ उपचार बिन्दुओं का भी अध्ययन किया। इन उपचार पद्धति में विशेषकर बिना औषधी सेवन के ही पथ्य–अपथ्य, जीवन शैली तथा योग व प्राकृतिक चिकित्सा की पंचमहाभूत चिकित्सा का भी अध्ययन करते हुये हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि हमे ना तो तीव्र रोगों को दबाना चाहिए और ना ही उसमें दवाओं का सेवन करना चाहिए और उनके निष्कासन में सहयोग करते हुये उपवास, मौनवृत, अधिक जल का सेवन, विश्राम, प्राकृतिक वातावरण में रहते हुये एनिमा, प्राणायाम, पहियों इत्यादि का प्रयोग निरन्तर करना चाहिए। दूसरी और जटिल रोगों में प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने हेतु सभी आहार, अंकुरित, फल व सलाद के साथ–साथ जीवन शैली में सुधार कर प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति के द्वारा शोधन कार्य एवं उपचार करते हुये लगभग असाध्य समझे जाने वाले रोगों में, कम से कम कष्ट हो इस हेतु सफलता तो मिलती ही है।

12.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.वृहद प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ0 ओ0पी0 सक्सेना
2.प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – राकेश जिन्दल
3.प्राकृतिक चिकित्सा दर्शन एवं व्यवहार – डॉ0 हेनरी लिडंलार
4.सरल प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ0 ओ0पी0 सक्सेना

12.7 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न–1 तीव्र रोगों की अवधारणा से आपका क्या तात्पर्य है ?
प्रश्न–2 जीर्ण अथवा जटिल रोग कैसे पनपते है ? इनकी सावधानियां बताइएं ।
प्रश्न–3 जीर्ण रोग की अवधारणा से आपका क्या तात्पर्य है ?
प्रश्न–4 तीव्र एवं जीर्ण रोगों की सूची लिखिए ।
प्रश्न–5 तीव्र व जीर्ण रोगों पर उपचारात्मक व्याख्या करें ।
प्रश्न–6 प्राकृतिक चिकित्सा में तीव्र व जीर्ण रोगों की अवधारणा को विस्तार पूर्वक लिखे ।

इकाई – 13 प्राण उर्जा एवं प्रतिरोधक क्षमता की अवधारणा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 प्राण एवं प्राण ऊर्जा (शक्ति)
13.4 प्राण का प्रादुर्भाव
13.5 प्राण का स्वरूप
13.6 प्राण की अवधारणा
13.7 प्रतिरोधक क्षमता की अवधारणा
13.8 सारांश
13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ
13.10 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

कहते है ''प्रथम सुख निरोगी काया'' तथा स्वास्थ रहना मनुष्य का प्रथम व जन्म सिद्ध अधिकार है। प्रकृति भी मनुष्य को स्वस्थ्य बने रहने में अपना योगदान देती है। अधिकतर शरीर में विजातीय द्रव्य (मल, विषाक्त पदार्थ) आदि के अधिक मात्रा में एकत्र हो जाने से उत्पन्न होते है। मनुष्य के रोग ग्रस्त हो जाने पर प्रकृति की जीवनी शक्ति, प्रतिरोधक शक्ति में रूपांतरित होकर रोग का प्रतिरोधक करके, दूषित पदार्थ, मल निष्कासित करके रोगी को स्वास्थ्य प्रदान करने की चिकित्सीय प्रक्रिया में लग जाती है।

प्रतिरोधक क्षमता के सक्रिय होने पर प्रतिक्रिया स्वरूप प्रकृति उन्हें जलाकर नष्ट करने के लिए ज्वर पैदा करती है अथवा उनको बाहर निकालने के लिए दस्त, जुकाम, खांसी, वमन, त्वचा पर दाह, फोड़े फुन्सी आदि के रूप में बाहर निकालने का प्रयास करती है।

रोगी प्रतिरोधक जीवनी शक्ति प्रबल होने पर ही ये विकार (दूषित पदार्थ, मल एवं विषाक्त) तेजी से बाहर निकलते है तथा रोगी शीघ्र स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर सकता है।

किसी भी विजातीय द्रव्य, विषाक्त पदार्थ, विषाणु, रोगाणु का शरीर में प्रवेश करने पर अथवा विभिन्न जैव रासायनिक क्रियाओं के परिणाम स्वरूप उक्त दूषित तत्वों का शरीर में एकत्र होने पर, शरीर की जीवनी शक्ति उनका प्रतिरोध करती है जिसके परिणाम स्वरूप जीवनी शक्ति, प्रतिरोधक शक्ति में रूपान्तरित होकर उनका निष्कासन उत्सर्जन के अंगो के द्वारा करने के प्रयास में लग जाती है।

अतः हम संक्षेप में हम यह भी कह सकते हैं कि जीवनी शक्ति तथा प्रतिरोधक क्षमता एक ही शक्ति को दो रूप है –

स्वस्थ बने रहने में अपनी भूमिका निभाती है वही प्रतिरोधक क्षमता अवस्वस्थ्य व्यक्ति को निरोग अथवा स्वास्थ्य बनाने में अपनी भूमिका निभाती है।

तीव्र रोग जैसे– ज्वर, ताप, वेदना, वमन, दस्त, त्वचा की दाह, फोड़े–फुन्सियों के रूप में व्यक्ति के शरीर में उपद्रव के रूप में प्रकट होते है जो प्रकृति द्वारा चिकित्सकीय दृष्टि से उपचार स्वरूप प्रतिरोधक क्षमता अपना कार्य प्रारम्भ करती है। प्राण शक्ति के निर्बल होने पर मनुष्य के शरीर में विजातीय द्रव्य, दूषित मल अधिक मात्रा में एकत्र होने के कारण अथवा व्यक्ति की प्रतिरोधक क्षमता कम होने के कारण तीव्र रोग बार–बार आते है तथा जीर्ण रोग में परिवर्तित हो जाते है।

अतः प्राण शक्ति या ऊर्जा ही जीवन की लय एवं गत्यात्मकता बने रहने के लिए अत्यन्त आवश्यक है तथा शरीर जब अस्वस्थ्य हो जाता है तो प्राण ऊर्जा ही प्रतिरोधक क्षमता रूप ग्रहण कर स्वास्थ्य प्रदान करने की चेष्टा में लग जाती है।

13.2 उद्देश्य

प्राण ऊर्जा का अध्ययन ।

प्राण ऊर्जा प्रतिरोधक क्षमता में सम्बन्ध का अध्ययन ।

प्रतिरोधक क्षमता व्यय तथा व्यय को कम करने के साधन का अध्ययन ।

13.3 प्राण व प्राण शक्ति (ऊर्जा)

''प्राण'' शब्द का सामान्य अर्थ गति–संचालन तथा सूक्ष्म स्तर पर कम्पन का सूचक होता है। प्रकृति में जितने भी पशु–पक्षी तथा अन्य प्राणी है। उनकी गतिविधियों को एकाग्र होकर देखें तो ज्ञात होगा कि उनमें कोई शक्ति विद्यमान है जो उनको चलने, उड़ने, बोलने के कार्य को संचालित करती है। प्राणियों में जीवन की स्थूल से सूक्ष्म क्रियायें जो भी होती है जैसे हृदय की धड़कन, श्वास–प्रश्वास, आदि जो निरन्तर रहती है वह शक्ति ''प्राण'' रूप में होती है। संक्षेप में हम कह सकते है कि प्राण एक ऊर्जा है, बल है, एक शक्ति है जो प्रत्येक जीवधारियों में जीवन को गत्यात्मकता, लयात्मकता तथा निरन्तरता प्रदान करती है तथा जीवन की सम्पूर्ण गतिविधियों को समुचित रूप से सक्रिय रखती है। मनुष्य में जब शक्ति क्षीण हो जाती है तब उसकी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा भावनात्मक गतिविधियां भी धीमी गति से सम्पन्न होती है तथा उनके कार्य करने की क्षमता तथा तीव्रता भी कम हो जाती है तथा अन्ततः जब प्राण शक्ति समाप्त हो जाती है तो प्रायः यही कहते है कि अमुक व्यक्ति के प्राण निकल गये और मृत शरीर ही रहना है।

प्राण शब्द पर विशेष व्याख्या करते हुये ''तंत्र शस्त्र'' में वर्णन मिलता है कि प्राणियों के हृदय में उपस्थित प्राण ''प्राणन'' क्रिया करने कारण हो प्राण कहलाता है।

प्राणिना मुरसि स्थितः । प्राणनं कुरूते यस्मात्रस्मात्प्राणः प्रकीर्तित : श्री अरविन्द जी के शब्दों में ''प्राण या प्राण–ऊर्जा, अणुपर्यन्त हर तत्व या रूप में विद्यमान है। क्योंकि सर्वत्र सारा रूप में यह चित्र शक्ति ही है जो अपने ही रूपों की भौतिक सत्ता को परिवर्तित कर रही है तथा संज्ञान के साथ गुप्त रूप से क्रियशील है। यह सर्वव्यापी ''प्राण तत्व'' है जिसने इस जगत् को अभिव्यक्त किया है और जो इसमें बसा हुआ है''– दि लाइफ डिवाइन, वाल्यूम–18, पृष्ठ सं0– 187

शरीर की ज्ञानेन्द्रियां (आंख, कान, नाक, जीभ व त्वचा) और कर्मेन्द्रियों में और मन में विचार तरंगों व बुद्धि की तार्किक युक्तियों तथा अंह के अंहकार में प्राण की क्रियाशीलता को प्रत्यक्ष लक्ष्य किया जा सकता है।

प्राण सर्वत्र है, चैतन्य है, ब्रह्माण्ड के प्रत्येक गतिमान पिण्ड में प्राण स्थिति प्रत्यक्ष प्रतीत होती है।

प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् – प्रश्न उप0 2.6

प्रश्न उपनिषद में प्राण को विश्व का आधार बताया गया है। इसी तत्व के होने से सभी तत्व स्थित व प्रतिष्ठित होते है। प्राण को वायु व चेतना के साथ में माना गया है। प्राण के रहने अथवा होने से आयु का शेष रहना माना जाता है। प्राणों के द्वारा जीवन की प्रत्येक गतिविधि का संचालन होता है तथा प्राण के अभाव होने पर सबका अभाव हो जाता है। प्राण ही वायु के रूप में श्वास–प्रश्वास द्वारा जीवन की लय को निरन्तर बनाये रखता

है। प्राण वायु के अवरूद्ध होने के कारण प्राण के अभाव में प्राणी मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। संक्षेप में हम यह भी कह सकते है कि प्राण की प्रमुखता तथा सार्वभौमिकता के कारण चेतना के प्रकृति मिश्रित रूप को प्राणी कहा जाता है तथा प्राण ही शरीर को धारण करता है जो मुंह अथवा नासाछिद्रों द्वारा अन्दर बाहर संचार करता है। वही प्राण कहा जाता है।

13.4 प्राण का प्रादुर्भाव

प्राण के प्रादुर्भाव के विषय पर चिंतन करने पर यह तथ्य सामने आता है कि प्राण चैतन्य स्वरूप है अर्थात् चेतन है तथा इसका उद्‌गम स्थान प्रकृति है, प्रकृति जड़ स्वरूप है तथा सर्वप्रथम प्रकृति में कम्पन या स्पन्दन होने पर ही लय, गतिशीलता क्रियाशीलता के रूप में प्राण का चैतन्य सत्र की आत्मशक्ति से ही उद्‌गम है। अतः हम यह कह सकते है कि प्राण प्रकृति का सर्वप्रथम प्रादुर्भाव है।

जड़ (प्रकृति) एवं चेतन के संयोग से सूक्ष्मतम प्रकृति में जो कम्पन होता है अथवा स्पन्दन होता है, वह प्राण है। मानवीय धरातल पर प्राण को मन एवं शरीर के बीच की कड़ी के रूप में मान्यता दी है।

''प्राण मन एवं शरीर का गत्यात्मक जोड़ है''

– श्री अरविन्द सप्लीमेंट वाल्यूम 27, पृ0 383

जीवन की प्रत्येक गतिज–ऊर्जा प्राण की ही प्रतिरूपा है।

शौवागम में भी प्राण को चैतन्य का स्वरूप बताया गया है। यह प्राण चैतन्य को प्रथम रूप में रूपान्तरण अथवा प्रादुर्भाव की मान्यता दी गई है।

''प्राण संवित्प्राणों परिणता''– भट्ट कल्लर, तत्वार्थ चिन्तामणि में इस प्रकार का वर्णन मिलता है।

अधिकतर शास्त्रों में चेतना को आत्मा के रूप में वर्णन किया है तथा आगे व्याख्या करते हुये इसी से प्राण की उत्पत्ति को माना है। नेत्र तंत्र के 8.28 में भी वर्णन इस प्रकार मिलता है।

''चैतन्यमात्मनों सपम''

कुछ शास्त्रों में ऐसी भी व्याख्या है कि परम चेतना जो परमात्मा स्वरूप है उसके आत्मचिंतन के परिणाम स्वरूप प्राण का सृजन किया है तथा उसी से अन्य सप्त प्राण (प्राण की विभिन्न गतियों की अभिव्यक्ति हुई है। मंण्डूक उपनिषद में 2.18 में वर्णन है कि

''सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्'' अन्ततः यह कह सकते है कि परम चेतना स्वरूप परमात्मा के द्वारा प्रकृति सृजन करने के पश्चात प्रकृति को चेतना के रूप देकर प्राण का प्रार्दुभाव किया है।

प्राण ऊर्जा जिसको एक विस्तृत ऊर्जा कहा जाता है। विश्व ऊर्जा ब्रह्माण्डीय ऊर्जा एवं प्राण ऊर्जा कहते है। यह एक ऐसी ऊर्जा है जो सूक्ष्म है, ध्यान की अवस्था में ही इसे अनुभव किया जा सकता है। ध्यान कठिन नहीं है, एक चरित्रवान, गुणवान एवं भारतीय संस्कृति का पालन करने वाला व्यक्ति क्रियात्मक योगा किये बिना इसका अनुभव कर सकता है। सामान्य व्यक्ति के लिए इसके बिना कार्य कर पाना सम्भव नहीं। इसलिए इसे जीवन शक्ति भी कहा जाता है। जन्म से बच्चा पलक झपकाता है और हिलाता है, रोता है, हंसता है, हर काम जो उससे हो सकता है ऊर्जा के साथ करता है। इसे देखकर कहा जाता है कि बच्चा स्वस्थ एवं प्राण ऊर्जा से भरपूर है। मेरी बेटी के जन्म के एक दिन

पश्चात चिकित्सक कमरे में देखने आयी, बच्ची की पलके झपकाते, पैर हिलाते देख उन्होने कहा जाता है बच्चा पूर्ण स्वस्थ है इसे ही प्राण ऊर्जा की अधिकता कहा जाता सकता है।

बच्चे के शारीरिक विकास के साथ उसका हिलना–डुलना, हाथ पैर चलाना, हंसना–मुस्कुराना, रोना, घुटनो से चलना, बैठना, खड़ा होना, दौड़ना, खेलना, कूदना यही तो काम है जिससे उसकी प्राण ऊर्जा भरपूर मात्रा में रहती है। बच्चे के शारीरिक विकास के साथ उसकी सुरक्षा की चिन्ता में स्थानाभाव के कारण माता–पिता के पास समयाभव के कारण बच्चे का खेलना प्रकृति से दूर होना आम बात हो गयी है। परिणामस्वरूप प्राण ऊर्जा की कमी के कारण वह आलसी, चिड़चिड़ा, जिद्दी अथवा हाइपर एक्टिव हो जाता है। माता–पिता इस चिन्ता में बच्चे को इस चिकित्सक से उस चिकित्सक, मनोवैज्ञानिक मनोचिकित्सक से झाड़–फूक आदि के चक्कर लगाने लगते है। बच्चो के साथ खेलना–कूदना हंसने का समय उनके पास नहीं होता, खेलने, कूदने, दौड़ने से बच्चे में प्राण ऊर्जा का विकास का संतुलन बनता है। आधुनिक युग में बच्चे को कम्प्यूटर, टीवी के खेल, स्मरण शक्ति बढ़ाने के प्रयोग सब कुछ इलैक्ट्रानिक कमरे के अन्दर, प्रकृति से दूर कर उसमें स्वाभाविक शारीरिक व मानसिक विकास प्राण ऊर्जा के असंतुलन के परिणाम स्वरूप अवरूद्ध हो जाता है। जिसके कारण उसका मन किसी कार्य में नहीं लगता, बेमन से किये गये कार्य असफलता की ओर ले जाता है जिससे हीन भावना पनपती हैं। स्वामी विवेकानन्द जी बच्चो व युवाओं को तीव्र गति के खेल खेलने का सुझाव देते है।

विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन बच्चों को खिलाना माता–पिता का शौक हो गया है। अधिक स्वादिष्ट व्यंजनों से पोषण तत्वों के एवं प्राकृतिक एवं कच्चे तत्वों का प्रयोग कम होता जाता है तथा फूड और जंक फूड ने बच्चों की जीवन शैली को अप्राकृतिक बना दिया। पाचन तंत्र के खराब होने के कारण पचे पदार्थ का अवशिष्ट एवं अध पचे पदार्थो की गंदगी शरीर के उत्सर्जन करने वाले अंगो की प्रक्रिया धीमी हो जाती है। शरीर में गंदगी के फसे रहने से शरीर में प्राण ऊर्जा के मार्ग में बाधा पड़ती है, जिसके परिणाम स्वरूप बच्चे थोड़े चिड़चिड़े और अवसाद ग्रस्त हो जाते है। यदि मां–बाप से संस्कार भी न मिले तो अपराधी भी बन सकते है। यह विचार करने की आवश्यकता है कि स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गांधी, विनोबा भावे, रविन्द्रनाथ टैगोर, सरदार पटेल, जगदीश चन्द्र बसु, प्राचीन काल के महर्षि पतंजलि व लाल बहादुर शास्त्री आदि महापुरूषों के देश में जलहीन, गुणहीन, नौजवान क्यों ?

कारण पश्चिमी सभ्यता का अंधा अनुकरण भारतीय संस्कृति के प्रति निराशा व हताशा का भाव योग की विधि की अवहेलना करना प्राण ऊर्जा का अभाव लगता है। आज के भौतिक युग में प्राण ऊर्जा का मापन यंत्रो से संभव नहीं है। अतः प्राण ऊर्जा को समझने की आवश्यकता है।

महात्मा गांधी ने प्राण ऊर्जा के महत्व को समझने के लिए राम तत्व पर जोर दिया जबकि प्राकृतिक चिकित्सा में पांच तत्वों के बारे में बताया गया, तो महात्मा गांधी ने यह छठा तत्व क्यों बताया ?

प्राचीन काल में प्राकृतिक चिकित्सा भारत में विद्यमान थी, धीरे–धीरे राक्षसी प्रवृति बढ़ने के कारण यह लुप्त हो गयी है और औषधि से रोग का उपचार होने लगा। ईसा पूर्व से ही विदेशों में प्राकृतिक चिकित्सा टिपोक्रेटिस द्वारा आरम्भ की गयी फिर 18वीं शताब्दी में इग्लैण्ड, जर्मन, अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि में प्रकृति के पांच तत्वों आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी द्वारा चिकित्सा प्रारम्भ हुई। भारत ने आधुनिक समय में प्राकृतिक चिकित्सा का

प्रारम्भ लुई कूने की पुस्तक ''साइंस ऑफ हिलिंग' के साथ हुई। जब महात्मा गांधी एडोल्फ जस्ट की पुस्तक ''रिटर्न टू नेचर'' पढ़ी तब उन्होने प्राकृतिक चिकित्सा में स्वंय, परिवार एवं आश्रय वातियों पर प्रयोग करना आरम्भ किया। अपने शोध में उन्होने पाया कि इससे छठवें तत्व ही प्राण ऊर्जा का सबसे बड़ा स्त्रोत है। इसको महत्व कहा गया। अब विचार करें कि यह महत्व क्या है ?

श्रीमद्‌भागवत गीता में कहा गया है :–

''क्षेत्रज्ञं चाषि मां, विद्वि सर्वअेत्रेषु भारत''।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोज्ञानि यत्रन्ज्ञानं मतं मम ।।''

श्री कृष्ण कहते है भारत वंशी मैं समस्त शरीरी का ज्ञाता हूॅ। इस शरीर और शरीर के ज्ञाता की जान लेना ही ज्ञान कहलाता है। अर्थात् आत्मा अलग–अलग शरीर में है परन्तु परमात्मा सारे संसार, सभी जीवों में व्याप्त है। अर्थात् परमात्मा को सभी शरीरों का ज्ञान है। इसी प्रकार हमें भी अपने शरीर एवं शरीर को चलाने वाले परमात्मा का ज्ञान होना चाहिए। इसे अनुभव करने पर हमें जो ऊर्जा मिलती है। वही प्राण ऊर्जा है। एक बार इन्द्र की सभा में अग्नि, जल, वायु की आपस में बहस छिड़ गयी कि इस संसार में सबसे शक्तिशाली कौन है ? साथ में कार्य करने वाले सभी महाप्रभु आपस में लड़ पड़े। बहस में सुबह से शाम हो गयी। इस बीच सबने देखा कि धीरे–धीरे वह उनके निकट आ रहा है और देवी के रूप में परिवर्तित हो गया। इन्द्र ने पूछा ! देवी आप कौन है यहां आने का क्या कारण (प्रयोजन) है ? देवी ने कहा :– इस संसार को चलाने वाले सभी देव आपस में लड़ रहे है तो मैं, सम्भवतः उनकी समस्या का समाधान कर सकूॅ। तभी अग्निदेव बोले मैं सबसे शक्तिशाली हूॅ क्योकि मैं पूरे संसार को भस्म करने की शक्ति रखता हूॅ। देवी ने कहा यह तिनका है इसे जलाकर दिखाओं अग्नि के अनेक प्रयास के पश्चात भी वह नहीं जला। तभी हंसकर वायुदेव बोले मैं बड़े–बड़े वृक्ष पर्वत को उखाड़ सकता हूॅ और समुद्र में ऊफान ला सकता हूॅ। देवी ने फिर उसी तिनके को उड़ाने की बात कही परन्तु बहुत प्रयास के पश्चात भी वह तिनका टस से मस न हुआ। अन्त में जलदेव ने अपनी शक्ति बखान करते हुये कहा :– मैं अपार जल के ऊफान से सब कुछ नष्ट कर सकता हूॅ। देवी ने उसी तिनको को बहाने की बात कही परन्तु वह भी कुछ नहीं कर पाया। तब देवी ने कहा सबको अलग–अलग कार्य करने हेतु ईश्वर ने बनाया है लेकिन उसकी शक्ति बिना सब कुछ अप्रभावी है। इसी शक्ति का नाम प्राण ऊर्जा है।

13.5 प्राण का स्वरूप

प्राण का अर्थ है निरन्तर गतिशील, प्रकाशमय संचलन जो कि प्राणियों में हृदय की केन्द्रीय धड़कन, स्पन्दन, धमनी व शिराओं रक्त का परिवहन, नाड़ियों में संवेदन तथा श्वास व प्रश्वास का निरन्तर क्रियान्वयन, तथा शरीर विभिन्न जैविक, रासायनिक क्रियाओं के होने से परिणाम स्वरूप उत्पन्न विजातीय द्रव्य, मल आदि का निष्कासन आदि के रूप में क्रियाशील रहना ।

शास्त्रों में प्राण पर विशेष वर्णन है जिसमें से कुछ निम्न है

''प्राणों व अमृतम्'' (प्राण अमर है)	वृहद उप0	1.6.3
''प्राणो वै सत्यम्'' (प्राण सत्य है)	''	2.1.20
''प्राणो वै बलम्'' (प्राण बल है)	''	5.14.4

शास्त्रों वर्णित प्राण के स्वरूप को ऊर्जामय, तेजोमय, शक्ति मय, सत्य एवं अमर होने की पुष्टि करते है। प्राण ही वह तत्व है जिसमें प्रत्येक गति, गति–नियम, गति विज्ञान तथा गतिज ऊर्जा के रहस्य व सिद्धान्त समाहित है। प्राण का ज्ञान विश्व–रचना से जुड़े प्रत्येक प्रश्न को उद्घाटित व प्रकाशित कर सकता है।

प्राण दो प्रकार के अर्थ अभिव्यंक होता है। प्रथम तो यह सूक्ष्म जगत को प्रदर्शित एवं परिभाषित करता है। उस सार–तत्व को जो हमारे शरीर को जीवित रखता है। दूसरा यह प्रश्वसन का परिचालक है जो शरीर, मन, इन्द्रिय, अहं एवं बुद्धि का बहिर्गमन का रूप है।

प्राण को वायु के रूप में भी माना गया है। वायु के रूप में प्राण को मान्यता देकर पुनः वायु को पांच भाग तथा उपवायु को भी पांच भाग में विभाजित किया गया है।

प्राण को पांच वायु–प्राण, अपान, समान, ब्यान तथा उदान के नाम से विभाजित किया गया है जिनके कार्य व स्थान भी भिन्न है।

वायु को पांच उपवायु में भी विभाजित किया है जिनकों नाग, कूर्म, कृकर, देव दत्त एवं धनंजय से नामित किया गया है। जिसमें नाग वायु डकार द्वारा पेट के भार को कम करता है, कूर्म प्राण (वायु) के द्वारा पलकों की क्रियाऐं भी नियंत्रित होती है जिससे आंखो में विजातीय द्रव्य, धूल कण, कीट आदि पदार्थ न पड़ सकें तथा देखने के लिए प्रकाश घनत्व को विनियमित किया जा सकें। कृकर प्राण (वायु) छींकने या खांसने में सहायता प्रदान करता है जिससे नाक तथा गले के द्वारा कोई भी बाहर पदार्थ प्रवेश न कर सके तथा प्रवेश करने की कोशिश करने के प्रतिक्रिया स्वरूप ही छीकने तथा खासने की क्रिया होती है। देवदत्त उबासी उत्पन्न करता है जिससे निद्र का आभास होता है तथा यह विश्राम करने की आवश्यकता का संकेत भी होती है। धनंजय कफ को पैदा करता है, पोषण करता है तथा मृत्यु के पश्चात भी शरीर में स्थित रहता है जिसके कारण ही अधिक देर हो जाने पर शव को फुला देता है।

13.6 प्राण की अवधारणा

जिस प्रकार ईश्वर की व्याख्या करना कठिन कार्य है। उसी प्रकार प्रकृति का अति सूक्ष्म तत्व होने के कारण ''प्राण'' की व्याख्या करना भी कठिन कार्य है। अति सूक्ष्म होने के कारण ही प्राण ब्रह्माण्ड के कण–कण में व्याप्त है। अतः शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, लौगिंक, अध्यात्मिक और ब्रह्मांडीय ऊर्जा के रूप में सर्वत्र स्वीकार्य है। ताप, प्रकाश, गुरूत्व, चुम्बकत्व, विद्युत को भी प्राण रूप ही माना जाता है। यह ऊर्जा सभी प्राणियों में गुप्त अथवा संशय रूप में होती है जो भय के समय अपनी क्षमता के साथ प्रकट हो जाती है। और सभी क्रिया की मुख्य चालक है। ओज, शक्ति, जीवन क्षमता, जीवन और आत्मा में प्राण रूप है क्योकि यह वह ऊर्जा है जो जन्म देती है, सुरक्षा देती है तथा नष्ट भी करती है। शतपथ ब्राह्यमण्ड में लिखा ''प्राण आत्मा (परम चेतना) का शरीर है'' अतः यही जीवन का नियम व आत्मा के सामन माना जाता है। ब्रह्मामण्ड के सभी जीवों की श्वासों का आधार प्राण ही है। वे इसी के द्वारा उत्पन्न होते है तथा इसी सहारे जीवित रहते है और मरणोपरान्त उनकी वैयक्तिक श्वासें ब्रह्मण्डीय श्वासों परणित हो जाती है। प्राण में ही प्रत्येक वस्तु विद्यमान है। इसमें जीवन दायक सूर्य बादल वायु पृथ्वी और सभी प्रकार के पदार्थ व्याप्त हो यह सत और असत भी है। सांख्य दर्शन का पुरूष है इसलिए योगीगण प्राण की शरण में जाते है।

श्वास भी प्राण का ही एक स्वरूप है जो प्राणियों में मुख्य अथवा नासिका द्वारा अन्दर–बाहर निरन्तर गमन करता हुआ जीवन की गत्यात्मकता तथा लय को बनाये रखता है तथा जब तक प्राण इस प्रक्रिया द्वारा क्रियाशील रहता तभी तक वह प्राणी सजीव कहलाता है तथा इस श्वास व प्रश्वास की क्रिया अवरूद्ध हो जाने पर या निष्क्रिय हो जाने पर प्राणी निर्जीव हो जाता है तथा मृत शरीर के रूप में मान लिया जाता है।

हठयोग प्रदीपिका के तीसरे अध्याय में स्वात्माराम ने वर्णन किया है कि जब तक श्वास और प्राण निश्चेष्ट होते है तब तक चित्त भी स्थिर रहता है। इस अवस्था में वीर्य (शुक्र) का निपात नहीं हो सकता है। तत्पश्चात मनुष्य ओजवस्ता की वृद्धि होती है तथा वह उत्कृष्ट तथा उच्च लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उदात्तीकरण होने लगता है तथा प्राण उर्ध्वःगति को प्राप्त करता है इस स्थिति में प्राण अपनी लौंगिक ऊर्जा का उदात्तीकरण कर लेता है तथा चित्त शुद्ध चेतना में विलीन हो जाता है।

प्राण वायु के रूप में रूपान्तरित होकर देह जीवन की तय बनाये रखता है। प्राचीन महर्षियों ने अपने ज्ञान, व्यवहार तथा अनुसंधान के द्वारा वायु जो प्राण स्वरूप है, को पांच प्रकार की वायु में विभाजित किया गया है तथा उनको प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान का नाम दिया गया है।

(1) प्राण वायु अनाहत चक्र में गतिशील रहकर श्वास क्रिया को नियंत्रित करता है। यह सशक्त वायु मण्डलीय ऊर्जा को सोख लेता है। प्राण वायु मुख और नासिका में संचार करती है जो हृदय पर्यन्त वृत्ति है जहां वह प्रणयन के कारण ही 'प्राण' कहलाती है। प्राण को ही प्रमुख वायु की मान्यता है अन्य चार तो सहयोगी का कार्य करती है। उद्घृत, याष्य, श्वेत उपनिषद में 2.2.8 निम्न प्रकार से वर्णन किया गया है।

पञचप्राणाः समाख्याता वायवः प्राणमाश्रिताः ।
प्राणों मुख्यतमस्तेषु सर्वप्राण मृतां सदा ।।

अर्थात् समस्त प्राणियों के शरीर में पांचों प्राण उस एक प्राण के आश्रित पांच दैहिक वायु है जिनमें प्राण मुख्यतम वायु है।

(2) अपान वायु निचले उदर क्षेत्र गतिशील रहकर मल मूत्रादि को नीचे की ओर ले जाती है तथा गुदा लिंग द्वारा शरीर से इनका निष्कासन करती है। इसका स्थान गुदा में माना गया है।

(3) समान वायु जठराग्नि को प्रज्जवलित करके भोजन के पाचन क्रिया में सहायक होती तथा शरीर को पोषण के साथ–साथ उदर के अन्य अंगो को सव्यस्थित रूप में कार्य करने के लिए सुरक्षित भी रखती है। इसका स्थान उदर में माना गया है।

(4) उदान वायु गले (ग्रसनी व स्वर यंत्र) द्वारा काम करता है तथा स्वर तंत्र, वायु तथा भोजन को अंतग्रहण को नियंत्रित करता है। यह वायु उत्कर्ष होती है तथा प्राण के उत्कर्षण का कारण होती है तथा यह पगतंत्र से लेकर मस्तक पर्यन्त रहता है उर्ध्वगमन होने के कारण इसे उदान कहते है।

(5) ब्यान वायु समस्त शरीर के व्याप्त रहकर भोजन तथा श्वास द्वारा प्राप्त ऊर्जा को धमनियों, शिराओं और नाड़ियों द्वारा ऊर्जा को सम्पूर्ण शरीर में संचार करता है। यह प्राण व अपान की संधि भी कहलाता है तथा बल की आवश्यकता रखने वाले कर्मों का कारण होता है।

13.7 प्रतिरोधक क्षमता की अवधारणा

प्रत्येक छोटे अथवा बड़े कार्य करने हेतु हमें शक्ति की आवश्यकता होती है। अर्थात् बिना शक्ति को व्यय किये शरीर की आन्तरिक या बाह्य गतिविधियों को क्रियान्वित नहीं किया जा सकता है। इस शक्ति को प्राण शक्ति अथवा जीवनी शक्ति भी कहा जाता है। यह वह जीवनी शक्ति है जिससे प्रकृति एवं पुरूष की सभी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक क्रियाऐं सम्पन्न होती है।

प्रचलित मतों के अनुसार शरीर में चय–अपचय क्रियाऐं होती रहती है। जिनके परिणाम स्वरूप शरीर में उष्णता पैदा होती है। वही मानव शरीर को जीवनी शक्ति प्रदान करती है। सूत्रों के अनुसार यह बाह्य शरीर (अन्नम कोश) से उसी प्रकार भिन्न है जैसे विद्युत का बल्ब व इसमें उपस्थित कार्बन का फिलामेन्ट जिससे यह ताप व प्रकाश का प्रदर्शन करता है तथा जिस प्रकार बल्ब के टूटने से प्रकाश विलुप्त हो जाता है किन्तु विद्युत शक्ति का अस्तित्व बना रहता है, इसी प्रकार भौतिक शरीर के नष्ट होने पर भी शक्ति का अस्तित्व प्रत्यक्ष हटकर परोक्ष रूप में अध्यात्मिक शरीर में अवस्थित हो जाता है। अतः निर्मल शरीर में होने वाली जीवनी शक्ति की कार्य शैली ही स्वास्थ्य है तथा विभिन्न प्रकार के प्रोटीन जैसे लाईपो प्रोटीन, ग्लाइकोप्रोटीन, न्युक्लियों प्रोटीन आदि के अस्तित्व में रहने के अलावा अधिक मात्रा में एकत्र होने पर शरीर के विजातीय तत्व भी है जिसे जीवनी शक्ति की रोग मूलक की चेष्ठा भी करता है।

प्राण शक्ति का संचालन भिन्न रूपों में तथा भिन्न मार्गों में संचारित होता है।

(1) अग्नि के रूप में यह जठराग्नि, क्रोधाग्नि, कामग्नि के रूप में प्रकट होकर क्रमशः पाचन, अहं तथा सृजन का कार्य करती है।

(2) ज्ञानेन्द्रियों (आँख, कान, नाक, जीभ व त्वचा) में क्रमशः दृष्य शक्ति, श्रवण शक्ति, घ्राण शक्ति, रसन शक्ति तथा स्पर्श शक्ति के रूप में प्रवाहित होकर मन व मस्तिष्क को विषयों के प्रति आभास करवाती है।

(3) प्राण शक्ति का संचालन कर्मेन्द्रियों में भी प्रवाहित होता रहता है जिससे प्राणियों के चलने–फिरने, व्यवसायिक, व्यवहारिक एवं नैतिक तथा सामाजिक कार्य सुचारू रूप सम्पादित होते रहते है।

(4) शरीर में जैव रासायनिक क्रियायें होती रहती है जिनमें पाचक रस बनाना, अन्तः स्रावी ग्रन्थियों द्वारा हारमोन्स का स्रवण होना जो जीवन की अन्य महत्वपूर्ण क्रियाओं को नियंत्रित एवं क्रियान्वित करते है तथा शरीर में चयापचय क्रियाऐं होते रहने से अन्त में मल, विषाक्त द्रव्य भी बनाते रहते है जिनको शरीर से बाहर निष्कासित करने में प्राण शक्ति या जीवनी शक्ति की आवश्यकता होती है।

प्राण शक्ति हमे जन्म से ही ईश्वर कृपा से प्राप्त होती है तथा यह सीमित होती है। यह शक्ति न तो भौतिक शक्ति के रूप में मानी जा सकती है और न ही रासायनिक। इस शक्ति को हम देख भी नहीं सकते है तथापि यह शरीर में विद्यमान रहती है। इसका प्राणी अनुभव कर सकता है तथा यह भी सत्य हैं कि इस शक्ति के अभाव में कोई भी शारीरिक, मानसिक अथवा बौद्धिक या भावनात्मक क्रियाऐं नहीं हो सकती।

मनुष्य के शरीर में जिस शक्ति के विद्यमान रहने से जीवन का बोध होता है एवं इन्द्रियों (ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रिया) अपना कार्य करने में समर्थ होती है उसे जीवनी शक्ति की संज्ञा दे सकते है। शरीर, मन, इन्द्रिय, अहं एवं बुद्धि के समस्त क्रिया कलाप इसी जीवनी शक्ति द्वारा संचालित होते है। जीवनी शक्ति अथवा प्राण शक्ति ही वास्तविक जीवन के परिचायक है। मनुष्य जो मांस, मांसपेशियों, हड्डियों तथा रक्त से बना नहीं है वह केवल

जीवनी शक्ति अथवा प्राण शक्ति का एक प्रत्यक्ष रूप ही होता है। शरीर में जो भी कुछ है वह जीवनी शक्ति अथवा प्राण शक्ति ही है तथा उसके अभाव या न रहने पर कुछ भी शेष नहीं रहता है।

शरीर में विजातीय द्रव्य एकत्र होने पर विषाणु अथवा रोगाणु उन्हीं पर पोषण .एवं वृद्धि करते है तथा शरीर में रोग के रूप में लक्षणों के द्वारा प्रदर्शित हो तथा शरीर को रोगी बना देते है।

जो शक्ति रोगी शरीर में रोगाणुओं से लड़ती है, विरोध करती है। वह शक्ति प्रतिरोधक क्षमता कहलाती है। जब प्रतिरोधक शक्ति प्रबल होती है, रोगाणुओं का भक्षण करती है। इस प्रक्रिया में रक्त की श्वेत रक्त कणिकाऐं मुख्य भूमिका निभाती है। जब प्रतिरोधक क्षमता क्षीण होती है जब रोगाणु श्वेत कोशिकाओं का भक्षण करते है। मवाद आदि में परिवर्तित करते है, मानव शरीर जीर्ण रोगो से ग्रस्त हो जाता है।

अतः जहां प्राण शक्ति शरीर की शारीरिक, मानसिक बौद्धिक अथवा भावनात्मक गतिविधियों को सुचारू रूप से संचालित करती है तथा सृजनात्मक कार्य करती है। वहीं जब शरीर में विजातीय द्रव्य, दूषित या दूषित विचार, भाव आदि मन, मस्तिष्क अथवा शरीर में अधिक मात्रा में एकत्र हो जाते है तथा उनके एकत्र होने पर रोगाणु, विषाणु आदि इसको करके वृद्धि एवं सशक्त होकर शरीर में आक्रमण करते है। तब यह प्राण शक्ति, प्रतिरोधक क्षमता का रूप धारण करके प्रतिरोध करती अपनी शक्ति के अनुसार अपना कार्य करके मानव शरीर को स्वस्थ रखने का प्रयत्न करती है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्राणशक्ति, जीवनी शक्ति तथा प्रतिरोधक क्षमता तथा अग्नि सभी पर्यायवाची है। शरीर में व्याप्त परमेश्वर के अंश चेतना स्वरूप है। भगवद् गीता में भी कहा है :–

अहं वैश्नारो मूत्वा प्राणिनां देहमिश्रतः ।
प्राणायान समायुक्ता पचाम्यन्तं चतुर्विघम् ।।

अर्थात् – मैं स्वंय वैशवानर (जठराग्नि) के रूप में समस्त प्राणियों के शरीर में रहता हूँ। चारों प्रकार के भोजन को पचाता हूँ।

जब आधुनिक जीवन शैली को अपना कर अथवा प्राकृतिक के नियमों की अवहेलना द्वारा मनुष्य में विजातीय द्रव्य, दूषित मल आदि अधिक मात्रा में एकत्र होने पर शारीरिक, मानसिक विकार उत्पन्न हो जाते है तथा उन विकारों को शरीर से बाहर निष्कासित करने के बजाय औषधियों द्वारा शरीर में ही रम किया जाता है तथा शरीर की प्रतिरोधक क्षमता भी क्षीण हो जाती है इसके साथ यदि मन चिन्ताग्रस्त हो जाये, बुद्धि शंकालु होकर भय ग्रस्त होने लगे और वियोग का दुःख भी सताने लगे, तो ऐसी दशा में आन्तरिक शक्ति को पुनः प्राप्त करने के पश्चात ही शरीर रोग से रहित हो सकता है। अन्यथा न बुद्धि से मय मिट सकता है और न ही अंह से वियोग का दुःख ही समाप्त किया जा सकता है।

13.8 सारांश

आपने ऊपर इकाई में प्राण व प्राण की अवधारणा एवं प्रतिरोधक क्षमता के विषय में विस्तृत अध्ययन किया । इसमें आपने जाना कि हमारे अन्दर चलने फिरने की अथवा गतिशीलता की शक्ति का संचालन आन्तरिक प्राण की ऊर्जा से होता है। सम्पूर्ण जगत में ऊर्जावान बने रहने के लिए आवश्यक है कि हम प्राण के महत्व को भली–भांति इस बात से समझ पाते है कि किसी भी प्राणी का जीवित रहना या न रहना इस बात पर निर्भर करता है, कि

उसमें प्राण है या नहीं। अर्थात् यदि जीवित है तो प्राण भी है और जीवन नहीं है तो प्राण भी नहीं है। प्राण ही गतिविधियों का संचालन करता है। यह पूरे शरीर में प्रीभ्रमण करता रहता है इसको न देख सकते है। इसे न नापा जा सकता है। उदाहरण के लिए आचार्य शेषाद्रि ने समझाया है कि जैसे हाथ में बांधी जाने वाली घड़ी को देखकर यह समझना मुश्किल है कि यह किस प्रकार से चल रही है। उसके अन्दर क्या कल पुर्जे लगे है अथवा उसके अन्दर ऐसी कौन सी शक्ति काम कर रही है जो उसको चला रही है। इसको जानने के लिए हमें घड़ी के अन्दर जाकर उसकी शक्ति को जानना होगा। एक और अन्य उदाहरण के द्वारा हमने समझने का प्रयास किया है जैसे रोगियों के अन्दर से जो आवाज सुनाई देती है वह रेडियो में से न आकर वह आकाशवाणी केन्द्र से प्रशारित होकर उसमें सुनाई देती है। इसी प्रकार से प्राण का स्रोत हमे दिखाई नहीं पड़ता इसका विस्तृत अध्ययन इसमें हमने किया है। दूसरा हमने जो अध्ययन किया वह है प्रतिरोधक क्षमता। यह एक ऐसी शक्ति है जो खान–पान योग प्राणायाम आचार–विचार –व्यवहार दिनचर्या एवं जीवनशैली के द्वारा प्रभावित होती है। यदि हमारी उपरोक्त आदतें व्यवस्थित है अथवा कर ली जाती है तो पक्के तौर पर प्रतिरोधक क्षमता इतनी अच्छी हो जाती है कि छोटे मोटे रोगो का कोई खतरा नहीं रहता । प्रतिरोधक क्षमता पर पंचतत्वों का एवं ध्यान प्राणायाम का कितना प्रभाव पड़ता है इसका विस्तृत अध्ययन किया, प्रतिरोधक क्षमता जलवायु अथवा पर्यावरण से भी प्रभावित हो जाती है। यदि हम निरोगी बनना चाहते है तो हमें अपनी प्रतिरोधक क्षमता को इतना विकसित करना होगा कि आस–पास के वायु मण्डल का दुष्प्रभाव हमारे शारीरिक मानसिक, आध्यात्मिक व सामाजिक स्वास्थ्य पर न पड़ सकें । उपरोक्त बहुमूल्य जानकारी हमारे विद्यार्थी जीवन को ही नहीं अपितु सम्पूर्ण जीवन यापन में उसका विशेष महत्व प्राप्त होगा।

13.9 सन्दर्भ ग्रंथ

मनुष्य में प्राण के आयाम – अमृता भारती
आदि ऊर्जा प्राण – अमृता भारती
प्राकृतिक चिकित्सा सागर – डॉ0 गौरी शंकर मिश्र

13.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न–1 प्राण ऊर्जा की संक्षेप में व्याख्या कीजिए तथा इसके विभिन्न स्वरूप का वर्णन कीजिए ।

प्रश्न–2 प्रतिरोधक क्षमता से क्या तात्पर्य है अच्छे स्वास्थ्य इसकी उपयोगिता तथा योगदान समझाइयें ।

इकाई –14 प्राण ऊर्जा एवम् प्रतिरोधक क्षमता का सम्बन्ध

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 प्राण ऊर्जा
14.4 प्रतिरोधक क्षमता
14.5 प्राण ऊर्जा एवम् प्रतिरोधक क्षमता का सम्बन्ध
14.6 सारांश
14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ
14.8 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

प्राण ऊर्जा प्रकृति प्रदत्त एक विस्तृत ऊर्जा कहलाती है। यह एक ऐसी शक्ति है जिसको केवल अनुभव किया जा सकता है। अर्थात् यह अति सूक्ष्म ऊर्जा है इसलिए इसको स्पष्ट रूप से देखना कठिन है। इसको देखने के लिए हमें इसे अनुभव करना आवश्यक हो जाता है और अनुभव करने के लिए ध्यान सीखना आवश्यक है। क्योकि ध्यान की अवस्था में ही अनुभव करना अपेक्षित है। इसको विभाजित नहीं किया जा सकता है।

प्राण को जाने बिना न तो उसका मूल्यांकन कर पायेंगे, न ही इसके प्रभाव को समझायेंगे इसको कैसे संग्रहित किया जाता है। अथवा कैसे संचालित किया जाता है ? इसके लिए हमें आध्यात्म साधना का सहारा लेना पड़ता है। इसके साथ ही वायु के बिना प्राण शक्ति को पूरे शरीर में संचारित करना शरीर के विभिन्न अंगो तक समप्रेरित करना कठिन कार्य है। परन्तु प्रतिरोधक क्षमता को हम आन्त्रिक प्रभाव के अतिरिक्त दिन प्रतिदिन की जीवन शैली से भी सुदृढ़ बना सकते है। हम दैनिक जीवन में क्या खाते है, कैसे विचार है, किस प्रकार का आचरण है, आसन प्राणायाम करते है अथवा नहीं इन्ही सबसे प्रतिरोधक क्षमता का कमजोर अथवा सुदृढ़ होना सुनिश्चित होता है। आज कल उपवास एवं मौन व्रत पर भी अनेको शोध प्रकाशित हो चुके है जिसमें ये सिद्ध हुआ है कि इन दोनो से हमारे शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। शक्ति से अधिक कार्य करना, रात में कार्य करना, चरित्र का ठीक न होना, ईर्ष्या, द्वेष, छल, कपट इत्यादि से हमारी प्राण शक्ति एवम् प्रतिरोधक क्षमता का प्रभावित होना स्वाभाविक है।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य प्राण ऊर्जा के अर्थ को समझना है तथा प्रतिरोधक क्षमता के अर्थ को समझते हुये यह ज्ञान प्राप्त करना है। कि इन दोनों में परस्पर क्या सम्बन्ध है तथा क्या समानतायें है। इसका विस्तृत अध्ययन करना है।

14.3 प्राण का अर्थ

प्राण शब्द अपनी व्युत्पति में गति संचालन या कंपन का सूचक है। यह प्रगमन है और प्रकर्षता भी गति एवं प्रभाव, सृष्टि अर्थात प्रकाश्य। यह चैतन्य की नीरक्ता में से उठा एक

अत्यन्त सूक्ष्म ध्वनि कम्पन है। जो कुछ भी है दृश्य या अदृश्य, चर या अचर, वह प्राण के अन्दर है, प्राण के द्वारा है। वह प्राण ही है।

प्राणो वा इदं सर्वभूतं यदिदं किन्चं ।

जब हम प्राण को परिभाषित करने का प्रयत्न करते है, जब एक ऐसी निकरता है, जो हमारे ''होने के साथ जुड़ी है'' क्यो कि हर अर्थ में वह श्वास–प्रश्वास है सृष्टि के हृदय की केन्द्रिय धड़कन, जीवन की ध्वनी नित्य निरंतर, स्पनंदनशीलता और यह सृजनात्मक है।

प्राण का स्वरूप :– प्राण का अर्थ है अग्र अथवा उत्कृष्ट गति, एक प्राकर्थ में संचालन। यह इस तत्व की सर्वोपरि सरंक्षण है। जो संचरणशील जगत की हर गति का नियंत्रण है।

''प्राणो वे वलम'

प्राण प्रज्ञातमा, तेजोमय, अमृतमय है। प्राण ही वह तत्व है जिसमें हर गति, हर गति नियम एवं गति विज्ञान का रहस्य सनिहित है।

प्राण का ज्ञान विश्व रचना से जुड़े हर प्रश्न को सुलझा सकता है। तगम भाष्म में इसे विसगरित्मा का अभिरत स्पन्दन कहा गया है जो उर्ध्व गति एवं अधो गति है।

यह सार्वभौमिक जीवन ऊर्जा या प्राण शक्ति है जो व्यक्ति में 5 गति, प्रकारों में कार्य करती है।

1– प्राण गति 2– अपान गति 3– समान गति 4– उदान गति
एवं व्यान गति ।

ये 5 प्राण चैतन्य की 4 भिन्न अवस्थाओं में प्रकट होते है।

1– जाग्रत 2– स्वपन 3– सुषुप्ति 4– तुरीया इनमे सुषुप्ति स्वप्न रहित गहरी निद्रा की अवस्था है एवं तुर्रीया आत्मा प्रकाशन की

प्राण एवं प्रकृति :– कल्प के अंत में सब प्राणी मेरी प्रकृति में चले जाते है। मैं उन्हे कल्प के आरम्भ में पुनः उत्सर्जित करता हूँ। मैं अपनी प्रकृति को अनुप्राणित कर इस विवश, सम्पूर्ण भूत–समुदाय को प्रकृति की शक्ति से बारम्बार उत्सर्जित करता हूँ। मेरी अध्यक्षता में यह प्रकृति चर–अचर विश्व को उत्पन्न करती है, इसके कारण यह जगत परिक्रमणशील रहता है।

''प्रकृति चैतन्य शक्ति का ही बाह्य अथवा कार्यकारी रूप है, जो जगत का निर्माण एवं संचालन करता है। यह बाह्य रूप शक्तियों, गुणों का खेल, आन्तरिक सा प्रतीत होता है, जबकि इसके परोक्ष में ईश्वरीय चैतन्य शक्ति है। दिव्य शक्ति है, अपरा वह प्रकृति है। जो मन प्राण, शरीरों को अभिव्यक्ति देती है। सत्व, रज, तम ये गुण प्रकृति से ही उत्पन्न है।प्रकृति हो माया अथवा शक्ति – ये तीनो ही चैतन्य की आत्म शक्तियां है। तीनों का कार्य एक है। अरूप में रूप विधान। प्राण प्रकृति की साम्यावस्था, सृष्टि कालीन अवस्था, सृष्टि पोषण, अवस्था और प्रलय अवस्था में सूक्ष्म, स्थूल गति के भेद से उनकी अन्तरनिहित या कार्यकारिणी शक्ति बनकर रहता है। प्रकृति अथवा ऊर्जा अपने रूपों एवं कार्यो को आत्म सत्ता पर आरोपित कर सकती है, तो केवल इसलिए क्योंकि यह उस सत्ता की प्रकृति या ऊर्जा है।

प्राण एवं देश–काल निमित, अपनी सत्ता की अचिन्तय, कालातीत और देशातीत, अन्ततः में उसमें असीम जगत के इस लघु प्रतिमास को अन्नत देश और काल में विस्तृत किया है।

परम् सत्ता अविनाशी अनादि उन्नत काल है। अहमेव अक्षयः कालः। काल की गति में यह वह दिव्य शक्ति है जो गति में सर्व वस्तुओं का विधान करती है और उन्हे उनके स्थान पर

रखती है। देश के रूप में यह वह है जो हर दिशा में हमारे सामने है, असंख्य शरीरों में हर अस्तित्व में प्रकट हम उसकी मुखाकृतियों को अपने सब ओर देखते है।

जिस पर शुद्ध चैतन्य सर्व प्राण गतियों का आधार है वैसे ही प्राण के अन्दर काल गति का आधार शाश्वत है और देश के गति संचलन का आधार अन्तत असीमता है।

प्राण की निस्पन्द स्थिरता काल की अक्षय स्थिति है। यह शाश्वत काल का अविनश्वर रूप है। अक्षयकाल जो अपनी उत्तरोत्तरता विस्तार तथा क्षण रूपता में भी उतना ही शाश्वत और नित्य है।

प्राण वायु एवं मरूत् :– वेद एवं उपनिषदों में मातरिश्वा की भांति ही वायु एवं मरूत् का व्यापक उल्लेख मिलता है। ये तीनों देव शक्तियां व्यापक एवं सीमित अर्थ में भी प्राण शक्ति की ही पर्याय है। और इनका पृथक निरूपण प्राण का ही विशद विश्लेषण एवं अध्ययन है।

पंचभूतों में यह अमूर्त एवं अशरीरी तत्व है। जिस प्रकार शरीर की वाक् चक्षु आदि देवशक्ति में प्राण का मुख्य स्थान है। वैसे ही विश्व की सूर्य, चन्द्राग्नि आदि देव शक्तियों में वायु का मुख्य स्थान है। वायु कभी न अस्त होने वाला देवता है।

वायु जीवन का अधिपत्ति है। प्राचीन ऋषियों ने जीवन अथवा प्राण को एक ऐसी शक्ति ने जीवन अथवा प्राण को एक ऐसी शक्ति के रूप में स्वीकार किया है जो सम्पूर्ण भौतिक सत्ता को व्याप्त किये हुये है और इसकी क्रिया का आधार है। प्राण विश्व का जीवन है।

वायु को सम्बोधित ऋचा में ऋषि का आवाह्न है। हे वायु तुम अपने सौ देदीव्यमान अश्वों या रहस्त्रों अश्वों से जुते रक्ष को ऊर्जा की विशाल भण्डार में ले आओं।

इस शक्ति के शरीर में चमकने पर व्यक्ति रूप, लावण्य युक्त निरोग, दीर्घ जीवी परिपुष्ट एवं प्रफुल्ल दिखाई पड़ता है। शारीरिक अथवा मानसिक कार्य करने पर उसे थकान नहीं वरन् प्रसन्नता प्राप्त होती है। मन में प्राण का बाहुल्य हो तो मस्तिष्क की उर्वरता अत्यधिक बढ़ जाती है। आध्यात्मिक व्यक्ति में इस ऊर्जा का संचार होने से व्यक्ति में शौर्य, साहस अभय एवं सन्मार्ग पर निरन्तर चलते रहने का पुरूषार्थ भी उत्पन्न हो जाता है। यह परम ऊर्जा जिसके पास जितनी मात्रा में होती है वह उतना ही अभीष्ट लक्ष्य में सफल होता जाता है। तात्पर्य यह है कि प्राणवान व्यक्ति भले ही डाकू, शासक, नेता वैज्ञानिक महात्मा आदि कोई भी क्यों न हो, अपने कार्य में अवश्य सफलता प्राप्त करेगा। अतः इस प्राण की सभी को अति आवश्यकता है।

प्राण ही वह तेज समझा जा सकता है जो दीपक के तेल की भांति नेत्रो में वाणी में गतिविधियों में एवं विचारों में प्रकाश बन कर चमकता है। इसी कारण मानव जीवन की वास्तविक शक्ति के रूप में भी मान्य है।

क्योकि प्राण ऊर्जा रूपी महान शक्ति पुंज का उचित उपयोग करने से ही उन्नति के शिखर पर पहुंचना सम्भव है। छान्दोग्य उपनिषद में भी लिखा है, ''यह सब प्राणी, प्राण में ही उत्पन्न होते है और प्राण में ही लीन हो जाते है।

14.4 प्रतिरोधक क्षमता :–

रोग प्रतिरोधक क्षमता को प्रत्येक छोटे अथवा बड़े कार्य को करने हेतु हमें जीवनी शक्ति की आवश्यकता होती है, अर्थात् बिना शक्ति के व्यय किये शरीर का आन्तरिक या बाह्य स्तर पर व्यय किये बिना कार्य नहीं किया जा सकता है। यही वह जीवनी शक्ति है जिससे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को जीवन प्राप्त होता है। इसी कारण इसे प्रकृति की संज्ञा भी दी गयी है, जो सभी आदि और अनादि शक्तियों का आधार है। अतः सभी शक्तियों की जननी भी है।

प्रचलित गतों के अनुसार शरीर की कुछ चयापचय की क्रियाओं के परिणाम स्वरूप इसमें (शरीर में) जो उष्णता पैदा होती है वही मानव शरीर को जीवनी शक्ति प्रदान करती है। सूत्रों के अनुसार यह बाह्य शरीर (अन्नयय कोश) से उसी प्रकार भिन्न है जैसे बिजली का बल्व व इसमें उपस्थित कार्बन का सूत्र जिससे यह ताप व प्रकाश का प्रदर्शन करता, जिस प्रकार बल्व के टूटने पर प्रकाश गायब हो जाता है किन्तु बिजली (शक्ति) का अस्तित्व वहां बना रहता है। ऐसे ही भौतिक शरीर के नष्ट होने पर भी जीवनी शक्ति का अस्तित्व प्रत्यक्ष रूप से आध्यात्मिक शरीर में उपस्थित हो जाता है। अतः निर्मल शरीर में होने वाली जीवनी शक्ति की कार्यशैली ही स्वस्थ्य है तथा विभिन्न प्रकार के प्रोटीन, लाइपो प्रोटीन, ग्लाइको प्रोटीन, न्यक्लिया प्रोटीन, आदि के अस्तित्व में रहने के अलावा शरीर के विजातीय तत्व ही है जो जीवनी शक्ति की रोग मूल की चेष्ठा भी है। उदाहरणतया हमारे वातावरण में भिन्न–भिन्न प्रकार के रोगाणु, जीवाणु प्रत्येक व्यक्ति के लिए व्याप्त है परन्तु प्रत्येक व्यक्ति इन रोगाणुओं की चपेट में नहीं आता। जिस व्यक्ति की रोग प्रतिरोधक क्षमता रूग्ण होती है वही इनका (रोगाणुओं) का शिकार बनता है। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम प्रतिरोधक क्षमता को सुदृढ़ बनाने के उपायों की चर्चा करेंगे।

रोग प्रतिरोधक क्षमता :– विभिन्न प्रकार के रोगाणु को मच्छर, मक्खी के काटने से रोगकारक पदार्थ आदि जिन्हे शरीर स्वीकार नहीं करता उन्हे नष्ट करने के लिए शरीर की सुरक्षा प्रणाली तीव्रता से प्रतिक्रिया कर रोग प्रतिरोधक तत्व (एण्टीबॉडीज) उत्तेजित करती है जिसे रोग प्रतिरोधक क्षमता के नाम से जाना जाता है।

रोग प्रतिरोधक क्षमता :– प्रतिरोधक क्षमता अथवा जीवनी शक्ति हमारे शरीर में विद्यमान उस चिकित्सक को कहते है। जो प्रारम्भिक चिकित्सा की लड़ाई अकेले ही लड़ता है। हमारे शरीर की यह प्रक्रिया पूर्णतया स्वचालित है। जो शरीर में विद्यमान खरबों कोशिकाओं को निर्देशित कर रोगो से लड़ने की ओर अग्रसर करती है। इसी कारण इस शारीरिक सुरक्षा प्रणाली का स्वस्थ रहना हमारे शरीर के प्रत्येक अंग के लिए अति आवश्यक है। यही कारण है कि प्राकृतिक चिकित्सा का आधार शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाना ही है। इस कारण इसे प्रतिरक्षा प्रणाली या स्वंय की हीलिंग पद्धति के नाम से भी जानते है। मानवीय शरीर को क्षति पहुंचाने वाले बाहरी तत्वों को खत्म करने के लिए सदैव चलने वाली इस प्रक्रिया को प्रतिरोधात्मक शक्ति कहते है। इस प्रकार हम समझ सकते कि मानव शरीर सदैव वातावरण में फैले रोगकारी जीवाणुओं से अपनी रक्षा के लिए तत्पर रहता है। यही प्रणाली सम्भवतः व्यक्ति का सुरक्षा कवच बनकर आगामी रोगो से उसकी रक्षा भी करती है। किन्तु इस सुरक्षा प्रणाली का सक्रिय होना प्रत्येक व्यक्ति की जीवन चर्चा पर भी निर्भर करता है। बिन्दुओं की पारस्परिक कार्यशैली की चर्चा करनी है :–

1. प्राण शक्ति
2. प्रतिरोधक क्षमता

प्राण शक्ति :– इसे जन्म से ही ईश्वर कृपा से प्राप्त होती है। इस शक्ति को यद्यपि भौतिक या रासायनिक नहीं माना जा सकता और न ही इसे (प्राण शक्ति) को हम देख सकते है। तथापि यह शरीर में विद्यमान रहती है। यह भी सर्वमान्य सत्य है कि इसके अभाव में कोई भी शारीरिक क्रिया नहीं चल सकती है। प्राण ऊर्जा को विकसित करने के लिए मानव की

स्वंय की यम–नियम की धारणा व उसकी जीवन शैली से जुड़ी विभिन्न क्रियाओं के फलस्वरूप बढ़ाया जा सकता है। इन क्रियाओं के सही दिशा में दिन प्रतिदिन चलते रहने से जिस शक्ति की प्राप्ति होती है उसे जीवनी शक्ति कहते है।

14.5 प्राण शक्ति और प्रतिरोधक क्षमता का सम्बन्ध

प्राण शक्ति विश्वव्यापी अनन्त है। सृष्टि के आरम्भ से ही इसको माना गया है। यह प्राण न ही सांसारिक न इसको रासायनिक कहा जा सकता है। इसको यह भी कहा जाता है कि संसार में उत्पन्न सभी तरह की ऊर्जा का समुद्र ही प्राण है। इसकी भरपूर मात्रा ब्रह्माण्ड में भरी पड़ी है। परन्तु इसको उपयोग करने की क्षमता साधारण मनुष्य में नहीं है। कुछ व्यक्ति शरीर को बलशाली बनाने में लगे है। कुछ ज्ञान को बढ़ाने के लिए मन का उपयोग कर रहे है परन्तु प्राण का उपयोग करने की समझ उनमें नहीं है।

जीवन शक्ति या प्रतिरोधक क्षमता इसमें भिन्न है। प्रत्येक मनुष्य को दैनिक कार्यो को करने के लिए जिस शक्ति का उपयोग होता है। उसे जीवनी शक्ति कहा गया है। दिन भर कार्य करने के बाद व्यक्ति बिना किसी प्रयास के रात में नींद में चले जाता है। प्रातः जागने पर ऊर्जा के खजाने से जीवन शक्ति वापिस मिल जाती है। ऐसा भी माना गया है। व्यक्ति के कर्मो के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को जीवन शक्ति मिलती है। आज व्यक्ति अपने एवं इन्द्रिय असंयम के कारण अधिक जीवन ऊर्जा का उपयोग कर रहा है जिससे पाचन तन्त्र, निष्कासन तंत्र, श्वसन तंत्र एवं शरीर के अंगो की शक्ति कम होती जा रही है।

इसलिए आज प्राण ऊर्जा को उपयोग करने की आवश्यकता है। उसके लिए ध्या नही माध्यम है। ध्यान के द्वारा हम प्राण ऊर्जा बढ़ने से प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ जाती है। अंगो अपने आधार पर कार्य देना व्यक्ति की संयम में निहित है। व्यक्ति अहंकार में चूर अपने अंगो का गलत कार्यो में लगा रहा है। जिससे प्रतिरोधक क्षमता कम होती जा रही है। जैसे उत्सर्जी अंग के कमजोर होने से शरीर में गन्दगी या विषक्त तत्व बाहर नहीं निकल पाते जिससे कई प्रकार के रोग पनपते है। और रक्त भी अशुद्ध हो जाता है। रक्त परिवाहन तन्त्र कमजोर होने से, ग्रन्थियों, तन्त्रिकातन्त्र आदि भी कार्य में असमर्थ हो जाते है। जिससे अंगो में शिथिलता आ जाती है।

यहां पर प्रतिरोधक क्षमता अपना कार्य करना प्रारम्भ कर देती है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार रक्त में उपस्थित श्वेत कण शरीर में उपस्थित विषाक्त तत्व से लड़ते है। यदि श्वेत रक्त कण स्वस्थ एवं मजबूत है तो रोग शरीर में आ नहीं पाता। इस तरह प्रतिरोधक क्षमता प्रत्येक अंग में अपना कार्य करती रहती है।

अतः प्रतिरोधक क्षमता की कमी को ध्यान और प्रकृति की गोद में जाने से बढ़ाया जाता है अर्थात् प्राण ऊर्जा को ब्रह्माण्ड से आने का उपाय महत्वपूर्ण है। शरीर को प्राण ऊर्जा से भरपूर करने के लिए साधना संयम की आवश्यकता है जिससे प्रतिरोधक क्षमता भी मजबूत हो जाती है।

रोग का कारण कीटाणु नहीं होता। यदि प्रतिरोधक क्षमता कमजोर होती है। तभी कीटाणु प्रभावी होते है। कीटाणु तो सभी जगह है। यदि प्राण ऊर्जा से चार्ज शरीर एवं प्रबल प्रतिरोधक क्षमता है तो वह व्यक्ति कभी भी बीमार नहीं होगा। अतः प्राण ऊर्जा हर जगह व्याप्त है। उसको उपयोग करने की जानकारी हमें होनी चाहिए। प्रतिरोधक क्षमता शरीर द्वारा निकलने वाली ऊर्जा है जो प्रत्येक दिन हमें मिलती रहती है। उसको उपयोग व

खर्च करने के लिए उपाय भी सरल है। शरीर जाने वाले कार्बोहाइड, प्रोटीन, वसा पचने के बाद जो कार्बन उत्पन्न होता है। वह O^2 के साथ मिल कर जो ताप उत्पन्न होता है। उससे शरीर चलता है। लेकिन प्रतिरोधक क्षमता का होना आवश्यक है।

योगियों की ध्यान एवं वैज्ञानिक शोध के द्वारा प्राणों को विस्तृत रूप दिया है। एक प्राण वायु है जिससे जीवन की डोर चल रही है। एक सूक्ष्म प्राण है जो ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। अर्थात् आकाश में ऊर्जा से परिपूर्ण है। इसी प्राण से जीवन की उत्पत्ति हुई। यह प्राण एक शक्ति है जो संसार के प्रत्येक कण–कण में है। आइस्टीन भी इसी विचार को पूर्ण करते है। $F=MC^2$ अर्थात् पदार्थ – उर्जा के बराबर होता है या ऊर्जा को किसी दूसरी ऊर्जा में स्थानान्तरित किया जा सकता है। परन्तु ऊर्जा का ह्रास नहीं होता है। संसार की सभी ऊर्जा जैसे गुरूत्वाकर्षण ऊर्जा, विद्युत ऊर्जा और चुम्बकीय ऊर्जा, विचार शक्ति भी प्राण का ही रूप है।

प्राण, वायु में भी विद्यमान है जबकि उसको केवल आक्सीजन या स्वास्थदायक गैस ही नहीं माना जा सकता।

इसी प्रकार, सूर्य रश्मि संसार के प्रत्येक कण–कण को शक्ति देते है। यह भी प्राण का रूप है। यह किसी विशेष रंग में विद्यमान नहीं है।

जल प्राणी मात्र के लिए जीवनदायी तत्व है। यह प्राण का ही रूप है। परन्तु प्राण हाइड्रोजन या आक्सीजन में है ऐसा ठीक नहीं है।

मिट्टी में होने वाले फल, अनाज, पेड़, पौधे शरीर के अन्नमय कोष के लिए आवश्यक तत्व है। लेकिन हम यह नहीं कह सकते कि फलों में प्राण अधिक है और घास में कम है। क्योकि आदमी कितना भी फल खा ले किन्तु घास खाकर हाथी ही बलशाली है। इस प्रकार संसार में प्राण शक्ति को हम जान पाये है। जबकि मुण्डकोपनिषद – 2/1/8 में बताया गया है।

सप्त इमेलोका येषु चरन्ति प्राणा –

अर्थात् प्राण की शक्ति से ही सात लोको – भू: भूव स्वः महः जनः, तपः और सत्यम् चल रहे है। शरीर में स्थित सातो चक्रों का जागरण भी प्राण की शक्ति से हो रहा है।

अथर्ववेद में कहा गया है :–
एकंपादं नोत्खिदति सलिलताद्धंस उच्चरन् ।
यदइग स तमुत्स्विदेन्नैबाध न श्वः स्यान्न
रात्री नाहः स्थान्न व्युच्छेत् कदाचन ।। ।।/4/2

इस में प्राण को एक पाद में समुद्र में खड़े हंस के रूप में माना है। वह एक बार एक पैर, फिर दूसरे पैर में खड़ा रहता है। इसको शरीर में अन्दर जाती हुई श्वास एवं बाहर जाती हुई श्वास के साथ सम्बन्ध किया है। यदि वह दोनो पैरो को उपर कर ले तो जीवन रूक जायेगा। तब आज कल या दिन–रात कैसे होगी। हस के उठ जाने से सब समाप्त हो जायेगा।

प्राण वायु से ही मनुष्य की उम्र 100 वर्ष है। जैसे मनुष्य की 1 मिनट में 15 श्वास–प्रश्वास है। 1 घण्टे में 900 बार और एक वर्ष में 21,600 बार है। यदि मन–विचार को शून्य कर दिया जाये तो श्वास को रोका जा सकता है। तब मनुष्य की उम्र 100 से अधिक वर्ष हो जायेगी।

प्राण शक्ति एवम् प्रतिरोधक क्षमता में सम्बन्ध :– प्राण सूक्ष्म शरीर में स्थिर है न कि स्थूल शरीर में। यद्यपि प्राण स्थूल शरीर के विविध अंगो के कार्य इसी से सर्वदा चलते है। स्वास्थ्य की उन्नति और रोग का तात्विक से शमन–ये दोनो प्राण के प्रचुर मात्रा में होने पर ही सम्भव है। प्रचुर मात्रा में प्राण शक्ति शरीर के अन्दर हो तो मानव एक स्वाभाविक (सहज, अकृत्रिम) आनन्द को सदा अनुभव करता रहता है। जबकि शक्ति हीन प्राणी कर्म करते हुये या मन करते हुये भी दुःख भोगता रहता है।

जहां किसी व्यक्ति में प्राण शक्ति प्रचुर मात्रा में है। उसके अन्दर से सुखानुभव होता रहता है, जो विषय भोगो से तत्काल दिखाई देने वाले सुख से पूर्णतः भिन्न होता है। यह सहज आनन्द यह सुख अनुभव स्वास्थ का प्रमुख लक्षण है। जिस व्यक्ति के अन्दर प्रचुर मात्रा में प्राण शक्ति नहीं है वह कोई कार्य करता रहे या ना भी करें, इस सुखानुभव से इस सहज आनन्द के अनुभव से वंचित रहता है।

संक्षेप में हम कह सकते है कि प्राण शक्ति, जीवनी शक्ति तथा प्रतिरोधक क्षमता तथा अग्नि सभी पर्यायवाची है। शरीर में व्याप्त परमेश्वर के अंश चेतन स्वरूप विद्यमान है। भगवद गीता में भी कहा है :–

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देह मिश्रतः ।
प्राणायान समायुक्ता पचाम्यन्न चतुर्विधम् ।।

अर्थात् – में स्वंय वैश्वानर (जठराग्नि) के रूप में समस्त प्राणियों के शरीर में रहता हूॅ। चारों प्रकार के भोजन को पचाता हूॅ। जब आधुनिक जीवन शैली को अपना कर अथवा प्राकृतिक नियमों की अवहेलना द्वारा मनुष्य में विजातीय द्रव्य, दूषित मल आदि अधिक मात्रा में एकत्र होने पर शारीरिक, मानसिक विकार उत्पन्न हो जाते है तथा उन विकारों को शरीर से बाहर निष्कासित करने के बजाय औषधियों द्वारा शरीर में दमन किया जाता है तो यह विकार जीर्ण अथवा भयंकर रोगो का रूप धारण कर लेते है तथा शरीर की प्रतिरोधक क्षमता भी क्षीण हो जाती है। इसके साथ ही यदि मन चिंताग्रस्त हो जाये। बुद्धि शंकालु होकर भयग्रस्त होने लगे और वियोग का दुख भी सताने लगे तो ऐसी दशा में आतंरिक शक्ति को पुनः प्राप्त करने के पश्चात ही शरीर रोग से रहित हो सकता है। अन्यथा न बुद्धि से भय मिट सकता है और न ही अंह से वियोग का दुःख ही समाप्त किया जा सकता है।

प्रतिरोधक क्षमता अथवा जीवनी शक्ति का व्यय :– जीवनी शक्ति का व्यय मनुष्य के प्रत्येक क्रिया–कलाप में होता है। शरीर के स्तर पर सभी कार्यो भोजन को पचाने, मल, मूत्र का निष्कासन द्वारा इन्द्रियों के स्तर पर ऐन्द्रिक भोगों के द्वारा बुद्धि के स्तर पर भय, क्रोध एवं अपमान द्वारा मन के स्तर पर चिन्ता, घृणा, स्वार्थ, ईर्ष्या आदि द्वारा तथा अहं के स्तर पर वियोग की पीड़ा द्वारा ही जीवन का व्यय होता रहता है।

यदि यह व्यय संतुलन मात्रा में होता रहता है तो चिंता की कोई आवश्यकता नहीं है परन्तु जब व्यय की मात्रा असंतुलित हो जाती है तो प्रतिरोधक क्षमता अथवा जीवनी शक्ति पर आघात हो जाता है। इससे जीवन का विकास पथ ही रूक जाता है।

प्रतिरोधक क्षमता को सामान्य तथा समुचित मात्रा में संचित करना :– मनुष्य में प्राण शक्ति अथवा जीवन शक्ति सीमित ही होती है इसको बढ़ाना असम्भव होता है। परन्तु इस व्यर्थ व्यय को कम करके ही इसकी मात्रा को अधिक संचित किया जा सकता है। अतः इस शक्ति का अपव्यय नहीं करना चाहिए क्योकि किसी व्यक्ति में इसकी मात्रा अपर्याप्त हो तो शरीर के बहुत से कार्य ढीले पड़ जाते है, कुछ कार्य तो होते ही नहीं। मस्तिष्क, हृदय, गुर्दे

आदि किसी महत्वपूर्ण अंग का कार्य न हो तो व्यक्ति की मृत्यु तक हो सकती है। विभिन्न स्तर पर प्रतिरोधक क्षमता व्यय को कम करके जीवनी शक्ति को बढ़ाना ।

1. **शारीरिक श्रम :–** प्रतिदिन के काम–काज, भाग दौड़ आदि शारीरिक श्रम में जीवनी–शक्ति का व्यय होता है किन्तु इसका प्रभाव न्यूनतम होता है। श्रम के पश्चात विश्राम करके थकावट को दूर करके पुनः पूर्व स्थिति में आ सकते है। शारीरिक श्रम तो जीवनी शक्ति के साधारण कार्यक्रम के अन्तर्गत आते है। यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि श्रम अपनी सामर्थ्य को जानकर सामर्थ्य के अनुसार किया जायेगा उससे जीवनी शक्ति खर्च तो होगी परन्तु शरीर को हानि नहीं होगी।
2. **पाचन, पोषण व मल निष्कासन :–** भोजन को पचाने में जीवनी शक्ति पर अधिक भार पड़ता है हम जो भोजन करते है, उसको पचाने में, पाचन रस तैयार करने में, शारीरिक कोशो की टूट–फूट की पूर्ति करने में, शरीर को पोषण देने में जीवनी शक्ति का व्यय, शारीरिक श्रम से अधिक होती है।

   अतः हमे भोजन के चयन में विशेष ध्यान देना चाहिए। भोजन सुपाच्य हो अधिक गरिष्ठ, अथवा रासायनिक भोजन से बचना चाहिए। भोजन के बाद श्रम नहीं विश्राम करना चाहिए अन्यथा जीवनी शक्ति पर दुहरा भार पड़ेगा तथा कार्य की क्षमता भी कम होगी। अतः पहले श्रम फिर भोजन तत्पश्चात विश्राम के सिद्धान्त को हमें अपने समय प्रबन्धन में अपनाना चाहिए।
3. **मानसिक इच्छायें, आसक्तियों एवं चिंतायें :–** मन के स्तर पर चिंता का अधिक भार पड़ता है। इच्छाओं की अधिकता, इच्छापूर्ति का अभाव तथा स्वार्थ परता से चिंता का जन्म होता है। घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, कुण्ठा, निंदा, स्वार्थ ये मन के विकार होते है। इन विकारों के उत्पन्न होने से शरीर से नलिका विहीन ग्रंथिया से निकलने वाले रस जहरीले हो जाते है। जो हमारे विचार प्रणाली से मस्तिष्क के नाड़ी संस्थान द्वारा होता है।

   जिस मात्रा में इच्छा की निवृत्ति होती जायेगी। उसी मात्रा में सुख का आगमन होगा। रचनात्मक विचारों को मस्तिष्क में प्रवाहित होने और अनुकूल क्रियात्मक रूप देने पर चिंता तथा चिंताजन्य रोग भी सहज नष्ट हो जाते है। क्रोध व भय का कारण दिल में अहंकार का होना है जिस मात्रा में व्यक्ति का अहंकार कम होता जायेगा। उसकी बुद्धि में क्रोध, मान–अपमान का लगना और भय उतनी मात्रा में समाप्त हो जायेगा।

   ध्यान की साधना से अहंकार कम होता है।

   अत्यधिक व्यय हुई जीवनी शक्ति को सामान्यावस्था में लाने के लिए निम्न साधन की आवश्यकता होती है।

   1. **उपवास :–** साप्ताहिक उपवास, आंशिक उपवास तथा लघु उपवास अधिक लाभप्रद होते है।
   2. **उचित आहार :–** रसाहार, फलाहार, शाकाहार आदि का उपयोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में सहायक होता है।
   3. **समुचित विश्राम :–** श्रम के पश्चात विश्राम करना प्रकृति का नियम है। यहां शारीरिक विश्राम के साथ मानसिक विश्राम पर ध्यान देना चाहिए। जिसमें श्वसन, शिथलीकरण, ध्यान आदि मुख्य भूमिका रहती है।

4. **प्राणायाम :–** प्राणायाम द्वारा हम शरीर प्राण वायु (O^2) की समुचित मात्रा में उपयोग करने में सक्षम होते है। वही प्रश्वास से दूषित वायु भी शरीर से निष्कासित होती है।
5. **सूर्य स्नान :–** सृष्टि को प्रकाश व ऊष्मा के रूप में ऊर्जा प्रदान सूर्य की किरणों का प्रयोग हमें अपने शरीर पर लेना चाहिए।
6. **गहरी नींद :–** गहरी नींद व्यय हुई जीवनी शक्ति को पुनः सामान्यावस्था में लाने का प्राकृतिक साधन है।
7. शरीर व मन को अपने नियंत्रण में रखने के लिए यौगिक सूक्ष्म व्यायाम तथा आसनों तथा सूर्य नमस्कार आदि अपनी दैनिक समय प्रबन्धन में शामिल करना अत्यन्त आवश्यक है।

   उपरोक्त साधनों का विस्तार से वर्णन पृथक इकाई में करेंगे।

14.6 सारांश

आपने इस इकाई में अध्ययन किया कि प्राण ऊर्जा एक ऐसी जन्म जाति शक्ति है। जो मां के गर्भ के समय से ही बच्चे को मिलनी प्रारम्भ हो जाती है और मनुष्य के अन्तिम श्वास तक पूरे शरीर में व शरीर की सभी कोशिकाओं व अंगो में संचारित होती रहती है। इस पर जीवन शैली, आध्यात्मिकता, मानसिकता व मुख्य रूप से हमारे शरीर में रोगो से लड़ने की शक्ति के रूप में उत्पन्न प्रतिरोधक क्षमता के साथ मिलकर प्रत्येक प्राणी को आरोग्य एवम् खुशाल जीवन प्रदान करती है। साथ ही हमने एवं बहुत महत्वपूर्ण बिन्दु का भी अध्ययन इसमें किया कि प्राण व प्रतिरोधक क्षमता के स्वरूप अवधारणा का क्या अभिप्राय है। इसी के साथ हमने प्राण ऊर्जा एवम् प्रतिरोधक क्षमता का आपस में क्या सम्बन्ध है ? ये एक दूसरे के किस प्रकार से पूरक तथा एक दूसरे को कैसे उन्नत बनाने में सहायक होते है। प्रतिरोधक क्षमता प्रबल होने से हमारी प्राण ऊर्जा का कमजोर होना नियंत्रित हो जाता है। ऐसे ही अनेको प्रभावों का वर्णन इस इकाई में किया गया है। जिससे हमारी दोनो प्रकार की शक्तियों का आपसी सामंजस स्थापित होकर सुदृढ़ता प्रदान कर सके। आइये इसको समझकर स्वंय की शक्ति को भी मजबूत बनायें। तभी इसके अध्ययन का वास्तविक लाभ प्राप्त होगा।

14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ :–

आदि ऊर्जा प्राण – अमृता भारती
जीवन विज्ञान की रूप रेखा – जैन विश्व भारती विश्व विद्यालय
मनुष्य में प्राण के आयाम – अमृता भारती

14.8 निबंधात्मक प्रश्न

प्र0–1 प्राण का क्या अभिप्राय है इसके स्वरूप का वर्णन करें ?
प्र0–2 प्रतिरोधक क्षमता की अवधारणा से आप क्या समझते है ?
प्र0–3 प्राण व प्रतिरोधक क्षमता के सम्बन्ध को विस्तार से समझाइऐं ?

इकाई –15 प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के उपाय

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 प्रतिरोधक क्षमता का अर्थ एवम् परिभाषा
15.4 प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के उपाय
15.4.1 जीवन शैली द्वारा
15.4.2 योग व चक्रों द्वारा
15.4.3 जल प्रयोग (जल तत्वों) द्वारा
15.4.4 पंच महाभूत के प्रयोग द्वारा
15.5 सारांश
15.6 सन्दर्भ ग्रन्थ
15.7 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

वैदिककालीन श्रयों ने मानव जीवन की औसत 100 वर्ष मानते हुये जीवन की सार्थकता को प्रमाणित करने के लिए 100 वर्ष की आयु को चार आश्रमों में बाटा है – 1. ब्रह्मचर्य आश्रम 2. ग्रहस्थ आश्रम 3. वानप्रस्थ आश्रम 4. सन्यास आश्रम 25 वर्ष तक ब्रह्म जैसा आचरण करते हुये विद्यार्थी जीवन को प्रकृति के सान्धिय में सम्यक सम, आहार, विचार, विहार, व्यवहार तथा प्रकृति द्वारा प्रदत्त जल, पृथ्वी, वायु, सूर्य एवम् आकाश, सेवन के लिए वैज्ञानिक प्रयोग बताये जाते थे चाहे राजा हो या सुदामा या श्री कृष्ण सभी की जीवन शैली स्वस्थ ससक्त व तेज मुक्त होती थी इसके पश्चात ग्रहस्त जीवन प्रारम्भ होता था जिसमें धर्म, अर्थ, काम एवम् मोक्ष की प्रधानता होती थी जिनका मूल आधार स्वास्थ ही था। 51वें वर्ष से वानप्रस्त आश्रम शुरू हो जाता था जिसमें सन्तान को ग्रहस्त आश्रम में प्रवेशार्थ राज तिलक करके सभी जिम्मेदारी सौंप दी जाती थी। सन्तान को केवल परामर्श देना होता है। उसके बाद अन्तिम चरण सन्यास को होता है। सन्यास समाधि का प्रतीक है जहां एकान्त वास आवश्यक है। इसमें हर हाल में एक जैसा सन्तुलित व सन्यासी जीवन चिन्तन व अध्ययन में लगाते हुये मान अपमान, राग द्वेष, मद लोभ, काम क्रोध मोह ममता आदि से मुक्ति पाने के लिए सजग रहना पड़ता है। इन्ही चार आश्रमों की आयु पाने के लिए स्वस्थ होना जरूरी है। तभी 100 वर्ष की आयु प्राप्त की जा सकती है। तन–मन को स्वस्थ रखने के लिए शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता का सुदृढ़ होना आवश्यक हो जाता है और रोग प्रतिरोधक क्षमता को प्रकृति के पंचमहाभूतो द्वारा ही सुदृढ़ बनाया जा सकता है। जिसमें अष्टांग योग के सभी अंगो का प्रयोग भी आवश्यक हो जाता है। क्योकि शरीर के सभी अवयवों के आरोग्य हेतु रोग प्रतिरोधक क्षमता का प्रबल होना आवश्यक है। ससक्त प्रतिरोधक क्षमता वाला व्यक्ति के कभी बीमार होने की सम्भावना कम से कम होती है। आइये प्रतिरोधक क्षमता को सुद्रण बनाने के लिए इसके अर्थ एवम् उपायों का अध्ययन करें

15.2 उद्देश्य

प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के उपायों का अध्ययन प्रतिरोधक क्षमता की शरीर में आवश्यकता का अध्ययन चक्रों द्वारा प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के सूत्र प्रतिरोधक क्षमता की स्वास्थ्य के लिए क्या आवश्यकता है व किस प्रकार के भोजन, जल, वायु, प्राणायाम, ध्यान, व्यायाम, आसन, ब्रह्मचर्य, उपवास, विजातीय, द्रव्य, सूर्य ऊर्जा उत्तेजक पदार्थो का निषेध आदि द्वारा प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाया जा सकता है इसके विस्तार से अध्ययन हेतु आगे बढ़ते है।

15.3 प्रतिरोधक क्षमता का अर्थ एवम् परिभाषा

शरीर में ऐसी संचालित प्रणाली है जो बिना किसी चिकित्सक की सहायता के रोगो से लड़ने के लिए हमेशा तत्पर रहे उसको शरीर की प्रतिरोधक क्षमता के रूप में जाना जाता है। इसे प्रतिरक्षा प्रणाली भी कहा जाता है । इसी को शरीर की स्वंयम् की हीलिंग तथा मुरम्मत करने वाली शक्ति के नाम से पुकारते है। क्योकि शरीर को हानि पहुंचाने वाले मुख्य तत्वों से रक्षा एवम् बचाव हेतु सक्रीय रहती है। क्षीण कमजोर रोग प्रतिरोधक क्षमता व्यक्ति को दीन–हीन एवम् आरोग्य विहीन कर देती है। इस लिए मनुष्य के आरोग्य एवम् दीर्घ आयु में प्रतिरोधक क्षमता पर्यावरण तथा विरासत में मिलने वाले जीशं पर अत्यधिक निर्भर करता है क्योकि परमात्मा ने प्रकृति से सृजित इस शरीर को इस प्रकार बनाया है कि प्रतिदिन व्यायाम भ्रमण अच्छी नींद व सन्तुलित भोजन जीविका उपार्जन तथा ध्यान व राम नाम करना आवश्यक है। कोशिकाओं के सूक्ष्म आष्विक जैनेटिक धरातल पर होने वाले परिवर्तन के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानने के पश्चात भी अभी बहुत कुछ जानना बाकी है। बुढ़ापा तथा पैतृक रोगो में प्रतिरोधक क्षमता का सुदृढ़ अथवा कमजोर होना एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। प्रतिरोधक क्षमता को विभिन्न प्रकार के कीटाणु प्रभावित करते है। हमारे शरीर में लगभग 1000 खरब बैक्टीरिया पाये जाते है। जिनमें से कुछ बीमारी पैदा करने वाले तथा अन्य हमारे शरीर को विभिन्न प्रकार की सहायता के साथ विटामिन आदि के निर्माण में सहायता करते है। एक शोध के अनुसार कोई भी व्यक्ति कितना ही साफ सुधरा व स्नान करता रहें फिर भी बैक्टीरिया उसके शरीर में पाये जाते है। जुकाम, खासी, दस्त, एलर्जी आदि शरीर की रक्षा प्रणाली एवम् प्रबल प्रतिरोधक क्षमता को प्रदर्शित करती है। विश्व में विभिन्न सौध अध्ययनों के विश्लेषण से यह सिद्ध हो चुका है कि तीव्र रोग एवम् एलर्जी आदि शरीर द्वारा स्वतः स्वस्थ होने का एक प्राकृतिक प्रयास होता है। परन्तु इनको रोक देने शरीर में विजातीय द्रव्य एकत्र हो जाते है जिनसें विभिन्न प्रकार के रोग जीर्ण रोग में परिवर्तित होकर हमारे शरीर को रोगी बना देते है। प्रतिरोधक क्षमता जितनी शक्तिशाली होगी उतनी ही रोगों से अधिक बचाव करेगी। शरीर में एकत्र हुये विजातीय द्रव्यों एवम् बाहरी हानिकारक तत्वों से निपटने के लिए कुछ प्रक्रियायें शरीर में होती है। जिनका संचालन का कार्य जो शक्ति करती है। उसे प्रतिरोधक क्षमता कहते है। जो गलत जीवनशैली के कारण कमजोर हो जाती है तथा सन्तुलित आहार नियमित योग, व्यायाम, अच्छी नींद सकारात्मक सोच शुद्ध पर्यावरण आदि से यह प्रबल हो जाती है। प्राकृतिक चिकित्सा की उपचार करने की मुख्य प्रणाली का आधार रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ा देना होता है। जिससे रोगो के मूल घटक विजातीय द्रव्य को शरीर से बाहर निकालकर शरीर को रोग मुक्त करके आरोग्य प्राप्त होता है। इसका अन्त्र इस बात से समझा जा सकता है कि कुछ लोग 14–15 घण्टे काम करके भी चुस्त व तरोताजा नजर आत है।

वहीं पर कुछ लोग 4–5 घण्टे काम करते ही थके एवम् मुरझायें दिखाई पड़ते है। यह अन्त्र दिखाई पढ़ने के पीछे प्रतिरोधक क्षमता का सुदृढ़ एवम् कमजोर होना कहलाता है। प्रचलित मतों के अनुसार शरीर की कुछ चया पचाया से सम्बन्धित क्रियाओं के परिणाम स्वरूप शरीर में जो ऊष्णता पैदा होती है वहीं मानव शरीर को प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करती है। आइयें इसी प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने हेतु कुछ सूत्र एवम् उपायों की चर्चा आगे करते है।

15.4 प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के उपाय :–

प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए हमें दैनिक जीवन शैली को सुदृढ़ बनान होगा जिसके लिए निम्न कुछ बिन्दुओं पर ध्यान देकर अपने को उसके अनुरूप ढालने की आवश्यकता है।

15.4.1 जीवन शैली द्वारा

1. प्रातः काल सूर्योदय से पहले उठना ।
2. नियमित आहार व्यायाम व योगासन से दिमागे में वीटा ''एर्डोफिन'' तथा खून में पायरोजिन का रिसाव बढ़ जाता है इसलिए श्वेत रक्त कोशिकाओं की संख्या भी बढ़ जाती है। इससे शरीर में आक्सीजन की मात्रा अधिक हो जाती है। जिससे कैलोरी घटाने में सहायता मिलती है।
3. **आहार :–** प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में हमे आहार के द्वारा आवला, नीबू, सन्तरा, टमाटर, ताजे फल व सब्जियां अन्कुरित अनाज शुद्ध व ताजा भोजन ही ग्रहण करना चाहिए इनसे हमें विटामिन सी, बी, बी–1, बी–6 एवम् बी–12 इत्यादि प्राप्त होते है जिनसे शरीर में 'एन्टीवॉडीज' के निर्माण की प्रक्रिया बढ़ जाती है। जिससे खून का निर्माण होता रहता है। विटामिन बी–2 जो सौसन, दिमाग, गुर्दे, दिल व लीवर को प्रभावित करता है। खान–पान से ही प्रभावित होता है। इसके लिए छिलके वाली दाल, चना, गेहूँ, मूंगफली, दूध, दही, छाछ, तिल, आलू, प्याज, चुकन्दर, लैहसुन तथा पत्ते वाली हरी सब्जियों का सेवन अधिक करना चाहिए। विटामिन बी–6 के लिए भी उपरोक्त का सेवन करना आवश्यक है। विटामिन बी–12 हेतु उपरोक्त खान–पान के अतिरिक्त प्रदूषण रहित झरनों कुओं से भी इसमें लाभ मिलता है।
4. **अच्छी गहरी नींद :–** प्राकृतिक जीवन शैली हेतु गहरी नींद द्वारा नई ऊर्जा आरोग्य एवम् शक्ति प्राप्त होती है। सोते समय दिमाग की संचार प्रणाली को ठीक रखने हेतु सभी श्राव व न्यूरॉग इत्यादि सन्तुलित होकर हमें अच्छी नींद लेने में सहायक होते है। नींद के लिए सेरोटोनिन का स्राव बढ़ना आवश्यक होता है। नींद के द्वारा ही शरीर की थकान मिटकर शरीर में नई ऊर्जा का संचार होता है। हमारे शरीर की थकी हुई मांसपेशियां शरीर के विभिन्न अंग तथा स्नायु कोशिकायें ऊर्जावान होती है, नींद हमारे शरीर के लिए संजीवनी का काम करती है।
5. **भरपूर जल सेवन :–** प्रतिदिन 10 से 15 गिलास पानी जिसमें सवेरे खाली पेट शौच से पहले एक या दो गिलास पानी–पीना शरीर के लिए लाभदायक है। इससे अमाशय की धुलाई हो जाती है। पाचन क्रिया सुधरती है। आंतो की गति नियमित व नियंत्रित हो जाने से पेट में कब्ज इत्यादि नहीं होती। इससे खून में पानी की मात्रा ठीक रहने से खून पतला रहता है। पसीना आता है, पेशाब बढ़ता है तथा इन सबके बढ़ने से शरीर में एकत्र विजातीय पदार्थ बाहर निकलते रहते है और विजातीय पदार्थ यदि शरीर में नहीं होंगे तो अवश्य ही शरीर में प्रतिरोधक क्षमता अच्छी होगी।

6. **<u>वातावरण एवम् पर्यावरण :–</u>** हम जहां पर रहते है, काम करते है अथवा प्रातः कालीन भ्रमण, व्यायाम इत्यादि जहां करते है वहां का वातावरण प्रदूषण, धूल, धुन्ध इत्यादि से मुक्त होना आवश्यक है क्योकि प्रदूषित वातावरण अथवा कार्बन डाई आक्साइड एवम् हाइड्रो कार्बन, ठार इत्यादि से जहरीले रसायन निकलकर हमारे रक्त में न धुल सकें इसलिए स्वच्छ वातावरण आवश्यक हो जाता है।

7. **<u>ध्यान एवम् प्रार्थना :–</u>** आज की तनाव भरी जीवन शैली में प्राणायाम एवम् ध्यान की आवश्यकता बहुत अधिक है। हम दिन भर के तनाव से अथवा किसी कारण व क्रोध इत्यादि से नकारात्मक सोच से तथा अनावश्यक चिन्ता से शरीर में कैल्शियम, मैगनीशियम, फौलिक एसिड, विटामिन्स इत्यादि को कम कर देते है तथा कोलोस्ट्रोल इत्यादि बढ़ जाता है। ध्यान के प्रभाव से शरीर में त्वचा, मस्तिष्क तन तथा मन में उथल पुथल का सन्तुलन तथा साम–जस स्थापित होता है। इसके द्वारा अनिन्द्रा उच्च रक्त चाप एल0डी0एल, वी0एल0डी0एल0 तथा खराब कोलोस्ट्रॉल की मात्रा कम हो जाती है। ध्यान अथवा चिन्तन में गायत्री मन्त्र का जाप ऊँ का जाप अथवा प्राणायाम के द्वारा विचार मन और चित्त में शान्ति पैदा होती है।

8. **<u>नशीले पदार्थो से दूरी :–</u>** किसी भी प्रकार के मादक एवम् नशीले पदार्थो का सेवन हमें बिल्कुल नहीं करना चाहिए। शराब, तम्बाकू व अन्य नशीले पदार्थ शरीर में जाकर हमारे विभिन्न अंगो पर बुरा प्रभाव डालते है। इसलिए प्रतिरोधक क्षमता पर भी प्रभाव पड़ता है।

9. **<u>प्रसन्नता एवम् मुस्कुराहट :–</u>** मुस्कुराहट के द्वारा रक्त रासायन अमृत में बन जाता है। साथ ही शरीर के अंग प्रतिअंग भी प्रफुल्लित होते जाते है। इसलिए प्रायः उठते ही मुस्कुराहट के साथ दिन की शुरूआत करें, इसी मुस्कुराहट से तनाव घट जाता है। दुर्भावनायें मिट जाती है तथा घृणा, कुन्ठा, क्रोध, ईर्ष्या के स्थान पर प्रेम, करूणा, त्याग व सेवा का भाव जागृत होता है। जिससे चित्त में प्रसन्नता के साथ–साथ सकारात्मक विचार धारा पनपती है। मुस्कुराहट एक ऐसा धन है जो जीवन भर बाटने के बाद भी कभी घटता नहीं है। अपितु मानसिक हताशा एवम् निराशा को आशा एवम् उत्साह में बदल देता है।

10. **<u>अहिंसा एवम् निर्भयता का पालन :–</u>** भय एवम् हिंसा की प्रवृत्ति से हमारे विचार प्रभावित होते है। जो हमारी सोच को नकारात्मक एवम् करूणा रहित बना देते है। जिससे उनमाद पैदा होने का खतरा रहता है। अतः इस तरह के रोग से बचाव हेतु तथा प्रतिरक्षा प्रणाली को सुदृढ़ बनाने हेतु इसका पालन करना आवश्यक है।

15.4.2 योग एवम् चक्रों द्वारा–

प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में योग के आठो अंगो का पालन करना अर्थात् यम नियम, आसन, प्राणायाम, प्रतिहार, धारणा, ध्यान, समाधि सभी का ज्ञान एवम् व्यवहारिक जीवन में क्रियानवयन आवश्यक है। साथ ही हमारे शरीर में स्थित सातो चक्रो पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। ये चक्र निम्न प्रकार है।

1. **<u>मूलाधार चक्र :–</u>** रक्त वर्ण के चार पंखुडी वाले इस चक्र के सन्तुलन से हमें बुरी वृत्ति एवम् वायु रोगों में लाभ के साथ–साथ आरोग्य एवम् आनन्द की अनुभूति होती है तथा इसी चक्र द्वारा कुण्डलनी एवम् सुषुम्मना नाड़ी जागृति होकर उर्दगामी चक्रो तक ली जाती है।

2. **स्वाधिष्ठान चक्र :–** यह चक्र मूलाधार चक्र से दो अंगुल ऊपर सिन्दूरी रंग के साथ छः पंखुण्डी वाले कमल पर स्थित होता है। जो व्यान वायु को सन्तुलित करता है।

3. **मणिपुर चक्र :–** यह चक्र नाभि मूल के दस पंखुण्डी वाले कमल पर स्थिति है इसे जागृत करने से पाचन संस्थान की उदर सम्बन्धित एवम् गर्भस्त शिशु को ऊर्जा प्रदान करता है। इससे पेट सम्बन्धित सभी रोग एवम् अर्जीणता दूर होकर प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने में सहायक सिद्ध होता है।

4. **अनाहत चक्र :–** यह चक्र हृदय के पास 12 पंखुडी के साथ कमल पर स्थिति इसके जागृत एवम् सन्तुलित होने से फेफड़े, हृदय की रक्षा हेतु रक्त संचार प्रक्रिया को नियंत्रित व नियमित करता है।

5. **पिच्युट्री चक्र :–** यह चक्र गले के कन्ठ प्रदेश के समीप 16 पंखुडी वाला कमल पर स्थिति है। इसके सन्तुलित एवम् जागृत होने से थाइराइड स्वर यंत्र पेराथाइराइड सुनने की शक्ति एवम् भूख प्यास को नियंत्रित एवम् नियोजित करता है। यह मन को शान्त बनाकर भय क्रोध से मुक्त करता है।

6. **आज्ञा चक्र :–** यह चक्र भ्रकुटी के मध्य स्थित है। इसके द्वारा मन की चंचलता एवम् चिति वृत्तियों को प्रभावित करता है। यह सूर्य द्वारा संचालित है। जिसके द्वारा सेरोटोनिन का स्राव बढ़ता है। यह शरीर के समस्त अंगो के सजगता एवम् क्रिया शीलता को बढ़ा देता है।

7. **सहस्त्र चक्र :–** सहस्त्र चक्र को सिर के ऊपरी भाग में धड़कने वाली जगह पर स्थित माना गया है इसके जागृत होने से आत्मानुशासन धैर्य साहस ज्ञान तथा समाधि की उपलब्धि प्राप्त होना बताया है। जो हमारे शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को उन्नति बनाने हेतु एक अचूक चक्र है।

15.4.3 पंचमहाभूत के प्रयोग द्वारा

1. **जल तत्व :–** जल तत्व में प्रयोग होने वाले विभिन्न उपचार विधियों से हम शीघ्र ही आने वाली किसी भी बीमारी को उपचार करके प्रतिरोधक क्षमता के कम होने से बचाकर उसे सुदृढ़ बनाया जाता सकता है। ठंडे कटि स्नान से कब्ज, पेट तथा जांघ का मोटापा, अनिद्रा, स्त्री रोग, एवम् स्वप्न दोष आदि बीमारियों से शरीर की रक्षा करता है तथा गर्म कटि स्नान साइटिका, सूजन, गर्भाशय एवम् पौरूष ग्रन्थि की सूजन गर्दन का दर्द इत्यादि में लाभ करता है। गर्म–ठंडा कटिन स्नान तीन मिनट गर्म 2 मिनट ठंडा या 5 मिनट गर्म 3 मिनट ठंडा की तीन से चार बार पुर्नवृत्ति करें। इससे लिवर, गुर्दे, प्लीहा, एवम् अग्नाशय की सूजन तथा स्त्री रोग उदर रोगों में लाभदायक है।

गर्म पैर का स्नान :– कपी कपी के साथ बुखार आने पर उच्च रक्त चाप, अनिद्रा व तनाव, गठिया व पिन्डली का दर्द, नजला, जुकाम, खासी, दमा, तलवे का दर्द, फैफड़े व कमर में रक्त संचय एवम् दर्द तथा पक्षाघात में लाभदायक है। इस स्नान में सिर पर ठण्डे पानी का तोलिया अवश्य रखना चाहिए।

ठण्डा पैर स्नान, पैर की मोच, थकान, सिर दर्द को ठीक करते हुये दिल और दिमाग को शक्तिशाली बनाता है।

गर्म पाद एवम् हस्त स्नान करवाते समय सिर पर ठण्डे पानी का तोलिया रखते हुये एक–दो गिलास पानी पिलाना चाहिए। इसमें पसीना आने तक उपचार देते है। इससे सिर दर्द, जुकाम, दमा तथा खूनी बवासीर आदि का उपचार किया जा सकता है। रीढ़

स्नान के द्वारा अवसाद, अनिद्रा, उच्च रक्त चाप, मूर्छा, नपुसंकता इत्यादि रोगो में प्रभावकारी है। मेहन स्नान द्वारा उनमाद मस्तिष्क व रीढ़ सम्बन्धी रोग, वीर्य पात, शुक्राणु कम होना इत्यादि में लाभ प्राप्त होता है। भाप स्नान द्वारा स्नायु तन्त्र श्वास कष्ट अथवा दमा, गठिया, पीलिया यूरिक एसिड, लीवर का बढ़ना इत्यादि में अति लाभकारी है।

स्थानीय गर्म लपेट अथवा भाप द्वारा टोन्सिल, थाइराइड आहार नली की सूजन कन्ठ में खराश इत्यादि में लाभ मिलता है। जी0एच0 पैक द्वारा पेट की गैस, अलसर, एसीडिटी, अल्सरेटिव, कोलाइटिस, अतिसार, पेचिश, हर्निया, पेट का मोटापा, गुर्दे तथा अग्नाशय व पित्ताशय इत्यादि उदर रोगों में लाभदायक है।

छाती की लपेट एवम् फैफड़े की लपेट से दमा, खासी, जुकाम व निमोनियां में भाप स्नान देकर पैक लगाना लाभदायक है।

जोड़ो की लपेट घुटना, कमर, टखना, कोहनी, कलाई, कन्धा, उंगुली का दर्द आदि में लाभदायक सिद्ध हुआ है।

सिर की लपेट द्वारा माइग्रेन, सिर दर्द, साइन्स रोगो में सिर की मालिश व भाप के साथ–साथ लपेट लाभ प्रदान करती है।

इसके अतिरिक्त भी जल के आधुनिक प्रयोग एवम् लपेट द्वारा उपचार करने पर हम दवाओं के सेवन से (जो प्रतिरोधक क्षमता को हानि पहुंचाते है) बच सकते है।

2. **मिट्टी तत्व :–** प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में मिट्टी द्वारा चिकित्सा का एक विशेष स्थान है। क्योकि विभिन्न प्रकार की मिट्टी की पट्टियां चाहे वह माथे की पट्टी हो, पेट की पट्टी हो या मिट्टी का स्विंगपूल का स्नान हो या फिर मिट्टी पर नंगे बदन सोने का अभ्यास करें इनसे रोगो से बचाव में सहायता मिलती है। सिर व आंख की मिट्टी पट्टी से सिर दर्द, आंख के रोग, उच्च रक्त चाप, एवम् तनाव में विशेष लाभ प्राप्त होता है।

मिट्टी के चेहरे व कान के विभिन्न रोगों में लेप के रूप में प्रयोग की जाती है तथा रीढ़ की हड्डी व शरीर के अन्य जोड़ो पर भी इसका प्रयोग करके दर्द, सूजन अथवा मोच में विशेष लाभ प्राप्त कर सकते है। मिट्टी के स्विंगपूल में सम्पूर्ण शरीर की मिट्टी लेप द्वारा 2 से 3 घण्टे उसमें रहकर उसके बाद मिट्टी साफ करके धूप में 8 से 10 मिनट तेल की मालिश करने के बाद सोना बाथ द्वारा मोटापा, खुजली, सफेद दाग, अवसाद आदि में यह त्वचा की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाकर स्वास्थ प्रदान करता है। मिट्टी पर नंगे बदन लेटने या सोने या नंगे पैर चलने से स्नायु की कमजोरी, अनिद्रा, डिप्रेशन रक्त चाप, कमजोर श्रम शक्ति व अन्य शारीरिक एवम् मानसिक कमजोरियों में लाभ पहुंचाता है।

3. अग्नि तत्व अथवा सूर्य किरण चिकित्सा द्वारा प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने हेतु सूर्य की ऊर्जा का उपयोग विभिन्न रूपों में करते है। आज के जीवन शैली में सूर्य से शहरी लोग विशेषकर शहरी महिलायें दूर रहकर मोटापा, आस्टियों पोरोसिस तथा कैल्शियम व विटामिन डी की कमी से ग्रहसित है। धूप स्नान अथवा धूप से प्रतिरोधक क्षमता को बचाये रखने हेतु सारे शरीर में तेल की मालिश करें तथा नंगे शरीर को केले अथवा नीम के पत्तों से ढककर अथवा सारे शरीर पर मिट्टी का लेप करके ही धूप स्नान लें। धूप स्नान लेते समय गीली चादर की लपेट भी लगा सकते है।

सूर्य किरण में उपलब्ध विभिन्न रंगो द्वारा चिकित्सा से प्रतिरोधक क्षमता निम्न प्रकार बढ़ा सकते है।

1. लाल रंग गर्मी पैदा करने वाला होता है। इसके द्वारा खून का प्रवाह तथा स्नायु प्रवाह को बढ़ाते हुये दर्द व सूजन को कम किया जाता है। लाल रंग द्वारा केवल तेल को अविष्ट (धूप में तेल को चार्ज करना) किया जाता है।

2. नारंगी तथा पीला ये दोनो रंग लक्वा, सन्धिवात, गठिया, सर्दी तथा जुकाम खासी, मोटापा, पोलियों एवम् स्नायु की कमजोरी में या तो इस रंग के द्वारा चार्ज किये गये पानी की पट्टी लगाकर के अथवा इस पानी को पीने से लाभ प्राप्त होता है।

3. हरा रंग मूत्र संसथान, खुजली, आंखो के रोग, अतिसार, पेशाब रूकना, कान बहना, खूनी बवासीर, घाव आदि में पीने से अथवा पट्टी करने से फायदा पहुंचाता है।

4. आसमानी रंग के द्वारा चार्ज पानी से अनिद्रा, बेहोशी, उल्टी, हैजा, पीलिया रोग, कुष्ठ रोग, यकृत व अधिक मानसिक स्राव में लाभ प्राप्त होता है।

5. नीला रंग का पानी पेट की गर्मी सभी प्रकार के बुखार, दांतो का दर्द, फोड़े फुन्सी, मुंह के छाले तथा अनियमित महामारी में प्रभावशाली है।

6. बैगनी रंग के पानी से सभी प्रकार के चर्म रोग, उच्च रक्त चाप, क्षय, मधुमेह, गैंगरीन तथा स्नायु सम्बन्धी विकारों में लाभप्रद है। लाल रंग के विकिरण वल्व द्वारा सेक करने से गठिया, सर्दी, जुकाम, पसली का दर्द, मोच या सूजन पर पांच मिनट में ही लाभ मिलता है।

4. आकाश तत्व द्वारा प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के उपाय :– आकाश से अभिप्राय उपवास चिकित्सा है। उपवास प्राकृतिक चिकित्सा की महत्वपूर्ण चिकित्सा प्रणाली है। प्रायः दो से पांच दिन तक का उपवास प्राकृतिक चिकित्सा में लम्बी बीमारियों के उपचार में कराया जाता है। इससे शरीर की कोशिकाओं को नया जीवन प्राप्त होता है। उपवास विभिन्न प्रकार का जैसे फलोपवास, जलापवास, रसोपवास, नीबू शहद पर आंशिक उपवास आदि का होता है। विश्व में किये गये विभिन्न शोधों के अनुसार शरीर में भोजन के पाचन से लेकर उसके उत्सर्जन एवम् उपाचय का काम लगातार चलता रहता है। शरीर की स्वंय हीलिंग शक्ति तथा टूट–फूट को मरम्मत करने की प्रणाली उपवास के बाद गतिशील हो जाती है। उपवास काल में हीमोग्लिोविन बढ़ जाता है। कैल्शियम तथा लोहा हड्डियों को मजबूत करता है तथा इन्सुलिन सहन शक्ति ठीक होती है। उपवास में उम्र को लम्बा करने वाले शक्तिशाली इन्जाइम्स का निर्माण होता है। उपवास के दैरान कैंसरकारी कुछ कोशिकायें नियंत्रित हो जाती है तथा विभाजन दर भी कम हो जाती है। इसके द्वारा पाचन संस्थान के सभी अंगो के साथ छोटी व बड़ी आंत को आराम मिल जाता है। उपवास काल में शारीरिक मानसिक व आध्यात्मिक रूप से विश्राम मिल जाता है। लेकिन यह ध्यान रहे कि एक ओर उपवास हमारी पाचन शक्ति को मजबूत करके शरीर में चुस्ती एवम् फुर्ती प्रदान करता है। वहीं दूसरी ओर अत्यधिक कमजोरी गर्भावस्था, पेट व आंत का अल्सर नसे के आदि होने की अवस्था में, मधुमेह में उपवास निषेध है। अथवा किसी विशेषज्ञ के निर्देशन में करने का प्रयास करें। आकाश तत्व में मौन का बड़ा महत्व है। इसमें केवल भाषा का ही बोलने का मौन नहीं होता अपितु मन का नहीं होना भी आवश्यक है। क्योकि बोलने के पीछे मन की चंचलता छिनी रहती है। इसलिए संगीत अथवा शोर से दूर रहना भी उतना ही आवश्यक है। मौन से सकारात्मक शक्ति का विकास होता है, तनाव बढ़ाने वाले हार्मोन जिसको काटिसोल नाम से जाना जाता है। उसका स्तर भी घट जाता है। जिससे दिल की धड़कन नियमित होकर शान्ति मिलती है।

वायु तत्व द्वारा प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के उपाय :– वायु का सेवन हम दो प्रकार से करते है। एक श्वास द्वारा शरीर के अन्दर भरते है। दूसरा शरीर के रोम छिद्रो द्वारा बिना कपड़ो या कम कपड़ो से वायु तत्व ग्रहण करते है। आन्तरिक वायु स्नान की दृष्टि से प्राणायाम एक अद्भुत प्रयोग है। इसके द्वारा हम शरीर की खरबों कोशिकाओं को आक्सीजन प्रदान करके रोग मुक्त व चुस्त बनाते है। इससे खून के शुद्धिकरण तथा निर्माण की प्रक्रिया बढ़ जाती है। प्राणायाम के द्वारा मस्तिष्क को अत्यधिक आक्सीजन प्राप्त होने से दीमाग, फेफड़े का लचीला पन तथा वाइटल कैविस्टी के बढ़ जाने से दमा ब्रोकाइटिस जैसी अनेको बीमारियों से छुटकारा प्राप्त होता है तथा यादाश्त बढ़ जाती है। इसके द्वारा मेघा शक्ति, बुद्धि व यादाश्त बढ़ने के साथ ही शरीर सुन्दर व सुडौल बनता है। चेहरे की ओर रक्त संचार से आक्सीजन की आपूर्ति आत्मा मण्डल को विकसित करती है।

ऋतुओं में क्या करें और क्या ना करें द्वारा प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाए :– हमें कुछ ऐसी खाद्य वस्तुऐं है जिनका सेवन एक साथ नहीं कर सकते है परन्तु कुछ ऐसे भी है जो आवश्यक है :–

1. दूध के साथ दही, प्याज, अचार, सिरका, मूली व मांस–मछली का सेवन ना करें ।
2. खाने से एक दम पहले, खाने के बीच में व खाने के तुरन्त बाद कभी भी ज्यादा पानी पाचन बिगाड़ देता है।
3. शहद व घी की बराबर मात्रा में सेवन करना खतरनाक है। क्योकि बराबर की मात्रा से विष बन जाता है।
4. मिर्च–मसाले–ज्यादा सेवन करने से विभिन्न स्राव असन्तुलित हो जाते है।
5. ज्यादा गर्म एवं ज्यादा ठण्डे अथवा बासी भोजन ग्रहण ना करें।
6. स्नान से पहले व खाने के बाद पेशाब अवश्य करें।
7. भोजन देर रात्रि में ना करें – सोने से 2 घण्टे पहले करें तथा खाने के आधे घण्टे बाद व सोने से पहले एक या दो बार पानी का सेवन करने से पाचन ठीक होता है।
8. सोने से पहले चाय–काफी का सेवन ना करें तथा पैर धोकर सोने जायें।
9. खाने को कम से कम एक टुकड़ा 32 बार चबाकर ही खायें।
10. क्या, कितना, कब और क्यों खायें का ज्ञान रखते हुये भोजन की मात्रा, गुण व ताजा देखकर खायें।
11. हेमन्त ऋतु में ठण्ड होने के कारण पाचन अच्छा होता है इसलिए चिकने, दूध के पदार्थ, गुड़ चीनी मिश्री इत्यादि का सेवन करें तथा सत्तु या वात प्रधान भोजन नहीं करना चाहिए।
12. शिशिर ऋतु में कटु–तिक्त–कसाय, वात वर्धक व शीतल भोजन त्याग देना चाहिए तथा दिन में नही सोना चाहिए। पंचकर्म करना चाहिए, मीठा/मधुर कम लेना चाहिए।
13. ग्रीष्म ऋतु में मधुर–घी–दूध चावल का सेवन करना चाहिए। अम्ल, कटु, ऊष्ण व लवण आदि का सेवन नहीं करना चाहिए। व्यायाम अधिक नहीं करना चाहिए। शीतल पानी मात्रा बढ़ा देनी चाहिए।
14. वर्षा ऋतु में जठराग्नि कमजोर हो जाती है तथा वात कुपित हो जाता है। अम्ल, लवण व चिकने पदार्थो का सेवन करना चाहिए। पानी उबालकर ठण्डा करके पीना

चाहिए व सूती कपड़े व ठीक से ढीले वस्त्र धारण करने चाहिए। वर्षा ऋतु में ओस में सोना, जौ का सत्तु पीना, धूप में बैठना छोड़ देना चाहिए।

15. शरद ऋतु में पित्त कुपित हो जाता है। इसलिए पित्त शांत करने वाले शीतल, तिक्त, रसयुक्त आहार अधिक लेना चाहिए। तथा सूर्य मांस–मछली, घी–दही, तेल, क्षार व दिन का शमन ना करें।

16. शिशिर के बाद बसन्त ऋतु में शारीरिक बल मध्यम होता है। सूर्य द्वारा कफ कुपित होकर कष्ट कारक बनता है। गर्म मीठे व चिकने आहार नहीं लेना चाहिए ना दिन में सोना चाहिए। गेहूँ का सेवन, मधु तथा ताजा भोजन का सेवन करना चाहिए।

उपरोक्त ऋृतुओं के अनुसार क्या करें, क्या न करें द्वारा हम अपनी प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ा सकते है। शरीर की मालिश द्वारा भी हम अपनी प्रतिरोधक क्षमता को उन्नत कर सकते है। साथ ही एक्युप्रैशर बिन्दुओं तथा चुम्बुक चिकित्सा एवं चुम्बुकीय चार्ज पानी पीकर भी स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है।

15.5 सारांश

आपने इस इकाई के माध्यम से ऊपर अध्ययन किया कि प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में कुछ सूत्रों का ज्ञान होना जितना आवश्यक है उतना ही आवश्यक है कि हम दिन चर्या कुछ परिवर्तन करके खान–पान, निद्रा, व्यायाम, प्राणायाम, आचार विचार, उत्तेजक पदार्थो से बचाव तथा पंचमहाभूत तत्वों के द्वारा कुछ उपचार कर लेने व ध्यान सादना के द्वारा हम अपने शरीर के विभिन्न चक्रों का सन्तुलन एवम् उन्हे जागृत करने हेतु प्रयास करके अपनी जीवनी शक्ति को अथवा प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने में सफलता प्राप्त कर सकते है। जो आज के इसी मशीनी युग में अनियमित जीवन शैली के कारण उत्पन्न हुये तनाव एवम् विविध रोगो से बचने में सहायक सिद्ध हो सकते है। उपरोक्त उपाय एवम् सुझावों पर विशेष ध्यान देते हुये हम स्वयम् को अपने परिवार को एवम् सगे सम्बन्धियों को साथ ही पूरे समाज देश व संसार को स्वास्थ एवम् आरोग्य प्रदान करने में सहायक सिद्ध हो सकते है।

15.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

प्राकृतिक आर्युविज्ञान	–	डॉ0 राकेश जिन्दल
प्राकृतिक चिकित्सा दर्शन एवम् व्यवहार	–	डॉ0 हेनरी लिंडहार
वृह्द प्राकृतिक चिकित्सा	–	डॉ0 ओ0पी0 सक्सेना
आदि ऊर्जा प्राण	–	अमृता भारती
प्राकृतिक चिकित्सा एवम् योग	–	डॉ0 नागेन्द्र कुमार नीरज

15.7 निबंधात्मक प्रश्न

प्र0–1 प्रतिरोधक क्षमता के अर्थ एवम् महत्व पर प्रकाश डालिये ?
प्र0–2 चक्रों द्वारा प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के उपाय लिखें ?
प्र0–3 जलतत्व प्रयोग द्वारा प्रतिरोधक क्षमता कैसे बढ़ा सकते है ?
प्र0–4 जीवन शैली का प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में क्या योगदान है ?
प्र0–5 पंचमहाभूत किस प्रकार प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाते है ?

इकाई –16 प्राकृतिक चिकित्सा एवम् आधुनिक चिकित्सा पद्धति

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 प्राकृतिक चिकित्सा
16.4 आधुनिक चिकित्सा (एलोपैथी)
16.5 प्राकृतिक चिकित्सा एवम् आधुनिक चिकित्सा में सम्बन्ध
16.6 सारांश
16.7 सन्दर्भ ग्रन्थ
16.8 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति प्रकृति के प्रारम्भ से ही सभी के लिए सभी रोगों में सर्वोपरि प्राचीनतम पद्धति समझी जाती है। क्योकि उस समय में तनाव एवम् अन्य घटक जैसे पर्यावरण, खान–पान, कार्य शैली, जीवन शैली को दोष पूर्ण स्थिति नहीं पाई जाती थी। इस कारण अन्य किसी चिकित्सा पद्धति की आवश्यकता महसूस नहीं हुई थी। समय के साथ–साथ रोगों की प्रकृति भी विकराल होती गई और विभिन्न पद्धतियों का आगमन सुनिश्चित होता गया। जो क्रमशः आयुर्वेद, होमोपैथी, यूनानी एवं सिद्धा और आज की सबसे अधिक प्रचलित व प्रभावी समझे जाने वाली आधुनिक चिकित्सा पद्धति जो एलोपैथी के नाम से जानी जाती है, का पदार्पण हुआ।

आज की आपातकालीन स्थिति में सबसे महत्वपूर्ण एवम् एकमात्र ऐसी पद्धति है जो जन मानस के पटल पर अपनी छाप सिद्धि कर चुकी है। आइऐ प्राकृतिक चिकित्सा एवम् आधुनिक चिकित्सा किस प्रकार एक दूसरे के पूरक बन सकती है अथवा एक दूसरे से बिल्कुल अलग खड़ी नजर आती है अथवा आज के जीवन शैली के रोगो में दोनो का क्या महत्व है अर्थात् क्या सम्बन्ध है इसका अध्ययन करने हेतु पहले हम जानकारी प्राप्त करते है।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई में आधुनिक चिकित्सा पद्धति एवं प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति के मुख्य आधार का अध्ययन करेंगे तथा प्राचीनतम प्राकृतिक चिकित्सा व आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की एलोपैथी पद्धति के सम्बन्धों का अध्ययन करेंगे ।

16.3 प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति

वर्तमान युग में मानव ने अप्रत्याक्षित रूप से विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र में व्यापक रूप से प्रगति की है तथा यह प्रगति निरन्तर तीव्र गति से प्रगतिशील भी है जिसके परिणाम स्वरूप जहां मनुष्य को भौतिक सुख–सुविधायें उपलब्ध हुई है वहीं उसका जीवन अति व्यस्त हुआ जिसके कारण प्रत्येक मनुष्य शारीरिक, मानसिक अथवा भावनात्मक स्तर पर तनाव ग्रस्त, अघारित तथा अस्वस्थता की शरण में पड़ा हुआ प्रतीत होता है। उसका जीवन अप्राकृतिक हो गया है अर्थात् उसका आहार फास्ट फूड, जंक फूड, प्रोसेस्ड फूड पर अधिक आधारित

हो गया है। उसका विहार भी अनियमित हो गया है तथा उसका व्यवहार एवं विचार भी नकारात्मक हो गये है।

प्राकृतिक जीवन की आधारभूत क्रियायें जैसे भूख लगना, नींद का आना, प्रसन्न रहना, नयी स्फूर्ति तथा शक्ति का आभास होना आदि मानव जीवन से विलुप्त होती प्रतीत होती है। मनुष्य इन प्राकृतिक आधारभूत क्रियाओं अथवा स्वास्थ्य की खोज एवं प्राप्ति के लिए आधुनिक चिकित्सा पद्धति की शरण में जाता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान जिसका सिद्धान्त लक्षणों पर आधारित है तथा लक्षणों के आधार पर औषधियों के द्वारा उन लक्षणों का शमन कर दिया है। परिणाम स्वरूप तीव्र रोग के लक्षण दब जाते है, रोगी को लाभ होता है। परन्तु न्यूटन के गति के नियम तृतीय के अनुसार ''प्रत्येक क्रिया की विपरीत व समान मात्रा में प्रतिक्रिया होती है'' के अनुसार औषधियों द्वारा दबे हुये लक्षण पुनः व अधिक तीव्रता से प्रकट होते है तब तीव्र रोग, जीर्ण रोग में परिवर्तित हो जाते है। पुनः आधुनिक चिकित्सा पद्धति के चिकित्सक की शरण में जाते है। चिकित्सक औषधियों की मात्रा बढ़ाकर पुनः उन लक्षणों का शमन कर देते है। रोगी को लाभ मिलता है। कुछ समय पश्चात पुनः लक्षणों का प्रकट होने पर औषधि चिकित्सा द्वारा उपचार ले लेने के बाद अक्सर यह देखने में आया है कि वह जीर्ण रोग असाध्य रोग में परिवर्तित हो जाता है। यह सूक्ति की मर्ज बढ़ता गया ज्यों–ज्यों दवा की सार्थक हो जाती है।

उपरोक्त कथन वर्तमान जीवन में स्वास्थ्य व चिकित्सा की प्राप्ति के लिए मटकते मनुष्य की है। आधुनिक चिकित्सा में रोग के कारण पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। अन्ततः परेशान होकर रोगी प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति की शरण में आता है। जहां उसके रोग के लक्षणों की नहीं बल्कि रोगी के शरीर, मन व आत्मा की चिकित्सा होती है तथा सम्पूर्ण स्वास्थ्‍ प्राप्त होता है।

आज के युग में निरोग व्यक्ति की कामना करना केवल कल्पनातीत हो गया है। रोगी व्यक्तियों का प्रतिशत अधिक होने के कारण आज ''प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति'' का नाम दिया गया है। वास्तव में आरम्भ में प्राकृतिक जीवन पद्धति का नाम प्रचलन में था।

<u>प्राकृतिक चिकित्सा की परिभाषा :–</u>

''प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति'' अपोरूषेय है। अर्थात इसकी उत्पत्ति मनुष्य के द्वारा नहीं हुई है। यह आदि काल से जब प्रकृति बनी है तभी से इसकी भी उत्पत्ति है अन्तर केवल यह है कि आदि काल में इसको ''प्राकृतिक जीवन पद्धति'' नाम से जाना जाता था। उस समय मनुष्य प्राकृतिक जीवन शैली के द्वारा जीवन यापन करता था।

यह जीवन को कैसे सुखमय, हितमय, प्रसन्न तथा शान्तिपूर्ण बनाना सिखाता है। संक्षेप में हम प्राकृतिक चिकित्सा इस प्रकार से परिभाषित कर सकते है।

<u>प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों द्वारा की गई चिकित्सा प्राकृतिक चिकित्सा कहलाती है।</u>

उपरोक्त परिभाषा में दो शब्द लिये गये है एक 'प्रकृति' व दूसरा शब्द 'प्राकृतिक संसाधन' अर्थात् इन दोनों के द्वारा या इन दोनो में से एक के द्वारा की गई चिकित्सा प्राकृतिक चिकित्सा कहलाती है।

<u>प्रकृति द्वारा चिकित्सा :–</u> प्रकृति द्वारा चिकित्सा से तात्पर्य है कि हमको किसी भी प्रकार क्लेश उत्पन्न होने पर प्रकृति उसका उपचार स्वंय करती है जैसे कि –

1. आंखों में कोई धूल का कण या सूक्ष्म कीट पड़ जाने पर उपचार स्वरूप आंखो से पानी आंसू के रूप में निकलने लगते है तथा तब तक निकलते रहते है जब तक आंखो में पड़ा हुआ कण या कीट बाहर न निकल जायें।

2. नासाछिद्रो में भी कोई धूल का कण, सूक्ष्म कीट, पौधो के सूक्ष्म बीजाणु या अति गर्म या अति गर्म या ठंडी वायु का प्रवेश होने पर छींक उपचार स्वरूप आ जाती है। यदि हमस ूर्य की ओर नासाछिद्र करके कुछ क्षण देखे तो सूर्य की किरणें नासाछिद्र में प्रवेश करती है उसका तापमान अधिक हो जाने पर भी छींक आती है।

3. स्वाद–स्वाद में भोजन अधिक मात्रा में लेने पर अथवा मद्यपान करने वाले व्यक्ति अधिक मद्यपान कर लेने पर उनको वमन हो जाती है। यह वमन भी उनके लिए उपचार स्वरूप होती है। यदि उनसे पूछें कि अब कैसा लग रहा है, उनका यह कहना होगा कि अब अच्छा अनुभव कर रहे है।

उपरोक्त उदाहरणों में हम यही देखते है क्लेश उत्पन्न होने पर प्रकृति के द्वारा उपचार किया गया है।

इसका विस्तृत वर्णन प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त में से एक कि ''प्रकृति स्वंय चिकित्सक है'' में कर सकते है।

प्राकृतिक संसाधनों द्वारा चिकित्सा :–

प्रकृति एवं पुरूष दोनो पंच महतत्व द्वारा निर्मित है। ये पंचमहतत्व आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी है कहा भी गया है :–

''यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे''

संत तुलसी दास द्वारा रचित राम चरित मानस में भी एक चौपाई है

''क्षिति जल पावक गगन समीरा, पंच रचित यह अद्यम शरीरा ।।

अर्थात् आकाश, जल, पृथ्वी, अग्नि तथा वायु से ही इस शरीर का निर्माण हुआ है। प्रत्येक तत्व का एक अपना गुण होता है।

प्रकृति की उत्पत्ति :– सृष्टि के आरम्भ सर्वप्रथम ईश्वर की चेतना शक्ति की प्रेरणा से ''शब्द'' तन्मात्र का प्रादुर्भाव हुआ जिससे आत्मा का बोध कराने वाला आकाश उत्पन्न हुआ। अन्य चार तत्वों के अवकाश देना, संचार का माध्यम बनना, ये आकाश के कार्य रूप लक्षण है। यह सबसे सूक्ष्मतम महत्व है।

तत्पश्चात निष्क्रिय शान्त 'आकाश' में कालगति से विकार होने पर उससे गत्यात्मक तत्व वायु की उत्पत्ति हुई। वृक्ष की शाखाओं व पत्तियों को हिलाना, तृणादि को एकत्र कर देना, सर्वत्र गतिशील होना, गन्धावि युक्त द्रव्य को घृणादि इन्द्रियों के पास तथा शब्द को ज्ञानेन्द्रिय के पास ले जाना तथा समस्त इन्द्रियों को कार्य शक्ति देना – ये वायु के कार्य है। इसका गुण स्पर्श है।

तद्न्तर ईश्वर की प्रेरणा से महाबलवान वायु के विकृत होने पर संसार के नेत्र रूप तेज 'अग्नि' की उत्पत्ति हुई। चमकना, पकाना, शीत को दूर करना, सुखाना, भूख–प्यास (जठराग्नि स्वरूप) पैदा करना, उसकी निवृत्ति के लिए योजनादि पकाना व पचाना, सृष्टि का क्रम बन रहने में सहयोग क्रम में काम की उत्पत्ति करना आदि ये 'अग्नि' के कार्यरूप लक्षण है। इसका गुण 'रूप' है।

तत्पश्चात दैव प्रेरित रस स्वरूप 'जल' की उत्पत्ति अग्नि के विकृत होने पर हुई। गीला करना, मिट्टी आदि को पिंड बनाकर रूप देना, तृप्त करना, प्यास बुझाना, पदार्थो को मृदु करना, ताप को शान्त करना आदि जल के कार्य रूप लक्षण है।

इसके पश्चात ईश्वर प्रेरित रस स्वरूप जल के विकृत होने पर गन्ध–गुणमयी पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। अन्य तत्वों की अपेक्षा किये बिना अपने ही आधार में स्थित होना, 'आकाश' आदि का अवच्छेदक होना तथा सम्पूर्ण प्राणियों के स्त्रीत्व पुरूषत्व आदि गुणों को

प्रकट करना। ये पृथ्वी के कार्य रूप लक्षण है। सृष्टि के अन्य प्राणियों के लिए भोजन एवं औषधि आदि के लिए वनस्पतियों को धारण करना भी पृथ्वी तत्व का कार्य है।

उपरोक्त पांचों तत्वों के निर्माण होने पर प्रकृति की उत्पत्ति हुई। यही तक यह जड़ स्वरूप प्रकृति रही। ईश्वर ने अपनी चेतना का प्रवेश कराया जिसको ''महत्व'' कहते है तब अन्य प्राणियों व पुरूष (चेतन) स्वरूप की उत्पत्ति हुई।

तत्व	गुण
आकाश एक गुण	शब्द
वायु दो गुण	शब्द + स्पर्श
अग्नि तीन गुण	शब्द + स्पर्श + रूप
जल चार गुण	शब्द + स्पर्श + रूप + रस
पृथ्वी पांच गुण	शब्द + स्पर्श + रूप + रस + गन्ध

उपरोक्त पांच तत्वों में पहले के तीन तत्व आकाश, वायु तथा अग्नि से जीवन शक्ति को बल मिलता है तथा अन्तिम दो तत्व जल और पृथ्वी (भोजन के रूप में) शरीर की पृष्टि करते है। जीवन शक्ति स्वंय एक स्वतन्त्र सत्ता है जो शरीर से भिन्न एवं उससे उच्च है।

यह अकाट्य सत्य है कि किसी भी वस्तु के उत्पादन में जिन आधारभूत तत्वों का उपयोग किया जाता है। आवश्यकता होने पर उस वस्तु के टूटने या खराब हो जाने पर उसको सुचारू रूप से क्रियान्वित होने के लिए हम उन्हीं आधारभूत तत्वों का प्रयोग करेंगे जिनका उस वस्तु के निर्माण के लिए किया गया था। उदाहरण के लिए हमारे वस्त्र अगर सूती है या रेश्मी या ऊनी यदि उसके फटने पर उनको सिलने की आवश्यकता होने पर सूती कपड़ो में सूती धागा, रेश्मी धागो का प्रयोग रेश्मी वस्त्रों को ठीक करने में प्रयोग करेंगे। सूती कपड़े में रेश्मी धागे नहीं लगायेंगे सूती धागो का ही प्रयोग करेंगे। तथा अन्य उदाहरण में किसी भवन में यदि मारवल का प्रयोग है या मिट्टी व भूसे का प्रयोग हुआ है तो आवश्यकता होने पर मारवल से बने भवन में मारबल का प्रयोग करेंगे तथा मिट्टी व भूसे से बने भवन में मिट्टी व भूसे का प्रयोग करेंगे।

इसी प्रकार से मनुष्य का शरीर भी जब पांच तत्वों द्वारा निर्मित है तो जब शरीर रोग ग्रस्त हो जाता है उसके अंग या तन्त्र सुचारू रूप से कार्य नहीं करते है तो प्राकृति रूप से हम उन्ही तत्वों का प्रयोग करेंगे अर्थात् जब शरीर आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी तत्व से निर्मित हुआ है तो रोग ग्रस्त होने पर इन्ही पांचो तत्वों का प्रयोग करना चाहिए। इसके लिए किसी औषधि या अन्य तत्व की आवश्यकता नहीं होती है। यदि हम किसी अन्य तत्व (औषधि) आदि का प्रयोग करते है तो मात्र विकल्प ही होगा उपचार नहीं।

प्रकृति के पांच तत्व ही प्रमुख प्राकृतिक संसाधन होते है। इन्ही पांच तत्वों द्वारा की गई चिकित्सा प्राकृतिक चिकित्सा कहलाती है। संक्षेप में हम कह सकते है कि

1. **आकाश तत्व द्वारा चिकित्सा :–** आकाश सबसे सूक्ष्म तत्व है, यह शरीर में सान्धियों, फेफड़ों में, आंतो में आदि से लेकर प्रत्येक कोशिका में रिक्तिका के रूप में स्थित होता है। इसके अन्तर्गत उपवास मुख्य चिकित्सा का रूप है। इसके साथ ध्यान, मन, कर्म तथा वाणी का संयम, सदाचार एवं विश्राम अन्य चिकित्सा के साधन होते है।

2. **वायु तत्व द्वारा चिकित्सा :–** वायु तत्व द्वारा चिकित्सा के अन्तर्गत हम श्वसन क्रिया को प्राणायाम की विधियों द्वारा आन्तरिक रूप से प्रयोग में लेते है। जिसमें शरीर में आक्सीजन (प्राण वायु) का अधिक प्रयोग हो सके तथा कार्बन डाइ आक्साइड (अशुद्व) वायु

शरीर से प्रश्वसन द्वारा शरीर से बाहर निकल सके। इसके साथ कृत्रिम रूप से ठंडी अथवा गर्म वायु को आवश्यकता अनुसार आंशिक या पूर्ण रूप से रोग के शरीर पर करते है।

प्रतः काल टहलना, दौड़ना, आदि जिससे वायु का स्पर्श हमारे शरीर पर हो सकें इसको हम वायु स्नान भी कह सकते है।

3. **अग्नि तत्व द्वारा चिकित्सा :–** अग्नि एवं प्रकाश का मुख्य स्त्रोत है। अतः अग्नि तत्व द्वारा चिकित्सा में सूर्य प्रकाश का सेवन आवश्यकतानुसार रोगी के शरीर पर आंशिक अथवा पूर्ण रूप से किया जाता है इसको धूप स्नान भी कहते है।

सूर्य की किरणों में दृष्य तथा अदृष्य दोनो प्रकार की किरणें होती है। अदृष्य किरणें इन्फ्रारेडरेज तथा अल्ट्रावायलर रेंज होती है इनका भी चिकित्सकीय दृष्टि से उपयोग होता है।

दृष्य किरणें सात रंग की होती है जो कि हम प्रायः इन्द्रधनुष में देखने को मिलती है। लाल रंग, नारंगी, पीला, हरा, नीला, आसमानी तथा बैगनी रंग की किरणों तथा इन किरणों से तृप्त जल, तेल, घी, मिश्री आदि का प्रयोग चिकित्सा में किया जाता है। इस चिकित्सा को रंगीन रश्मि चिकित्सा (Chromotherapy) भी कहा जाता है।

4. **जल तत्व द्वारा चिकित्सा :–** जल की तीनो अवस्थाओं ठोस, द्रव्य तथा गैस का कक्रशः बर्फ, पानी, (द्रव्य रूप में) तथा वाष्प के रूप में चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है।

भ्रम, क्लान्ति, मूर्च्छा, पिपासा, तन्द्रा, वमन और निद्र को दूर करना, शरीर को बल देना व उसे तृप्त रखना, हृदय को प्रफुल्लित रखना, शरीर के दोषों को दूर करना, छः प्रकार के रसों का कारण बनना, विजातीय द्रव्य को घोल कर मूत्र व पसीने के रूप में शरीर से बाहर निकालना जल के कार्य है। जल समुचित मात्रा में पीना स्वंय ही चिकित्सा का कार्य करता है।

शीतलता, सरलता, हल्कापन, स्वच्छता, व्यापकता, मेह्यता (Permetability), अस्थिरता (Mobility) तथा निर्गुणता जल के प्राकृत गुण है।

आप इद्धा 3 मेषजोरापो अभवि चातर्ना : ।
आपस सर्वस्य मेषजोस्तास्तु कृण वनतु मेषजम ।।

अर्थात् जल ही औषधि है, जल रोगो का शत्रु है, यह सभी रोगों का नाश करता है, इसलिए ये तुम्हारा रोग दूर करें।

ठोस रूप में जल का प्रयोग :– बर्फ की सेंक तथा आइस मसाज का प्रयोग बहते रक्त को (कटने की स्थिति) रोकने में, वमन की चिकित्सा में अमाशय के स्थान पर, मूर्च्छा में, इसका प्रयोग करते है।

द्रव रूप में जल का प्रयोग :– ठंडे, गर्म, ठंडा व गर्म पानी की सेंक, कटि स्नान, रीड़ स्नान, हाथ व पाद स्नान, इयरशन बाथ, जाकूजी, शावर बाथ, सरकुलर बाथ आदि के रूप में चिकित्सकीय प्रयोग होता है।

वाष्प के रूप में जल का प्रयोग :– स्थानीय अथवा पूर्ण वाष्प स्नान (Stream Bath) के रूप में प्रयोग होता है।

5. **पृथ्वी तत्व का चिकित्सीय प्रयोग :–** पृथ्वी में गुरूत्वाकर्षण बल चुम्बकीय बल तथा विद्युत बल उपस्थित रहता है जिसके कारण पृथ्वी में धारण शक्ति होती है। पृथ्वी तत्व द्वारा चिकित्सा में मिट्टी का प्रयोग मिट्टी की पुट्टी का प्रयोग स्थानीय रूप से किया

जाता है। दर्द तथा शोध के स्थान पर मिट्टी की पुल्टिस बनाकर वांछित स्थान पर करते है।

मिट्टी का आंशिक व सम्पूर्ण लेप का भी चिकित्सा की दृष्टि से प्रयोग किया जाता है।

मिट्टी में अवशोषण शक्ति होने के कारण इसका प्रयोग यद्रबाध के रूप में भी किया जाता है।

डॉ0 लिण्डल्हार, प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक के अनुसार :– मिट्टी त्वचा के के रोम कूपों को खोलती, रक्त को ऊपरी मात्रा में खींचती अन्दर के दर्द व रक्त संचय को दूर करती है और विजातीय द्रव्य को बाहर निकालती है।

16.4 आधुनिक चिकित्सा पद्धति

एलोपैथी प्रणाली में मनुष्य शरीर में उत्पन्न व्याधि और अनियमित्ताओं की लांच व उसका निदान उस रोग के लक्षण जानकर उनके विरूद्ध लक्षणों वाली दवाई अथवा सर्जरी से किया जाता है। ऐसा करते हुये साधारणतया उस दवाई का शरीर के दूसरे अंगो पर क्या प्रभाव पड़ेगा, का ध्यान नहीं रखा जाता। दवा का चयन पुस्तकों में वर्णित दिशा निर्देशों के अनुसार किया जाता है। इस प्रणाली में मनुष्य की स्वस्थ स्थिति वह है जिसमें कोई नजर आने वाली व्याधि न हो। इस प्रणाली में प्रयोग में आने वाली दवाएं रसायनिक है व प्रयोगशालाओं में बनाई जाती है व उत्पादन बड़े औद्योगिक समूहो द्वारा किया जाता है। परीक्षण के लिए भी विभिन्न प्रकार के टेस्ट एक्सरे, सी0टी0 स्कैन, एम0आर0आई, ई0ई0जी0, आदि किये जाते है जिनके परिणाम पूर्व निर्धारित मापदण्डों पर ही देखे जाते है व उनके लिए अलग–अलग कोड है। इस प्रणाली में मनुष्य के शरीर के सारे अवयवों को अलग–अलग परखा जाता है और उसी अनुसार अलग–अलग स्पेशियलीस्ट माने जाते है। इस प्रणाली के चिकित्सको की योग्यता के लिए मेडिकल कॉलेज जिनकी पढ़ाई काफी महंगी है, लाईसेन्स की आवश्यकता अनिवार्य है। नई दवा को सफल करने के लिए अन्धाधुन्ध खर्च किया जाता है जिसके कारण दवाऐं महंगी है।

16.5 प्राकृतिक चिकित्सा एवं आधुनिक चिकित्सा पद्धति

प्रत्येक व्यक्ति बाहरी दवाओं तथा आंतरिक प्रतिरक्षात्मक प्रक्रियाओं के मध्य संतुलन बनाता है। यदि ये बाहरी दबाव आंतरिक प्रतिरक्षात्मक/रोगात्मक प्रक्रियाओं पर भारी पड़ते है तो व्यक्ति रोगग्रस्त हो जाता है, बीमार पड़ जाता है, इसके विपरीत यदि व्यक्ति कि रोग प्रतिकारक शक्ति अच्छी है तो वह बीमार नहीं होता। क्योकि किसी व्यक्तिगत प्राणी को ब्रह्याण्ड में एक लघु रूप में देखा जाता है जिस पर हल पर होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव पड़ता है तथा जो हर पल वातावरण में होने वाले इन परिवर्तनों से पुनः सामंजस्य स्थापित करता रहता है। एक चिकित्सक का कार्य व्यक्ति की आतंरिक रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाना तथा उसमें बाहरी बदलावों के साथ अनुकूलरुसामंजस्य स्थापित करने की क्षमता को बढ़ाकर उसे वातावरण में होने वाले बाहरी दबावों को झेलने की शक्ति प्रदान करना है जिससे कि वह अपने बाहरी वातावरण व स्वंय के मध्य एक शान्तिप्रिय सन्तुलन की स्थिति में जीवन जी सके जिसका परिणाम अच्छा स्वास्थ्य व रोगरहित जीवन है। इस प्रकार से चिकित्सक का कार्य वास्तविक रूप से स्वास्थ्य या स्वस्थ जीवन को प्रोत्साहित करना तथा जब कोई रोग की स्थिति आये तो उसका उपचार करना है। स्वास्थ्य लाभ की पश्चिमी पद्धति के अनुसार वातावरण को शरीर के अनुरूप बनाना है जिसमें हम रहते है जैसे कि

यदि मौसम शरीर के अनुकूल नहीं है तो उसे तापमान नियंत्रण हो सके ऐसी सुरता में रखा जाता है। यदि बाहरी वातावरण में नमी/उमस है तो अन्य नियंत्रको के द्वारा उसे नियंत्रित किया जाता है। प्रति जीवाणु औषधियों का विकास किया गया जो कि ऐसे जीवाणुओं का सामना कर सके जो शरीर के लिए हानिप्रद है। जीवाणुओं से सुरक्षा के लिए रोगाणुनाशन तकनीको का प्रयोग किया जाता है तथा उपचार में भी यही सिद्धान्त लागू होते है। कृत्रिम अंगो का प्रयोग दुर्घटनाग्रस्त या रोगग्रस्त शारीरिक हिस्से के स्थान पर किया जाता है। कृत्रिम हारमोन तथा विटामिनों का प्रयोग शरीर के दुर्बल या क्षीण होने पर शरीर में होने वाली शरीरिक क्रियाओं को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है।

पश्चिमी औषधि का विकास परिकल्पित निगमन के द्वारा हुआ। पश्चिमी औषधि में हर व्याख्यान/अभिव्यक्ति गहराई से जांची गई श्रृंखला का परिणाम है। कोई परिकल्पना किसी घटना से सम्बन्धित सामान्य कथनों के आधार पर सिद्ध की जाती है तथा फिर एक अनुसंधान योजना तैयार की जाती है। जब व्यक्ति तथ्य इकट्ठे कर लिये जाते है तो उनका मूल्यांकन करने के पश्चात परिणाम/नतीजे पर पहुंचा जाता है। इसके विपरीत पूर्वीय औषधि विवेचनात्मक पद्धति पर बल देती है। पूर्वीय आयुर्विज्ञान सम्बन्धी साहित्य सामान्यतः रूप से लाखों चिकित्सकों के व्यावहारिक अनुभवों पर आधारित हजारों सालों से संचित व प्रयोग में लाई जाने वाली पद्धतियों का भंडार है। अभिलेखों का यह रूप अनुभवों पर आधारित सीधे कथनों का परिणाम है।

इस प्रकार से चिकित्सा की दो पद्धतियों के परिणामों की तुलना करना कठिन है। पश्चिमी चिकित्सा पद्धति स्वास्थ्य को रोग से विभाजित करती है तथा इसमें मुख्य महत्व व्यक्ति के शरीर को दिया जाता है। वातावरण को केवल एक तत्व के रूप में समझा जाता है जो शरीर को प्रभावित करता है। स्वास्थ्य के विभिन्न रूपों तथा रोगो की रोकथाम को विभिन्न शाखाओं में विभाजित किया गया है। चिकित्सक सामान्यतः किसी रोग के द्रीव होने पर रोग का पता लगाने व उसकी चिकित्सा करने में निपुण होते है। स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रचार, रोगो की रोकथाम तथा स्वास्थ्य लाभ का क्षेत्र अन्य दक्ष व्यवसायों द्वारा संभाला जाता है। एक टीम के रूप में कार्य करने की पद्धति यह धारणा पैदा करती है कि यह व्यक्तिगत प्रणाली न होकर सामुदायिक प्रणाली है जबकि इसका उद्देश्य व्यक्तिगत तंदुरूस्ती है। पूर्वीय प्रणाली के अनुसार स्वास्थ्य/आरोग्य व रोग एक ही सिक्के के दो पहलू है।

ये उपलब्धियां मानव ज्ञान तथा विज्ञान की विजय को उल्लेखनीय बनाती है। यद्यपि इसके बावजूद जबकि व्यक्ति के जीवन में वृद्धि हुई है, विकलांग व पिछड़ी बुद्धि के लोग ठीक होने लगे है, अधिकांश लोग गंभीर रोगो से मुक्त है परन्तु वे शारीरिक कष्ट या अशांति चाहे वो शारीरिक या मानसिक हो उससे मुक्त नहीं है। दूसरे शब्दो में विज्ञान की इतनी उपलब्धि के बावजूद लोग अभी भी अत्यन्त दुखी, अप्रसन्न व चिन्तित है। पूर्वीय पद्धति शायद वातावरण को बदलने की प्रकृति को पूर्ण रूप से अनदेखा करती है परन्तु यह किसी व्यक्ति के शरीर की आंतरिक रक्षात्मक/रोग प्रतिरोधक शक्तियों व उसे वातावरण के अनुकूल खुद को ढालने की शक्तियों को इतना ताकतवर बना देती है कि वह किसी भी प्रकार के शारीरिक या मानसिक तनावों का मुकाबला कर दिखाई पड़ सकती है लेकिन यदि यह कामयाब होती है तो इसका परिणाम संतुलित व आरोग्य शरीर तथा शांत व सुखी व्यक्ति है। उपर लिखित विभाजन के साथ–साथ दोनो पद्धतियों को सीखने की प्रक्रिया व उनमें प्रयोग की जाने वाली शब्दावली भी अलग–अलग है। यदि कही एक ही शब्द का

प्रयोग हो रहा है परन्तु जरूरी नहीं है कि दोनो पद्धतियों में उसका एक ही अर्थ हो दोनो जगह उसका अभिप्रायः अलग भी हो सकता है।

पश्चिमी पद्धति किसी व्यक्ति के हर पहलू के बारे में काफी विस्तार से अध्ययन करती है जीव विज्ञान का सूक्ष्म से सूक्ष्मतर अध्ययन, भ्रूण विज्ञान, अणुजीव विज्ञान, व्यक्ति के कोशिकीय रसायन व भौतिक विज्ञान का अध्ययन उसके पश्चात उसके शरीर रखना विज्ञान व शारीरिक क्रियाओं का अध्ययन तथा अंततः रोग विषयक क्षेत्र की तरफ पहुंचाती है जिसमें आंतरिक दवाओं, शल्यक्रिया, बालचिकित्सा, पसूति विज्ञान/शास्त्र तथा स्त्री रोग विज्ञान, मनोरोग विज्ञान तथा आम स्वास्थ्य सम्बन्धी चिकित्सा आदि शामिल है। इतने विस्तृत क्षेत्र की बारीकी से अध्ययन कर विशेषज्ञ बनना केवल एक व्यक्ति के बस की बात नहीं है, इसलिए इसकी विभिन्न शाखाओं में प्रशिक्षण तथा अभ्यास को समायोजित किया गया है।

पूर्वीय पद्धति में सीखने की प्रक्रिया ब्रह्याण्ड की उत्पत्ति के साथ शुरू हुई। इसमें शारीरिक विज्ञान व इसकी प्रक्रियाऐं पश्चिमी पद्धति के विपरीत बिल्कुल अलग तरीके से विभाजित की गई है। सभी रोगों को उनके लक्षणों के आधार पर विभिन्न हिस्सों में विभाजित किया गया है। यह पद्धति अतिसरलीकृत दिखाई पड़ सकती है। इसके अतिरिक्त इसकी साहित्य सामग्री भी बहुत कम है जो कि मुख्यतः विवेचनात्मक अभिलेखन के रूप में उपलब्ध है, यह याद करने में सरल व दर्शनिक पद्धति है। यद्यपि इसमें मानसिक अवलोकन व सोच विचार की अधिक आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त लम्बे समय तक शिक्षा तथा सल्त अभ्यास आवश्यक है। इतनी सारी असमानताओं के बावजूद पश्चिमी पद्धति में दक्ष चिकित्सक यह साफ–साफ देख सकते है कि पूर्वीय पद्धति प्राकृतिक वातावरण सम्बन्धी स्वास्थ्य, बाह्य शरीर रचना विज्ञान, व्यवहारिक शरीर विज्ञान, तंत्रिका तंत्र सम्बन्धी विज्ञान तथा दवा के मनोदैहिक पहुओं पर अधिक बल देती है। दोनो पद्धतियों में असमानताओं की जानकारी होने के पश्चात विद्यार्थी पूर्वीय व पश्चिमी चिकित्सा की वैद्यता का निर्णय कर दोनो पद्धतियों के ज्ञान से लाभान्वित हो सकते है।

	प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति	**आधुनिक चिकित्सा पद्धति**
*	स्वास्थ्य मन, शरीर व आत्मा के मध्य संतुलन है।	स्वास्थ्य से अभिप्राय शारीरिक या मानसिक दोषों का अभाव, दर्द रहित अवस्था या रोगों के लक्षणों का अभाव होने से है।
*	अस्वस्थ्य रहने का कारण शरीर की प्राकृतिक ऊर्जा में असन्तुलन या असामंजस्यता होना है।	अस्वस्थ्य होने का कारण शारीरिक ढांचे में किसी कारण से दोष या रोगो का होना है।
*	लक्षणों से यह पता चलता है कि शरीर ठीक हो रहा है या लक्षण शरीर के द्वारा यह प्रदर्शित करने का तरीका है कि शरीर आरोग्यता को प्राप्त हो रहा है।	लक्षण रोगों के आगमन का सूचक है जिनको दबाना या खत्म किया जाना चाहिए।
*	बिमारी का कारण ऐसी कोई प्रक्रिया है जो कि शारीरिक ऊर्जा में असन्तुलन पैदा कर सकती है।	बिमारी का कारण बाहरी रोगाणु या शरीर के उपर पड़ने वाला कोई बाहरी दबाव है।

*	रोगी का दायित्व बीमारी की रोकथाम कर स्वस्थ व सन्तुलित जीवन शैली को अपनाकर स्वस्थ जीवन जीना है।	व्यक्तिगत जीवनशैली या रहन–सहन की इतनी महत्वपूर्ण भूमिका नहीं है क्योकि इसमें मुख्य बल उपचारों पर व स्वस्थ रहने पर दिया जाता है।
*	चिकित्सक की भूमिका एक सहायक की होती है जो लोगो को स्वस्थ रहने में मद्द करता है बजाय इसके कि जब लोग बीमार हो तब उन्हे ठीक किया जायें।	चिकित्सक की भूमिका एक मैकेनिक/कारीगर की है जिसका कार्य यह पता लगाकर कि कहां खराबी या गड़बड़ है उसे ठीक करना है।
*	उपचार/इलाज का मुख्य उद्देश्य जीवन शैली में परिवर्तन कर तथा अन्य प्राकृतिक तरीकों की मद्द से पुनः शारीरिक व मानसिक सन्तुलन की प्राप्ति करना है।	उपचार का मुख्य उद्देश्य लक्षणों को दवा या शल्य क्रिया की मद्द से दबा देना है।
*	पूर्वी दवाओं की मुख्य ताकत या गुण यह है कि ये दीर्घकालीन रोगों की रोकथाम व प्रबंधन पर बल देती है तथा स्वस्थ जीवन शैली की पहचानकर उसे अपनाने तथा शरीर, मन व आत्मा के बीच सन्तुलन/संयोजन पर बल देती है।	पश्चिमी औषधि का मुख्य गुण यह है कि ये सरंचनात्मक चोट या मानसिक आघात तथा दोषों के उपचार में समर्थ है, तथा ऐसी जीवन घातक बिमारियां जिसके उपचार हेतु शल्यक्रिया की आवश्यकता है उनके उपचार में दक्ष है।

*	**ऐलापैथी**	**नेचुरोपैथी**
*	वे अनुसंधान के लिए बीमार लोगों पर अन्धाधुन्ध प्रयोग करते है। आधे बीमारों को दवाई देते है और आधो को मीठी गोली खिलाकर नतीजो पर पहुंचा जाता है। उन विचारों पर किसी प्रकार की दया नहीं की जाती है। दन दवाओं की कम्पनियां जानवरों पर भयानक परीक्षण करते है जिन्हे किसी भी मानवता के आधार पर उचित नहीं ठहराया जा सकता।	मनुष्यों अथवा जानवरों पर कभी भी प्रयोग नहीं करते है। पुराने शोधित सिद्धान्तों पर व अपनी योग्यता से मानवीय ढंग से हर रोगी को ठीक करते है बिना किसी भेदभाव के ।
*	शिक्षा बहुत महंगी है और उसमें भी रोग निवारण, उसे रोकने व स्वास्थ्य पर बहुत कम पढ़ाया जाता है। विद्यार्थियों का अधिकतर समय रासायनिक दवाओं, रोगो के नाम व	शिक्षा सस्ती व सुलभ है और सारा ध्यान रोगी को ठीक करने व रोग से लड़ने की क्षमता बढ़ाने पर रहता है। हर रोगी को उसके व्यक्तिगत गुणो व पुराने वर्णन पर ठीक किया जाता है।

	शरीर के अंगो के नाम रटने में ही निकल जाता है।	
*	शरीर रचना के अनेक भागो के लिए विशेषज्ञों में बटा हुआ है व हर विशेषज्ञ रोग को अपनी नजर से देखता है व उसका दूसरे अंग पर क्या प्रभाव पड़ेगा, कोई विचार नहीं करता।	शरीर के भागो पर कोई भी विशेषज्ञता नहीं है। पूरे शरीर को एक ही रूप में देखना व समझना ही विशेषता है। शरीर के सभी अंग एक दूसरे पर निर्भर है यही सोच है।
*	अति विशिष्ट चिकित्सा क्षेत्र, नैदरानिक उपकरण, कैट स्कैन, एम0आर0आई0 आदि महंगे, विजातीय पदार्थो को बढ़ाने वाले, दर्दीले और आक्रामक जो कई बार रोगी की मनस्थिति के अनुरूप गलत परिणाम देते है, इन परीक्षण की व्याख्या शिक्षित अनुमानों पर आधारित है। रोगी को बहुत मुश्किल से परिणामों से अवगत कराया जाता है। सब कुछ कोड में लिखा जाता है और रोगी से छिपा रहता है।	बलो के विश्लेषण, शरीर के अवयवों के लक्षण एवं साधारण खून, मूत्र, कफ आदि के परिणामों पर ही इलाज किया जाता है। सभी परीक्षण साधारण सस्ते है और बीमार व्यक्ति आसानी से समझ सकता है।
*	प्रशिक्षित चिकित्सा डाक्टरों के अनुसार मनुष्य शरीर एक विकासवादी प्रक्रिया का भाग है और इसके कुछ अंग बेकार होते है और उन्हे बिना किसी प्रभावशाली हानि के हटाया जा सकता है।	भगवान के द्वारा मनुष्य शरीर अपने आप में सम्पूर्ण है एवं इसके सभी अंग आवश्यक है और शरीर की कार्यप्रणाली में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करते है। वे एक दूसरे के पूरक है व स्वस्थ शरीर के लिए आवश्यक है।
*	हम जो भोजन करते है, विजातीय द्रव्य निगलते है, का हमारे स्वास्थ्य में बहुत कम महत्व है। वायु, पानी आदि का स्वास्थ्य के लिए प्रांसगिक नहीं है। प्राकृतिक भोजन एक सनक है अतिरिक्त विटामिन एवं खनिजों को खाने की कोई आवश्यकता नहीं है।	हम जो भोजन करते है हमारे स्वास्थ्य के लिए अति महत्वपूर्ण है। वायु, पानी, धूप आदि का हमारे जीवन पर बहुत प्रभाव है। रासायनिक भोजन हमारे शरीर की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करते है और वे विजातीय द्रव्यों को बढ़ा सकते है। अतः अपनी दैनिक खुराक में शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए अतिरिक्त खुराक लेना आवश्यक है।
*	रोग के लक्षण उभरने पर उसकी आकस्मिक चिकित्सा/उपचार रासायनिक दवाओं, विषैली किरणों, शल्य चिकित्सा, मनोरोग विज्ञान	निवारण रोग बचाव का मुख्य ध्येय है। रोग के कारणों को ढूंढना और उन्हे शरीर के विजातीय पदार्थो को बाहर निकाल कर दूर करना व इसके साथ–साथ शरीर का पोषण

	और दीमाग पर प्रभाव डालने वाली दवाओं द्वारा किया जाता है। किसी भी प्रकार के छोटी अथवा दीर्घ अवधि के साइड इफेक्ट पर कोई गौर नहीं किया जाता। रोग के रोकथाम या कारणों की ओर उन्मुख नहीं है।	सन्तुलन को बनाये रखना आवश्यक है। प्राकृतिक खाद्य पदार्थ जड़ी, बूटिया आदि का चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है। इस चिकित्सा के कोई साइड इफेक्ट नहीं है।
*	बहुत महंगा है। लाईसेन्स, पेशेवर कर्मियों विशेष सरकारी विनियमित सुविधाओं, नियंत्रित कीमतें, महंगी पेटेन्ट दवाओं पर जोर दिया जाता है। सभी दवाएं प्रयोगशालाओं में ही बनाई जाती है। गौर से देखे तो अधिकतर कम्पनियां अपनी दवाएं बेचने के लिए सभी तरीके अपनाती है जिससे उनकी कीमत बहुत बढ़ जाती है।	बहुत ही सस्ता, प्राकृतिक भोजन एवं जूड़ी बूटियों पर पेटेन्ट नहीं कराया जा सकता और न ही एकाधिकार किया जा सकता है। इतना ही नहीं यह उपचार अपने आप भी किया जा सकता है। बहुत महंगी सुविधाओं की आवश्यकता नहीं है। अधिकतर मामलों में डाक्टर की रोगी को ठीक करने की इच्छा पैसो से बढ़ कर होती है। अधिकतर जूड़ी बूटियां घर पर ही उगा कर दवा के रूप में प्रयोग की जा सकती है।
*	यह प्रणाली मेडिकल एसोशिएशन जो डॉक्टरो, अस्पतालों, मेडिकल कॉलेजो और बीमा कम्पनियों को नियंत्रित करती है के समर्थन पर चलती है। एफ डी ए का भी पूर्ण समर्थन है जो दवा बनाने वालो को नियंत्रित करते है व अन्य विशेष रूचि वाले समूह भी इसमें शामिल है।	यह प्रणाली केवल साहसिक सोच वाले व्यक्तियों व साधारण संस्थाओं के समर्थन पर ही चलती है जो कि उपरोक्त सिद्धान्तो पर विश्वास करते है।

16.6 सारांश

आपने इस इकाई में प्राकृतिक चिकित्सा के पंचमहाभूत तत्वों का विस्तार से अध्ययन किया और निष्कर्ष निकाला कि आज की इस मायावी दुनिया में ना तो अपने स्वास्थ के लिए समय है और न ही सन्तुलित आहार–विहार एवम् सकारात्मकता से भरपूर जीवन शैली का पालन किया जाता है। इसके परिणाम स्वरूप स्थिति यह हो गई है कि न तो प्राकृतिक चिकित्सा आधुनिक चिकित्सा विज्ञान को अन्देखा (रिपलेस) कर सकता है और न ही इस तानव जैसी महामारी तथा असाध्य रोगों (जीवन शैली से जुड़े सभी रोग) से बिना प्राकृतिक चिकित्सा की सहायता के केवल आधुनिक चिकित्सा पद्धति नियंत्रित कर पाने में सफल हुई है। इन दोनों की चिकित्सा प्रणाली तथा अपनी–अपनी सीमाओं की समीक्षा करते हुये इनके सम्बन्धों का अध्ययन किया। इस अध्ययन में दोनो का मुख्य कार्य क्षेत्र विभिन्न रोगों में अलग–अलग नजर आया उदाहरण के लिए आकस्मिक दुर्घटनाओं अथवा आपातकालीन स्थिति में जो भूमिका आधुनिक चिकित्सा पद्धति की हो सकती है। वह भूमिका प्राकृतिक चिकित्सा की बिल्कुल नहीं हो सकती। इसी प्रकार तनाव से उत्पन्न स्थिति से तथा जीवन

शैली से जुड़े आधुनिक असाध्य रोगो की चिकित्सा में जो प्रभाव प्राकृतिक चिकित्सा का है वह आधुनिक चिकित्सा का उतना होना कठिन है।

अतः निष्कर्ष हेतु हम कह सकते है कि दुर्घटना एवम् आपात काल अथवा टूट—फूट के अतिरिक्त अन्य सभी रोगो के उपचार में प्राकृतिक चिकित्सा एवम् जीवन शैली के अतिरिक्त दूसरी उपचार पद्धति कारगर सिद्ध नहीं हो सकती है। अर्थात् अधिकतर प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति को अपनाकर, दवाओं के विनाशकारी प्रभाव से बचा जा सकता है।

16.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

प्राकृतिक आयुर्विज्ञान—राकेश जिन्दल

16.8 निबंधात्मक प्रश्न

प्र0—1 आधुनिक चिकित्सा पद्धति के विषय में समझाऐं ?

प्र0—2 प्राकृतिक चिकित्सा एवम् आधुनिक चिकित्सा के सम्बन्धों का विस्तार से वर्णन करें

इकाई –17 प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्देश्य
17.3 प्राकृतिक चिकित्सा
17.4 योग का अर्थ एवम् परिभाषा
17.5 प्राकृतिक चिकित्सा एवम् योग का सम्बन्ध
17.6 सारांश
17.7 सन्दर्भ ग्रन्थ
17.8 निबंधात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

आयुष विभाग द्वारा स्वीकृत पांचवी चिकित्सा पद्धति के रूप में योगा एवम् प्राकृतिक चिकित्सा के नाम से ही स्वीकृति प्रदान की गई है। अर्थात् योग एवम् प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति को भारत की सरकार द्वारा एक गाड़ी के दो पहियों के रूप में स्वीकारा गया है। इसलिए बिना दवा के उपचार देने में दोनो ही पद्धतियों का विशेष योगदान है। ये दोनो ही पद्धतियों प्राकृतिक रूप से शरीर की प्रकृति के अनुसार ही प्रयोग की जाती है।

जब से वेदों की जानकारी मिलती है। तभी से योग की भी उत्पत्ति के विषय में वर्णन आया है। योग भी उसी तरह से शरीर के शोधन में सहायता करता है जिस तरह आयुर्वेद चिकित्सा में पंचकर्म द्वारा किया जाता है अथवा प्राकृतिक चिकित्सा में एनीमा, भांप स्नान, मिट्टी चिकित्सा, उपवास, द्वारा विजातीय द्रव्यों को शरीर से बाहर निकाला जाता है। योग में भी सठकर्म क्रियाओं में जल नेति, कुन्जल, वमन धोती, विरेचन आदि के द्वारा शरीर का शोधन करके रोग आने की सम्भावना से बचाया जा सकता है। प्राकृतिक चिकित्सा एवम् योग एक दूसरे के पूरक है। कुछ उपचार पद्धति के घटक ऐसे भी है जो प्राकृतिक चिकित्सा एवम् योग दोनो में ही समाहित है। उदाहरण के लिए वायु तत्व चिकित्सा योग के चौथे भाग प्राणायाम तथा स्वर विज्ञान द्वारा की जाती है जो सबसे प्रमुख उपचार प्रणाली के रूप में प्रयोग होती है। यह तत्व प्राकृतिक चिकित्सा एवम् योग दोनो का ही अभिन्न अंग है। जिसके बिना प्राणी मात्र का जीवन ही कुछ समय पश्चात असम्भव है। इसी प्रकार की असमानताओं एवम् विशेषताओं के अध्ययन के लिए पहले हम प्राकृतिक चिकित्सा के अर्थ एवम् परिभाषा का अध्ययन करेंगे उसके बाद योग की अर्थ एवम् परिभाषा का अध्ययन करते हुये इन दोनो पद्धतियों के एक सिक्के के दो पहलू होने के रूप में इन दोनो के सम्बन्धों का ज्ञान प्राप्त करते है।

17.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन द्वारा योग व प्राकृतिक चिकित्सा के विषय में अध्ययन करते हुये इन दोनो की समानता एवम् असमानता का विस्तृत अध्ययन करना है। इन दोनो के द्वारा स्वास्थ प्राप्त करने एवम् उपचार करने के सिद्धान्तो के विषय में अध्ययन करते हुये इन दोनो के सम्बन्ध में विषय में ज्ञान प्राप्त करना है।

प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग

प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग दोनो ही बहुत प्राचीव विधाएं है। इनका एक निश्चित काल बता पाना अत्यन्त कठिन है क्योकि यह माना जाता है कि प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग तब से है इस सृष्टि का निर्माण हुआ है। अतः इनके उद्भव का काल बता पाना असम्भव है। प्राकृतिक चिकित्सा कोई चिकित्सा पद्धति ही नहीं है वरन् यह जीवन जीने की कला है। इसके अनुसार प्राकृतिक नियमों का पालन करते हुये एक स्वस्थ जीवन व्यतीत किया जा सकता है। ठीक इसी प्रकार योग भी जीवन का आधार है। योग में वर्णित आठ अंगो का पालन करते हुये कोई भी व्यक्ति अपने शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक व आत्मिक विकास कर सुखी जीवन व्यतीत कर सकता है। दोनो ही विधाएं अति प्राचीन विधाएं है जिन्हे हमारे प्राचीन ऋषि–मुनियों ने गहन तपस्या के पश्चात यह सिद्ध किया कि किस प्रकार इस विद्या के अभ्यास से मनुष्य निरोगी एवं दीर्घ जीवी बन सकता है और इनका निरन्तर पालन एवं अभ्यास कर आरोग्य को प्राप्त कर सकता है।

17.3 प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति का अर्थ एवं परिभाषाएं

प्राकृतिक प्रद्त चिकित्सा को प्राकृतिक चिकित्सा कहते है। प्राणी का जन्म, पोषण और संवर्धन नियमों के नियंत्रण में होता है। इस नियामक मूल शक्ति को प्राकृति कहा जा सकता है। वस्तुतः प्राकृति और उसके नियमों के अधीन रहते हुये ही जड़चेतन सभी दृष्यमान और अदृष्यमान जगत क्रियाशील होता है।

इस सृष्टि पर विद्यमान प्रत्येक वस्तु, जीव, जन्तु, प्राणी आदि सभी का निर्माण प्रकृति विद्यमान पंचतत्वों द्वारा ही हुआ। यह पंचतत्व है आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी है। यह तत्व सभी में पाये जाते है। जब मनुष्य में ये पांचो तत्व साम्यवस्था में रहते है तो मनुष्य स्वस्थ रहता है। परन्तु अप्राकृतिक जीवन यापन के कारण इन तत्वों में असन्तुलन होने के कारण रोग उत्पन्न होने लगते है। किसी भी तत्व का कम होने या दूसरे किसी तत्व का ज्यादा होना शरीर में उपलब्ध रोग का कारण माना जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में स्वस्थ रहने के लिए प्राकृतिक नियमों का पालन करना जरूरी होता है। आहार के अनियमित होने पर रोग की उत्पत्ति होती है। अर्थात् प्राकृतिक चिकित्सा नियम–समय के पालन पर बल देती है। क्योकि आहार सम्बन्धी नियमों का पालन करने, संयम न करने के कारण रोग उत्पन्न होते है। इसी कारण इस प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान कहने के स्थान पर प्राकृतिक जीवन विज्ञान कहना उचित समझते है।

इस चिकित्सा विधि में रोगो की निवृत्ति के लिए शरीर की प्रकृति की ही सहायता की जाती है। प्राकृति स्वंय रोग का निवारण कर देती है। शरीर से संचित विजातीय द्रव्यों को प्राकृतिक साधनों द्वारा निकालना एवं जीवनी शक्ति को उन्नत करना ही प्राकृतिक चिकित्सा कहलाती है।

प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा दबे रोग भी ठीक हो जाते है और रोग बिना दवा के ठीक हो जाता है। यह पद्धति देहरा कार्य करती है। प्रथम कार्य रोगी के रोग को दूर करके उसके शरीर को पूर्ण रूप से स्वस्थ करना तथा भविष्य में प्राकृतिक नियमों का पालन करके रोग मुक्त रहना।

परिभाषाऐं :–

* ''पंच तत्व की चिकित्सा को ही प्राकृतिक चिकित्सा कहते है''।

* ''आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी तत्वों का सन्तुलन होना प्राकृतिक चिकित्सा है'' ।
* ''प्राकृतिक जीवन शैली के अनुसार जीवन यापन करना ही प्राकृतिक चिकित्सा है।''
* ''शरीर को अपनी प्रकृति में लाने का प्रयत्न प्राकृतिक चिकित्सा है।
* ''चिकित्सा के लिए प्राकृतिक द्वारा शरीर में स्थापित किये गये प्रबन्धों की सहायता करके संशोधन द्वारा की जाने वाली चिकित्सा प्राकृतिक चिकित्सा है।
* प्राकृतिक जीवन, प्राकृतिक आहार, विहार, नित्य, शारीरिक व्यायाम, आन्तरिक व बाह्य स्वच्छता पर निर्भर चिकित्सा ही प्राकृतिक चिकित्सा है।
* शरीर में पंचतत्वों के असन्तुलन को जिन तत्वों के द्वारा एवं जिस चिकित्सा पद्धति द्वारा पुनः सन्तुलित किया जाता है। वह प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति कहलाती है।

17.4 योग का अर्थ एवं परिभाषा

योग पद्धति बहुत प्राचीन पद्धति है जिसे आध्यात्मिक विज्ञान से जोड़ा जाता था। योग का दृष्टांत हमें हमारे प्राचीन ग्रंथो में मिलता है। पिछले कुछ दशको तक योग सिर्फ साधु संतो और बुद्धिजीवी वर्ग का अधिकार क्षेत्र था। लेकिन इसके विकास के साथ–साथ योग ने जाति, लिंग, आयु, देशकाल, नागरिकता आदि सब सीमाओं को पार कर लिया है और दिन प्रतिदिन विकास की ओर अग्रसर है। यद्यपि योग पद्धति का आधार आत्मिक ज्ञान की प्राप्ति है जिसे मोक्ष से जोड़ा जाता है लेकिन समय के साथ इसका विकास हुआ और यह आधुनिक युग की बीमारियों के प्रबन्धन हेतु सबसे उपयोगी, विश्वसनीय तथा प्रमाणिक स्वास्थ्य सेवा पद्धति के रूप में उभर कर सामने आई। आज बहुत से देशों में योग को दिनचर्या के रूप में अपना लिया गया है। पूरे विश्व में योग का आध्यात्मिक विज्ञान घरेलू पद्धति का एक हिस्सा बन गया है।

योग के सिद्धान्त व कार्यप्रणाली भारतीय संस्कृति व रिती रिवाजों का एक अभिन्न अंग है। विभिन्न धर्मो में यौगिक क्रिया पद्धति दैनिक क्रियाकलापों का हिस्सा है। यौगिक तकनीकों का अभ्यास स्वास्थ्य लाभ के लिए न करके धार्मिक उद्देश्य की पूर्ति हेतु किया जाता था। आज भी यह अपवादात्मक नहीं है।

योग भारत के छः दर्शनशास्त्रों में से एक है। दर्शन का अभिप्राय है देखना, यौगिक संदर्भ में इसका अभिप्राय अपने अंदर देखने से है। अन्य दर्शन शास्त्रों की अपेक्षा योग को आध्यात्मिक मार्ग में क्रियात्मक/प्रयोगात्मक दर्शनशास्त्र की तरह माना जाता है।

मूल रूप से योग किसी व्यक्ति की मानसिक शक्तियों से सम्बन्धित है। योग व्यक्ति के मानसिक परिवर्तनों को नियंत्रित करता है। इसलिए इसे पूर्वीय दर्शनशास्त्र के नाम से भी जाना जाता है। कुछ वैज्ञानिक इसे बुद्धि के विज्ञान की भी संज्ञा देते है। योग का सम्बन्ध केवल मन से ही नहीं अपितु शरीर से भी है। योग की प्रवृत्ति सात्विक व पवित्र है। यह किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक एवं मानसिक व आध्यात्मिक अर्थात् सर्वांगीन विकास से सम्बन्धित है।

हमारे पूर्वजो ने मानव कल्याण के निमित्त अनेक बहुमूल्य विधियां दी है। जिनमें योग भी एक है।

योग के प्रयोग से लम्बी आयु को प्राप्त कर बल, बुद्धि और स्वास्थ का विकास कर जीवन व्यतीत किया जा सकता है। वर्तमान युग में पूर्ण स्वास्थ्य को पाना बहुत ही कठिन हो गया है। आधुनिक जीवन शैली ने जहां बड़े–बड़े चमत्कार किये वहीं असाध्य रोगो की श्रृंखला से निपटने के लिए आज अति आधुनिक उपकरण नये साधनों और नई औषधियां नए शोध, अनुसंधानों और बड़े–बड़े डाक्टरों की बाढ़ भी हमारे सम्मुख होते हुये भी हम निरोगी नहीं है। हम स्वस्थ नहीं है।

''पातंजल योग सूत्र'' योग का सर्वाधिक प्रचलित और सर्वमान्य ग्रन्थ है जिसमें योग को परिभाषित करते हुये कहा गया है कि चित्रवृत्तियों का विरोध ही योग है। वृत्तियों के रूक जाने या शुद्ध होने पर आत्मा अपने स्वरूप में स्थित हो जाती है।

भारतीय चिन्तन में मात्र शरीर की एकांगी उन्नति को ही महत्व नहीं दिया जाता बल्कि व्यक्ति के व्यक्तित्व के सर्वागीण विकास को प्राप्त करना होता है। आजकल कुछ समय से योग विद्या को विश्वस्तर पर मान्यता एवं स्वीकारोक्ति मिली हुई है लेकिन यह देखा जा रहा है कि इस योग विद्या की प्रसिद्धि स्वास्थ्य की दृष्टि से मुख्यतः हठयोग पर ही आधारित है क्योकि शरीर स्वस्थ हो तो चित्त को सरलता से साधा जा सकता है।

परिभाषाऐं :– योग पर संस्कृत व्याकरण के अनुसार ''युज्यते एतद् इति योगः'' अर्थात् चित्त की सभी वृत्तियों में एकाग्रता आ जाना। ''युज्यते अनने इति योगः'' इसका अभिप्राय है कि यह वह साधन है जिससे समस्त वृत्तियों में एकाग्रता लाई जा सकती है। ''युज्यतेडस्मिन् इति योगः'' इसके अनुसार यह वह स्थान है जहां चित्त की वृत्तियों की एकाग्रता उत्पन्न की जाती है। महर्षि पतंजलि के अनुसार ''तदा दृष्टु स्वरूपेडवस्थानम्'' अर्थात् योग की स्थिति में पुरूष की चित्तवृत्ति निरूद्ध काल में, कैवल्य की भांति चतन मात्र (शुद्ध परमात्मा) स्वरूप में स्थित है।

त्रृगवेद के अनुसार ''यस्माहते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन् 'स धीनां योग मिनवती योगमिन्वति ।।'' अर्थात् विद्वानो का कोई भी कर्म बिना योग के पूर्ण अर्थात् सिद्ध नहीं हो पाता है।

उपनिषदों के अनुसार '' यो पानं प्राणयोरऐक्यं स्थरजो रेतसोस्तथा ।
सूर्य चन्द्रम सोर्योगाद जीवात्म परमात्मनो ।।
एवं तु द्वन्द्व जालस्य सयोंगो योग उच्चते ।।

अर्थात् प्राण व अपान की एकता सरतज रूपी कुण्डलिनी की शक्ति और स्वरेत रूपी आत्म तत्व का मिलन, सूर्य तथा चन्द्र स्वर का मिलन व जीवात्मा तथा परमात्मा का मिल नही योग है।

कठोपनिषद के अनुसार मैत्रायण्युपनिषद् में कहा गया है :–

''एकत्वं प्राणमन सोरिन्द्रियाणाम् तथैव च ।
सर्वभाव परित्यागो योग इत्यभिघीयते ।।

अर्थात् प्राण, मन व इन्द्रियों का एक हो जाना, एकाग्रावस्था को प्राप्त कर लेना, बाह्य विषयों से विमुख होकर इन्द्रियों का मन में तथा तन का आत्मा में लग जाना, प्राण का निश्चल हो जाना योग है।

मतस्य पुराण के अनुसार कार्ययोग से ही परम पद (समाधि) की सिद्धि होती है। स्कन्ध पुराण के अनुसार भगवान विष्णु का पूजन क्रिया योग बताया है। ब्रह्म पुराण के अनुसार शीत व उष्णता में योग कभी नहीं करना चाहिए। श्रीमद् भागवद् गीता में श्री कृष्ण जी ने इस प्रकार योग को परिभाषित किया है :–

योगस्य कुरूकर्माणि संगत्यकत्वा धनञ्जय :।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।।

अर्थात् हे धनञ्जय तू आसक्ति त्याग कर समत्व भाव से काम कर। सिद्धि व असिद्धि में सम बुद्धि से कार्य करना ही योग है। सुख–दुख जय पराजय, हानि लाभ, शीतोष्ण आदि द्वन्दों में एक जैसा बने रहना ही योग है।

योग वशिष्ठ के अनुसार संसार सागर से पार होने की युक्ति का नाम योग है। जैन दर्शन के अनुसार : ''मोक्षेण योजनादेव योगो हृत्र निरूध्यते'' अर्थात् जिन–जिन साधनों से आत्मतत्व की शुद्धि होती है व मोक्ष का योग होता है वही योग है।

17.5 प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग का सम्बन्ध :–

उपर्युक्त प्राकृतिक चिकित्सा व योग के अर्थ व परिभाषा से हमने अध्ययन किया कि योग व प्राकृतिक चिकित्सा दोनो ही हमारी शरीर की मानसिक व शारीरिक स्थिति के साथ–साथ सामाजिक व आध्यात्मिक रूप से सुदृढ़ बनाती है। दोनो पद्धति ही औषधि विज्ञान से जुड़ी नहीं है। ये मनुष्य कृत भी नहीं है। प्राकृतिक चिकित्सा में विजातीय द्रव्य जो गलत खान–पान तथा जीवन शैली के विभिन्न पहलुओं से तथा पेट की जठराग्नि के दोष एवं विकारों से शरीर में रोग उत्पन्न होते है। रोगो के आने में नींद, कार्यशैली, स्वभाव तथा प्रवृत्ति के साथ–साथ वातावरण का प्रभाव योग व प्राकृतिक चिकित्सा दोनो में ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। इन दोनो के उपचारात्मक चिकित्सा के आवश्यक तत्वों में धूप, वायु, जल, उपवास तथा धरती माता के सम्पर्क से लाभदायक परिणाम प्राप्त होते है। दोनो ही पद्धतियों में बिना रोग की अवस्था अथवा स्थिति में भी दैनिक जीवन में निरन्तर प्रयोग कर सकते है। ये दोनो पद्धतियां ही दैनिक जीवन में अपनाएं जाने से रोग आने की सम्भावना को कम किया जा सकता है तथा इनको सभी अवस्थाओं में किया जा सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग व्यक्ति के उपचार की पवित्र पद्धति है। इसका उद्देश्य प्राकृतिक विधियों के द्वारा मनुष्य को शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक, भावात्मक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक विकास करना है। यहां योगा व प्राकृतिक चिकित्सा में कुछ समानताओं व असमानताओं का विवरण दिया गया है :–

योग	**प्राकृतिक चिकित्सा**
योगा का मुख्य उद्देश्य अध्यात्मिक उन्नति है। रोगोपचार इसके बाद आता है।	प्राकृतिक चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक विधियों द्वारा जीवन परिवर्तन व रोगों का उपचार करना है।
दवारहित पद्धति है।	दवारहित पद्धति है।
योग मुख्यतः दीमाग से सम्बन्धित नियंत्रण है इसके बाद में शारीरिक नियंत्रण	यह पहले शरीर तथा बाद में दीमाग को नियंत्रित करती है।
पवित्र पद्धति है।	पवित्र पद्धति है।
योगा की कुछ तकनीकें शुद्धिकरण का उद्देश्य रखती है जैसे षट्कर्म	यह शरीर से विषाक्त पदार्थो के निष्कासन को प्राथमिकता देती है।
रोगनिवारक, प्रोत्साहक, स्वास्थ्य लाभ की प्रकृति	रोग निवारक, प्रोत्साहक, उपचारात्मक, स्वास्थ्य लाभ की प्रकृति
रोग प्रतिकारक शक्ति को विकसित करने की प्राथमिकता	प्राण शक्ति या जीवनी शक्ति को विकसित करना प्राथमिकता

सिर्फ दीर्घकालीन रोगो का समाधान	तीक्षण व दीर्घकालिक सभी प्रकार के रोगो में लाभप्रद
श्रोगी को शिक्षित करना	श्रोगी को शिक्षित करना
आपातकालीन स्थिति में लाभप्रद नहीं	कुछ आपातकालीन स्थितियों में भी लाभप्रद
कुछ क्रियाओं को छोड़कर बाहरी तत्वों की चिकित्सा के लिए आवश्यकता न होना	कुछ उपकरण तथा पदार्थो का प्रयोग चिकित्सा के लिए किया जाता है जैसे जल, तेल, मिट्टी आदि ।
भोजन की मुख्य भूमिका है।	भोजन एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

प्राकृतिक चिकित्सा एवम् योग की बात जब भी की जाती है तभी कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु सामने आते है। जैसे दोनो ही पद्धतियां स्वीकार करती है कि रोग का मुख्य कारण प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करना है। दोनो ही पद्धतियां स्वीकार करती है कि रोगों के उपचार में शरीर का शोध नही एक मात्र उपचार है। दोनो प्रणालियां कीटाणु को रोग के कारण नहीं मानती क्योकि शरीर में लाखों बैक्टीरिया विद्यमान रहने पर भी यदि शरीर में विजातीय द्रव्य नहीं है। तो रोग उत्पन्न नहीं होते है। दोनो ही पद्धतियों में शरीर को ही चिकित्सक के रूप में माना जाता है। अर्थात् शरीर में ही रोग मुक्त होने की शक्ति विद्यमान है। दोनो ही पद्धतियों में सकारात्मकता और नकारात्मकता को स्वास्थ एवम् रोग से जोड़ा है। योग के यम–नियम की आवश्यकता और प्राकृतिक चिकित्सा की प्रसिद्ध प्राकृतिक जीवन शैली दोनो का एक ही धेय है। दोनो ही पद्धतियां ऐसी है जिनको अपनाने से रोगो के पैदा करने में मुख्य भूमिका निभाने वाले विजातीय द्रव्य एकत्र होने से बचाती है। और इसी कारण शरीर को स्वस्थ रखने में तथा इनको दैनिक जीवन में उसका हिस्सा बनाकर अपनाये जाने से रोग आने की सम्भावनाऐं कम हो जाती है। इन पद्धतियों में उपवास को शरीर की विभिन्न कोशिकाओं के उत्पन्न होने के लिए तैयार करती है। दोनो ही पद्धतियां रात में जागने और विलासिता पूर्ण जीवन चर्या को हमेशा अस्वस्थता के लिए जिम्मेदार मानती है। दोनो ही पद्धतियों के उपचार में एक विशेष बात यह है कि इन पद्धतियों के उपचार के उपरान्त शरीर पर उपचार का दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है। आइऐ प्राकृतिक चिकित्सा के मूल सिद्धान्तो का एक बार फिर संक्षेप अध्ययन करें। जिससे हम आसानी से समझ सकते है कि योग द्वारा उपचार में भी इन सब बातों का विशेष महत्व मिलता है।

प्राकृतिक चिकित्सा के मूल सिद्धान्त :–

सभी रोगों का प्राथमिक कारण कुदरत के नियमों का उल्लंघन है।

रक्त और लसीका की असामान्य सरंचना

जीवनी शक्ति में कमी

दूषित पदार्थो का शरीर में संचय

लम्बी अवधि से अप्राकृतिक जीवन व सोच होने के कारण 'रक्त और लसीका' की सही आपूर्ति बाधित होती है और यह इन तत्वों के असामान्य सरंचना के लिए जिम्मेदार है। जब लम्बी अवधि तक रक्त और लसीका सही तरीके से काम नहीं करते तो जीवनी शक्ति में कमी के कारण स्वभाविक रूप में शरीर में फालतू, अवांछित, दूषित पदार्थ जमा हो जाते है।

जब इस स्थिति का सही तरीके से समाधान नहीं होता है तो ये किसी बीमारी या बीमारी के लक्षण के रूप में सामने आता है।

ऐसी स्थिति में बीमारी और बीमारी फैलाने वाले कीटाणु बहुत तेजी से हमारे शरीर में फैल जाते है।

2. **रोग का कारण कीटाणु नहीं :–** प्राकृतिक चिकित्सा का मानना है कि कीटाणु बीमारी का द्वितीय कारण है। जब शरीर में दूषित पदार्थ जमा हो जाते है तो कीटाणुओं को पनपने और फैलने के लिए उचित माहौल मिल जाता है। लेकिन यदि हम शरीर को साफ रखे तो कीटाणुओं को फैलने का मौका नहीं मिलेगा और अपने आप ही खत्म हो जायेंगे।

3. सभी रोग एक, उनके कारण एक, उनकी चिकित्सा भी एक प्राकृतिक चिकित्सा किसी भी रोग के या इलाज के विशिष्ट कारण में विश्वास नहीं करती। प्राकृतिक चिकित्सा का मानना है कि बीमारी का कारण भी एक होता है और उसका इलाज भी एक है।
प्राकृतिक चिकित्सा का मानना है कि सभी बीमारियों का मूल कारण प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करना है। यदि हम प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते है तो हमारा स्वास्थ्य भी सही हो जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान का यह अटल सिद्धान्त है। मानव शरीर में स्थित एक ही विजातीय द्रव्य अनेक रोगो के रूप में तथा विभिन्न नामों से प्रकट और विख्यात होता है।

4. **त्रीव रोग शत्रु नहीं, मित्र है :–** त्रीव रोग हमारे शत्रु नहीं मित्र है, जो हमे स्वास्थ्य देने आते है, लेने नहीं। प्राकृतिक चिकित्सा का मानना है कि हम जिसे रोग कहते है वह वास्तव में चिकित्सा है। त्रीव रोग हमारे शरीर में दूषित पदार्थ इकट्ठा होने की तरफ एक इशारा है। त्रीव रोग एक चेतावनी है कि हमे अपने शरीर की कमियों को ठीक करने की जरूरत है। उदाहरणतया ज्वर :– ज्वर में हमारे शरीर का तापमान सामान्य से अधिक हो जाता है। इसका कारण शरीर में दूषित पदार्थ की अधिकता है। सामान्यतः लोग ज्वर होने पर ज्वर कम करने की दवाई ले लेते है जिसमें हमे कुछ समय के लिए आराम हो जाता है। लेकिन इससे ज्वर का असली कारण खत्म नहीं होता। हमें इसकी असली वजय 'विजातीय द्रव्य' को शरीर से दूर करना चाहिए। दवाई से ज्वर दबाने से भयानक स्थिति पैदा हो सकती है और ये किसी असाध्य रोग के रूप में सामने आ सकता है। इसलिए हमे ज्वर के दबाने की बजाय इसकी असल वजह जानने की कोशिश करनी चाहिए। क्योकि ज्वर आने वाली बीमारी की चेतावनी है, इसलिए इसे दोस्त माना जाता है।

5. **आहार के समान कोई दवा नहीं :–** खाना ऐसा होना चाहिए जो हमारे शरीर को पोषण और ऊर्जा दें। हमारे शरीर के लिए दवा का कार्य करें और अवांछित सामग्री को नष्ट करने में शरीर की सहायता करें। प्राकृतिक चिकित्सा में उसी भोजन को प्राथमिकता दी जाती है जिसमें ये दो गुण विद्यमान हो। डॉक्टर को मरीज को वहीं भोजन खाने की सलाह देनी चाहिए। जो मर्ज को ठीक करने में सहायक हो।

6. **जीर्ण रोगो का कारण तीव्र रोगो का दमन है :–** जब हम किसी त्रीव रोग को जबरदस्ती दवाइयों द्वारा दबाते है तो शरीर की उसे स्वंय ठीक करने की प्रक्रिया बाधित हो जाती है। इस कारण विजातीय द्रव्य शरीर में फैल जाते है और जीर्ण रोग का रूप ले लेते है। त्रीव रोग को जीर्ण रोग बनने में समय लगता है लेकिन इसका इलाज भी बहुत मुश्किल है। कोई भी गम्भीर बीमारी शरीर में जमा विषाक्त पदार्थो को निकालने का एक हिंसक प्रयास है। हमे शरीर को स्वंय की चिकित्सा का पूरा मौका देना चाहिए।

शरीर स्वंय चिकित्सक है :– यदि हम शरीर को मौका दे तो शरीर बिना किसी बाहरी चिकित्सा के स्वंय को ठीक कर सकता है। शरीर में जब हम कोई मुश्किल होती है तो शरीर विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालकर बीमारी को ठीक करने की कोशिष करता है। हमे इसमें शरीर की सहायता करनी चाहिए। हमे शरीर के लक्षणों को पहचानना चाहिए और शरीर को इनके सुधार का पूरा मौका देना चाहिए।

उपचार का समग्र दृष्टिकोण :– प्राकृतिक चिकित्सा में समुचे शरीर की चिकित्सा की जाती है। प्राकृतिक चिकित्सा में बीमारी की असल वजह जानने की कोशिश की जाती है। शरीर को समग्र मानकर ही उसकी चिकित्सा की जाती है। कुछ लक्षण हमे शरीर के दूसरे हिस्से की बीमारी के विषय में भी बताते है जैसे कि सिर में तेज दर्द कब्ज या अपच के कारण हो सकता है। सीने में दर्द गैस के कारण से हो सकता है।

प्रकृति स्वंय चिकित्सक है :– प्रकृति स्वंय चिकित्सक है। चिकित्सकों का कार्य केवल इस प्रक्रिया में सहायता करता है। प्राकृतिक चिकित्सा में मरीज को प्रकृति के करीब लाने का प्रयास किया जाता है। ये केवल मरीज की इच्छा द्वारा ही सम्भव है। मरीज को प्राकृतिक जीवन शैली के विषय में ज्ञान होना चाहिए जिससे कि वो आने वाली बीमारियों से बच सकें और मौजूदा बीमारी का इलाज कर सकें ।

पाचनतन्त्र रोग का मुख्य कारण है :– शरीर में पाचन तन्त्र ही एक ऐसी प्रणाली है जो भोजन को पचाता है, चूसता है, और लाभदायक तत्वों को इकट्ठा करता है और अनावश्यक तत्वों को बाहर निकालता है। प्राकृतिक चिकित्सा में पाचन तन्त्र का सही होना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। शरीर में विजातीय द्रव्यों के संचय का मुख्य कारण पाचनतन्त्र है और इलाज भी इसी से सम्भव है।

सभी रोगो की चिकित्सा सम्भव है, सभी रोगियों की नहीं :– प्राकृतिक चिकित्सा में चिकित्सक से अधिक प्रयास मरीज को करना होता है। सुधार रोगी पर निर्भर है। जब तक रोगी प्राकृतिक तरीको का पालन नहीं करेगा, चिकित्सा सम्भव नहीं है।

प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त :–

विषाक्तता :– वर्तमान चिकित्सा साहित्य में 'Toxin' या 'Toxiema' का मतलब कीटाणु से है जो

कि बीमारी का मूलभूत कारण है। विषाक्त खाने से रक्त धारा में प्रवाहित हो जाता है। जिसका कारण आवश्यकता से अधिक खाना या अविवेकपूर्ण परहेपी खाना खाना है। इसका तार्किक उपचार इन कारणों को दूर करता है। इससे कोई कोई फर्क नही पड़ता कि लक्षण कहां पर उभरे। कारण दूर होने से लक्षण स्वंय ही समाप्त हो जायेंगे।

डॉ0 तिलडन का मानना है कि शरीर में 'विष' का कारण ज्यादा खाना या गलत तरीके से खाना है। उनके अनुसार दुर्बलता भी एक महत्वपूर्ण बिन्दु है। यदि आन्तरिक शक्ति कमजोर है तो पाचन तन्त्र और निकास अंग ठीक से काम नहीं करेंगे और शरीर में विषाक्त पदार्थो का जमाव शुरू हो जायेगा। कमजोरी का कारण शारीरिक और मानसिक धेता है। जितना महत्वपूर्ण नयी कोशिकाओं का बनना है उतना ही महत्वपूर्ण बेकार कोशिकाओं का बाहर निकलना भी है। लम्बी अवधि से शरीर में जमा विषाक्त पदार्थ व्रीव रोग के रूप में विष को बाहर निकालने की कोशिश करता है। हम इसे बीमारी समझ लेते है। शरीर जमा पुराने विष को कई बार डाक्टर भी नहीं पहचान पाते। यह निष्क्रिय अवस्था में रहता है, इसका कारण ज्यादा खाना, गलत खाना, ज्यादा काम, या फिर गलत बेमेल

चीजो का एक साथ खाना, जरूरत से ज्यादा मीट खाना है। इसके कारण से शरीर में अवांछित तत्वों की अधिकता हो जाती है।

जब एक आम आदमी बीमार होता है तो तब तक ठीक नहीं हो सकता जब तक उसके शरीर से विषाक्त तत्व बाहर न आ जाये। ऐसे मरीजो को तब तक व्रत कराया जाता है जब तक विषाक्त तत्व बाहर न आ जाये। इसके बाद मरीज सही खाना, सही तरीके से खाने के लिए कहा जाता है। अगर ऐसा नहीं करता तो कभी ठीक नहीं हो सकता। जब तक लक्षण खत्म न हो जाये मरीज को भोजन नहीं देना चाहिए। कीटाणु स्वंय कोई बीमारी नहीं फैलाते वो तो गन्दगी पर इकट्ठा होते है। जैसे कूड़े पर मक्खियां इकट्ठी होती है। यदि कूड़ा नहीं होगा तो मक्खियां नहीं आयेगी वैसे ही यदि शरीर में गन्दगी नहीं होगी तो कीटाणु नहीं होंगे। प्राकृतिक चिकित्सा शरीर की गन्दगी साफ करती है न कि कीटाणु को खत्म करती है।

सकारात्मक स्वास्थ्य, नकारात्मक रोग :– सकारात्मक जीवन शक्ति का प्रवाह मनुष्य को स्वास्थ लाभ शक्ति प्रदान करता है, रोग शरीर के रासायनिक संतुलन को बिगाड़ देती है, मनुष्य में बढ़ी हुई सकारात्मक अथवा नकारात्मक स्थिति शारीरिक, मानसिक व नैतिक रूप से रोग को बढ़ाती है। इलाज के कुछ तरीकों जैसे दवा, फल, सुझाव आदि व्यक्ति पर एक अलग तरह का प्रभाव डालती है। यह प्रभाव सकारात्मक या नकारात्मक दोनो हो सकता है। यह बहुत महत्वपूर्ण है, कि चिकित्सक या वो सभी जो प्राकृतिक नियमों के साथ काम करते है, उन्हें इन प्रभावों पर ध्यान देना चाहिए। दुर्बल जीवन शक्ति, शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को कम कर दूषित द्रव्य, जहर, रोगाणुओं को इकट्ठा करता है।

सकारात्मक स्वास्थ्य, नकारात्मक रोग :– सकारात्मक जीवन शक्ति का प्रवाह मनुष्य को स्वास्थ लाभ शक्ति प्रदान करता है, रोग शरीर के रासायनिक संतुलन को बिगाड़ देती है, मनुष्य में बढ़ी हुई सकारात्मक अथवा नकारात्मक स्थिति शारीरिक, मानसिक व नैतिक रूप से रोक को बढ़ाती है।

इलाज के कुछ तरीकों जैसे दवा, फल, सुझाव आदि व्यक्ति पर एक अलग तरह का प्रभाव डालती है, यह प्रभाव सकारात्मक या नकारात्मक दोनो हो सकता है। यह बहुत महत्वपूर्ण है कि चिकित्सक या वो सभी जो प्राकृतिक नियमों के साथ काम करते है, उन्हे इन प्रभावों पर ध्यान देना चाहिए। दुर्बल जीवन शक्ति, शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को कम कर दूषित द्रव्य, जहर, रोगाणुओं को इकट्ठा करता है।

मानसिक और भावात्मक प्रभाव :– हमारी मानसिक और भावात्मक स्थिति का हमारी जीवनी शक्ति के प्रवाह वितरण पर सबसे शक्तिशाली और सभी प्रकार की भावनाओं का हमारे शरीर पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। यह जीवनी शक्ति को बहुत कम कर देते है। जिन्दगी के ये छोटे–छोटे पहलू हमारी महत्वपूर्ण गतिविधियों को पंगु बना देते है। अधारिता चिड़चिडाहट, गुस्सा, धन आदि हमारे तन्त्रिका को आग की तरह जलाकर भस्म कर देते है। आत्मग्लानि को आत्मा को धीरे–धीरे खत्म कर देती है।

अब तक हमने जो भी पढ़ा उससे हमें यही समझ में आता है कि व्रीव रोग भी प्रकृति के बाकी नियमों की तरह ही प्रकृति का एक नियम है। जब शरीर में कोई भी बीमारी नजर आये तो हमे उसे रोकने या दवाई से खत्म करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। बल्कि उसे निकलने देना चाहिए। प्रकृति के कार्य में बाधा उत्पन्न करने की बजाय शरीर शुद्धि में प्रकृति की सहायता करनी चाहिए। व्रीव रोगो को बीच में रोकने से भयानक स्थिति पैदा हो सकती है और इसका परिणाम असाध्य रोग के रूप में हो सकता है।

17.6 सारांश :–

इस इकाई में हमने प्राकृतिक चिकित्सा एवम् योग के विषय पर उनका अर्थ परिभाषा एवम् अवधारणा आदि से सम्बन्धित अध्ययन किया। प्राकृतिक चिकित्सा एवम् योग दो ऐसे चिकित्सा पद्धति के घटक है जिनको एक दूसरे के बिना अधूरा सा प्रतीत होता है। योग करने के लिए एक जोड़ो के दर्द के रोगी को प्राकृतिक चिकित्सा लेना जिना आवश्यक उतना ही किसी भी रोगी को प्राकृतिक चिकित्सा के साथ योग की सहायता लेना आवश्यक है। अर्थात् ये दोनो पद्धतियां एक दूसरे की पूरक है तथा सहायक भी है। योग का अधिकांश भाग प्राकृतिक उपचार के साथ–साथ अपनाया जाना आवश्यक है जैसे वायु तत्व चिकित्सा में प्राणायाम का रूप में पालन करना आवश्यक ऐसे ही प्राकृतिक चिकित्सा में योग के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन ऊपर किया गया है जिसमें इन दोनो की समानता अथवा आवश्यकता के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।

विज्ञान चाहे कितना ही आगे बढ़ जायें अथवा आधुनिक चिकित्सा कितनी भी तरक्की करें परन्तु योग एवम् प्राकृतिक चिकित्सा ही एक मात्र ऐसा उपाय है जो आज के गलत आहार प्रदूषित वातावरण और तनाव मुक्त जीवन रूपी कई तरह की गन्धगी रूपी बीमारियों को खाली करके प्राणायाम आदर्श जीवन शैली, उपवासा, ध्यान, साधना, कुन्जल नेती आदि द्वारा स्वच्छता प्रदान कर एक शक्तिशाली जीवनी शक्ति का निर्माण करता है। जो औषधि विज्ञान में लगभग असम्भव है।

17.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

प्राकृतिक आर्युविज्ञान	–	राकेश जिन्दल
वृहद प्राकृतिक चिकित्सा	–	डॉ0 ओ0पी0 सक्सेना
बुनियादी प्राकृतिक चिकित्सा	–	डॉ0 सुखवीर सिंह

17.7 निबंधात्मक प्रश्न

प्र0–1 प्राकृतिक चिकित्सा एवम् योग का अर्थ एवम् परिभाषा लिखिए ?

प्र0–2 प्राकृतिक चिकित्सा में योग के आपसी सम्बन्धों का उल्लेख कीजिए ?

प्र0–3 प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्तों के आधार पर योग की समीक्षा कीजिए ?

प्र0–4 प्राकृतिक चिकित्सा में योग की भूमिका का वर्णन कीजिए ?

इकाई –18 प्राकृतिक चिकित्सा एवं आयुर्वेद

18.1 प्रस्तावना
18.2 उद्देश्य
18.3 प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ
18.4 आयुर्वेद चिकित्सा
18.5 प्राकृतिक चिकित्सा एवम् आयुर्वेद
18.6 सारांश
18.7 सन्दर्भ ग्रन्थ
18.8 निबंधात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

स्वास्थ पूर्ण रूप से शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवम् आध्यात्मिक स्वास्थ की स्थिति है। केवल रोगो की अनुपस्थिति नहीं। यही परिभाषा है जो विश्व स्वास्थ संगठन द्वारा परिभाषित की गयी है। इस परिभाषा को पूर्णतः व्यवहारिक जीवन में लागू करने के लिए सभी चिकित्सा पद्धतियां खरी नहीं उतरती है। इसके लिए आवश्यक है कि उक्त परिभाषा के चारो पहलुओं (शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवम् आध्यात्मिक) को ठीक रखते हुये पूर्ण रूप से स्वास्थ प्रदान करने वाली चिकित्सा पद्धति में योग, प्राकृतिक चिकित्सा एवम् आयुर्वेद का नाम सर्वोपरि है। इन पद्धतियों के द्वारा ही आज की भयंकर बीमारी अवसाद व तनाव के उपचार हेतु सफलता प्राप्त करने में इन दोनो पद्धतियों का विशेष योगदान सिद्धि हुआ है। क्योकि दोनो की पद्धतियां प्रकृति पर आधारित है तथा दोनो ही पद्धतियों की रचना अथवा प्रारम्भ मूल रूप से प्रकृति के विभिन्न घटकों एवम् तत्वों के आधार पर हुआ है। ये दोनो पद्धति मल दोष एवम् विजातीय द्रव्य के निष्कासन पर आधारित होकर कार्य करती है। आइये इस इकाई के माध्यम से हम अध्ययन करें कि प्राकृतिक चिकित्सा क्या है। आयुर्वेद क्या है तथा ये दोनों रेल की पटरी की तरह अलग–अलग चलते हुये भी विभिन्न जंगशनों एवम् स्टेशनों पर जाकर एक हो जाते है। अर्थात् इन दोनों पद्धतियों का अस्तित्व अलग होते हुये भी इनके सिद्धान्त व कार्य शैली अधिकतर एक जैसी दिखाई पड़ती है।

18.2 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक चिकित्सा एवम् आयुर्वेद के विषय में जानकारी प्राप्त करना तथा इन दोनो के सिद्धान्त पश्य–अपश्य शोधन क्रिया व पंचक्रम के विषय में क्या सिद्धान्त है। तथा आरोग्य प्रदान करने में इन दोनो की समानता–असमानता के विषय में अध्ययन करना।

18.3 प्राकृतिक चिकित्सा

प्राकृतिक चिकित्सा प्रकृति के पंचतत्व के सन्तुलन की चिकित्सा पद्धति है। अर्थात् पंचमहाभूत ही इसका मुख्य आधार है। प्राकृतिक चिकित्सा पूर्ण रूप से व्याधियों की रोकथाम व उनके उपचार को प्राकृतिक तरीकों से करने की पद्धति है जिसमें दवा का

प्रयोग नहीं किया जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति ने अपने अंदर स्वास्थ्य रक्षा के दवारहित रोगोपचारों को समाविष्ट किया हुआ है जिनका प्रयोग वांछित परिणामों की प्राप्ति के लिए किया जाता है।

लेकिन भारतीयों के लिए प्राकृतिक चिकित्सा कोई नई पद्धति नहीं है। चिरकाल से प्राकृतिक चिकित्सा की तकनीके भारतीयों के दिन प्रतिदिन के क्रियाकलापों का हिस्सा है। यह पद्धति भारतीय जीवनशैली का अभिन्न अंग बन चुकी है। इसकी कुछ पद्धतियां भारतीय धर्मो के रीति रिवाजों में समाकलित हैं जो कि भारतीय परम्परा व संस्कृति का हिस्सा बन चुकी है। इसे प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति कहने की अपेक्षा प्राकृतिक जीवनशैली या प्राकृतिक स्वास्थ्य विज्ञान कहना उपयुक्त होगा।

भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा पंचमहाभूत के सिद्धान्त पर आधारित है तथा यह दवा के प्रयोग को पूर्ण रूप से नकारती है। प्राकृतिक चिकित्सा की रूपरेखा का मुख्य उद्‍देश्य प्राणशक्ति या (जीवनी शक्ति) प्राण बल या मनुष्य की शक्तियों को रोगकारक तत्वों से सुरक्षा प्रदान कर विकसित करना है। यह पद्धति मनुष्य की अन्तर्निहित शक्तियों को बढ़ाकर रोगोपचार या रोगो से बाहर आने में विश्वास रखती है और यह अन्तर्निहित शक्ति प्राकृतिक तरीकों से बढ़ाई जाती है, जिससे कोई भी रोग नहीं होगा तथा व्यक्ति हर प्रकार से रोगमुक्त रहेगा।

प्राकृतिक चिकित्सा मुख्यतः अपने दस मूलभूत सिद्धान्तों पर आधारित है। जिसमें सभी रोग व रोगो को उत्पन्न करने वाले कारण को एक ही नाम दिया गया है। विजातीय द्रव्य का शरीर में एकत्र होना। इसलिए इसमें किसी रोग एवम् उसके कारण की चिकित्सा नहीं की जाती अपितु पूरे शरीर की चिकित्सा की जाती है। जिससे शरीर के विजातीय द्रव्य बाहर निकालकर पूरे शरीर को स्वस्थ बनाया जाता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि सभी रोग उनका कारण, उनका निदान व चिकित्सा एक ही है। प्राकृतिक चिकित्सा में मानव शरीर के सृजन में मुख्य घटक पृथ्वी, जल, आकाश, वायु और अग्नि द्वारा उपचार किया जाता है। वैसे तो शरीर में जमा होने वाले विजातीय द्रव्य प्रारम्भिक अवस्था में प्रतिरोधक क्षमता के द्वारा ही बाहर कर दिये जाते है। जो त्रीव रोगो के रूप में दिखाई पड़ते है। जिनको एक साधारण मानव अपना शत्रु मान बैठता है परन्तु वास्तव में ये शत्रु नहीं अपितु हमारे मित्र है। क्योकि इनके द्वारा प्रतिरोधक क्षमता विजातीय द्रव्य को बाहर निकालती है जिससे ऐसे लक्षण पैदा होते है। इस कारण जटिल अथवा भयानक रोगो की आने की सम्भावना कम हो जाती है। इसमें किसी प्रकार की दवा का प्रयोग नहीं किया जाता। पंचमहाभूत तत्वों के द्वारा मिट्‌टी लगाकर, सूर्य किरण के रंगो द्वारा उपवास द्वारा, प्राणायाम व मालिश द्वारा तथा मुख्य रूप से जल प्रयोग की विभिन्न प्रकार की पट्‌टियों एवम् सेक अथवा भांप द्वारा किया जाता है।

18.4 आयुर्वेद

आयुर्वेद के महत्वपूर्ण ग्रन्थों में चरक संहिता में एक सूत्र के अनुसार प्राकृतिक चिकित्सा योग विद्या का सारांश तथा सिद्धान्त आयुर्वेद में वर्णित है। अन्य वेदो की भांति अथर्वेद में आयुर्वेद का वर्णन विद्यमान है। आयुर्वेद का विषय रोगो को दूर करके जीवन को निरोग और दीर्घ बनाना है। वेदों के द्वारा ही यह ज्ञान प्रवाहित होकर आयुर्वेद के नाम से संसार में पहुंचा है। अर्थवेद के अनुसार जीवात्मा ही शरीर में इन्द्रियों एवम् मन की सहायता से सुख–दुख का भोक्ता है। इससे स्पष्ट है कि इस शरीर में जो सुख–दुख का अनुभव करता

है वह मानव देश में आता है तो प्राकृतिक रूप से सुख और लम्बी आयु की कामना करता है जिसमें रोग सबसे बड़े बाधा उत्पन्न करते है। इन बाधाओं को दूर करने के लिए ही आयर्वुद की पृवती है।

आयुर्वेद चरक सहिता नामक ग्रन्थ में व अन्य आयुर्वेदिक ग्रंथों में पंचकरम के नाम से बहुत सी ऐसी शरीर शुद्धि विधियों का वर्णन है जो पंचकरम के नाम से जाना जाता है जिसके द्वारा वैद्य दवाईयों के प्रयोग से पहले शरीर का शोधन करके चिकित्सा करते है चरक सहिता में वर्णित वमन, वर्चन, अनुवाशन, आस्थापन तथा शिरोविरेचन कर्म सभी पंचकरम के अन्तर्गत आते है। अतः इन सोधन विधियों का विकास प्राकृतिक चिकित्सा के साथ–साथ आयुर्वेद में पहले से ही हुआ है। आयुर्वेद आयु जीवन तथा वेद ज्ञान अथवा विज्ञान के रूप में विकसित हुआ है। जिसके द्वारा जीवन के चारो लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते है। ये लक्ष्य है धर्म अर्थ काम लाभ भारतीय दर्शन के अनुसार शरीर इन्द्रिय सत्वय एवम् आत्मा का संयोग ही आयु है। आयुर्वेद में मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक व सामाजिक सभी प्रकार के कष्टो से छुटकारा पाने के लिए आरोग्य आवश्यक है। आयुर्वेद की साहिताऐं शारीरिक रोगो के लक्षण एवम् उनकी चिकित्सा के साथ–साथ मनोआध्यात्मिक भावों का भी विवेचन करती है।

सर्वप्रथम ब्रम्हा के आयुर्वेद विषयक ज्ञान पक्ष प्रजापति को प्रदान किया फिर पक्ष प्रजापति ने अश्विनी कुमारों ने यह ज्ञान इन्द्र को प्रदान किया इसके बाद आयुर्वेद के प्रतिपादकों के विषय में विभिन्न ग्रन्थों में मतभेद पाया जाता है। सुश्रुत संहिता के अनुसार इन्द्र ने यह ज्ञान भगवान धन्वन्तरि को प्रदान किया। भगवान धन्वन्तरि से इस ज्ञान को दिवोदास ने प्राप्त किया और उन्होने यह विज्ञान सुश्रुत औपधेनव, औरभ्र, पौष्कलावत, गोपुरक्षित और भेल को प्रदान किया। चरक संहिता के अनुसार आयुर्वेद का ज्ञान इन्द्र से भरद्वाज ने प्राप्त किया और भरद्वाज ने यह ज्ञान पुर्नवसु आत्रेय को प्रदान किया।

18.5 प्राकृतिक चिकित्सा एवम् आयुर्वेद

भारतीय संस्कृति में मानव प्राणी की उत्कृष्टता के लिए शरीर, मन, वाणी तथा विचार की शुद्धि को बहुत महत्वपूर्ण बताया गया है। इन शुद्धियों के लिए पातंजल योग शूत्र, पातंजल महाभास्य चरक संहिता एवं पंचमहाभूत प्राकृतिक चिकित्सा का ज्ञान होना आवश्यक है। इस प्रकार हम कह सकते है कि प्राकृतिक चिकित्सा एवम् आयुर्वेद दोनो के उद्देश्य एवं शिक्षा एक दूसरे से अधिकतर मिलती जुलती है। प्राचीन काल में भारत के लोगो का सादा जीवन उच्च विचार, मोटा खाओं, मोटा पहिनों की भावना सबके दिल में बसी हुई थी। जिसके कारण मानव की जीवन शैली एवम् स्वास्थ प्राकृतिक वातावरण में स्वतः ही प्राप्त हो जाते थे परन्तु आधुनिक जीवन शैली के कारण स्वस्थ जीवन की कल्पना दूबर हो गई है। आज के इस आपाधायी के युग में मोटर गाड़ी, फैक्ट्री के धुऐं, बिना धूप के कार्यालय आदि की स्थिति में स्वास्थ एक दुर्लभ स्थिति बन गया है। जिससे भयंकर रोगो से ग्रस्त हो जा रहा है। विश्व स्वास्थ संगठन के एक सर्वेक्षण के अनुसार 55 प्रतिशत से ज्यादा व्यक्ति और भारवर्ष में 70 प्रति लोग घरेलू, पाराम्परिक चिकित्सा प्राकृति चिकित्सा एवम् अन्य वैकल्पिक चिकित्सा पर निर्भर है।

प्राकृतिक चिकित्सा एवम् आयुर्वेद का उद्देश्य स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ की रक्षा करना तथा रोगी मनुष्य के रोग का उपचार करना एक समान उद्देश्य है।

आयुर्वेद चिकित्सा तथा प्राकृतिक चिकित्सा दोनों के आधारभूत सिद्धान्त व दर्शन समान विचारधारा पर आधारित है। दोनो पंचमहाभूतों से मनुष्य एवं प्रकृति की उत्पत्ति को मानते है। दोनो ही मनुष्य के आहार, विचार, विहार, दिनचर्या, ऋतुचर्या, पच्चअपथ्य एवं कुपथ्य तथा मूल के संख्य होना ही रोग कारण मानते है।

आयुर्वेद का त्रिदोष सिद्धान्त आयुर्वेद में त्रिदाष वात, पित्त व कफ के शरीर में कुपित होना अर्थात् इन तीनों दोषों में किसी एक अथवा अधिक सामान्य मात्रा से कम अधिक होना रोग कारण मानते है तथा इन्हीं पर ध्यान केन्द्रित करके उपचार किया जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा में त्रिदोष अर्थात वात, पित्त व कफ के स्थान पर पंचतत्वों के शरीर में सामान्य से कम अथवा अधिक होने पर विजातीय द्रव्य का शरीर में एकत्र होना मानते है।

आयुर्वेद चिकित्सा में भस्मों का प्रयोग, रसायन तथा बाजीकरण औषधि का प्रयोग होता है जबकि प्राकृतिक चिकित्सा में इस प्रकार की औषधियों के प्रयोग को वर्जित मानते है। प्राकृतिक चिकित्सा में रसोई में प्रयोग होने वाले मसाले, गेहूॅ का ज्वारा, ग्वार पाठा (एलोवेरा) गिलोम, तुलसी, अदरक, मरूआ, मैशी, बथुआ जौ का अंकुरित, निर्गन्डी रस, लौकी रस, खीरा रस, नीम की पत्ती, अरूण्ड की पत्तनी इत्यादि का प्रयोग उपचार एवम् लेप में किया जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा एवम् आयुर्वेद दोनो ही पद्धतियों में योग के आठो अंगो का महत्व पूर्ण योगदान का वर्णन आता है। क्योकि योग के चौथे महत्वपूर्ण अंग प्राणायाम का दोनो ही पद्धतियों में वायु तत्व के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह तत्व जीवनदायी श्वास का मूल रूप है। हम खाने अथवा पानी के बिना कुछ घण्टे अथवा दिनों तक भी रह सकते है परन्तु वायु तत्व के बिना कुछ घण्टो तक जीवित रहना लगभग असम्भव है। इसी तत्व का एक और मनुष्य घटक मालिश (मर्दन) है। जो दोनो ही चिकित्सा पद्धतियों का मांसपेशियों के पोषण एवम् सुगठित करने के लिए रक्त संचार बढ़ाने के लिए तथा जमे हुये विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने के लिए मुख्य उपचार विधि के रूप में प्रयोग किया जाता है।

आयुर्वेद चिकित्सा में लन्धन तथा प्राकृतिक चिकित्सा में उपवास करना बहुत सारे असाध्य समझे जाने वाले रोगो में नीव के पत्थर की भांति महत्वपूर्ण सिद्धि हुआ है। योग और आयुर्वेद लगभग एक ही प्रकार के विज्ञान कहलाते है। दोनो का ही उद्देश्य रोग को मिटाना नहीं है। अपितु रोग के लक्षणों को हटाते हुये शरीर को स्वास्थ प्रदान करना है। जिससे शरीर में किसी प्रकार के विजातीय द्रव्य एकत्र न हो पाये। आयुर्वेद के एक भाग में दवाओं का प्रयोग किया जाता है। जबकि प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्तो के आधार पर किसी प्रकार की औषधियों का प्रयोग नहीं किया जाता है। आयुर्वेद शास्त्र में कभी–कभी शल्य चिकित्सा तथा चीर फाड़ आवश्यक हो जाती है तो करनी पड़ती है। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा में शल्य चिकित्सा या चीर फाड़ तो बहुत दूर की बात है। हिंसात्मक उपचार भी नहीं दिया जाता है।

आइये पंचमहाभूत तत्वों द्वारा उपचार दिये जाने के लिए आयुर्वेद चिकित्सा एवम् प्राकृतिक चिकित्सा में विभिन्न अंगो पर इन तत्वों का क्या प्रभाव पड़ता है। तथा क्या गुण व कार्य शरीर के विभिन्न कर्मइन्द्रियों पर पड़ता है। इसका अध्ययन करने के लिए पंचमहाभूत का अध्ययन करते है।

पंचमहाभूत– आयुर्वेद के अनुसार जीवन में सब कुछ पांचमहाभूत से बना है। ये पांच महाभूत है आकाश, पृथ्वी, अग्नि, जल तथा वायु। सर्वव्यापक रूप से ये तत्व विविध प्रकार

से विभिन्न अनुपातों में मिश्रित है जिससे हर एक पदार्थ एक दूसरे से भिन्न है। यद्यपि हर तत्व की अपनी विशेषताएं व प्रकृति है जिसमें से कुछ किसी विशेष परिस्थिति में ही प्रकट होती है। ये तत्व निरंतर परिवर्तनशील है तथा एक दूसरे को प्रभावित करते रहते है, ये निरंतर परिवर्तन की स्थिति उत्पन्न करते रहते है, जो संसार को चलायमान रखता है।

एक साधारण जीवित कोशिका में पृथ्वी तत्व की प्रधानता है, जो कि कोशिका को आधार प्रदान करता है। जीव द्रव्य में उपस्थित जल तत्व या कोशिका झिल्ली में उपस्थित जल वनस्पति व प्राणियों के जीवन का आधार है। अग्नि तत्व चयापचयी प्रणाली को नियंत्रित करता है जबकि वायु तत्व कोशिका में उपस्थित गैसों को नियंत्रित करता है। उत्तक में जो भरा हुआ आकाश है वह आखिरी तत्व को बतलाता है।

डदाहरण के लिए एक बहुकोशिकीय जटिल सरंचना वाले जीव मनुष्य में आकाश शरीर में उपस्थित खाली स्थान (जैसे मुख, नासिका छिद्र, पेट आदि) को व्यक्त करता है, वायु (मुख्य रूप से मांसपेशियों की गति) गति को बतलाती है। अग्नि एन्जाइम्स की कार्य प्रणाली को नियंत्रित करती है (जैसे कि पाचन प्रणाली सम्बन्धी, रस प्रणाली, बुद्धिमता) जल शरीर के सभी द्रव्यों का हिस्सा है (जैसे प्लाजमा, लार, पाचक रस आदि) तथा पृथ्वी तत्व शरीर के ठोस भाग जैसे अस्थियां, दांत, मांस, केश आदि को नियंत्रित करता है।

इसलिए पंचमहाभूत आयुर्वेद में सभी प्रकार की व्याधियों के निदान व लक्षणों का पता लगाने में एक महत्वपूर्ण आधार प्रदान करते है जिसके द्वारा चिकित्सकों को बीमारियों को जानने समझने व सही बीमारी का पता लगाकर शारीरिक व मानसिक रोगो का उपचार करने में मद्द मिलती है।

पंचमहाभूत	कर्मेन्द्रिया	क्षमता	गुण	कार्य
आकाश	कान	सुनना / सुनने की शक्ति	– ये शरीर में प्राकृतिक शून्य स्थान का निर्माण करता है। – निस्वाद	कोमलता, हल्कापन तथा छिद्रिल्ता की उत्पत्ति करना
वायु	त्वचा	स्पर्श	– हल्की, साफ, शुष्क – श्वास लेना, छोड़ना, आंखों की पुतलियों का खुलना व बंद होना, जोड़ो का सिकुड़ना व फैलना, गतिशीलता तथा अन्य प्रेरक / चालक क्रियाएं – हल्का सा खारा स्वाद	शुष्कता, हल्कापन तथा पतलेपन की उत्पत्ति
अग्नि	आंखे / नेत्र	दृश्य / दृष्टि संबंधी कार्य	– मोटी व चमकीली आंखे – शरीर का तापमान व चमक नियंत्रित रखना – कसैला स्वाद	पाचन क्रिया, परिपक्वता, तथा नेत्रज्योति बढ़ाने में सहायक
जल	जीभ	स्वाद	– ठण्डी, भारी द्रव्य – पतला, मोटा तथा प्रकृति से मीठा	– चमक को अलग करना –

			– मीठा तथा कठोर खारा या नमकीन स्वाद	विरेचक/शोधता तथा द्रव्य की तरलता को बढ़ाना – शोधक, पोषक तथा कोमलता का कार्य
पृथ्वी	नसिका	गन्ध का पता लगाना	– भारी, जड़, गठा हुआ व खुरदरा – दांत, नाखून, मांस, त्वचा, नसें व मांसपेशियां – मीठा स्वाद	– शरीर की शक्ति व मजबूती को बढ़ाना – शोधक/विरेचक, पोषक तथा पतलेपन का कार्य

सम्पूर्ण सृष्टि इन्हीं पांच मुख्य तत्वों से बनी है, पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु तथा आकाश। मनुष्य का शरीर भी इन्ही पांच तत्वों से बना है तथा शरीर में हर तत्व की एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

वायु – वायु तत्व गति प्रदान करता है। शरीर की सभी प्रकार की गतिविधियां चाहे वह ऐच्छिक हो या अनैच्छिक वायु के द्वारा नियंत्रित होती है। वायु तल हमारे विचारों व भावनाओं को भी नियंत्रित करता है इसके अतिरिक्त यह इन्द्रियों की उत्तेजना तथा प्रेरक पेशी की कार्यप्रणाली को नियंत्रित करता है। वायु का सम्बन्ध स्पर्श से तथा त्वचा से है।

अग्नि :– अग्नि तत्व शरीर के तापमान तथा चयापचय प्रक्रिया को नियंत्रित रखता है। अग्नि अस्थिबंधों, भूख/प्यास लगना, भोजन की पाचन क्रिया तथा पचे हुये भोजन को आत्मसात करने का कार्य करती है। अग्नि का सम्बन्ध दृष्टि तथा नेत्रों से है।

जल :– जल तत्व खून, आंसू, भोजन को पचाने वाले रस, पसीना, मूत्र, वीर्य, वसा, रीढ़ की हड्डी से सम्बन्धी रस आदि का संघटक है। जल का सम्बन्ध स्वाद से भी है इसलिए यह जिह्वा से भी सम्बन्धित है। पानी/जल के बिना जिह्वा बहुत सारे स्वादों का पता लगाने में असमर्थ है।

पृथ्वी :– पृथ्वी तल त्वचा, केश, नाखून, अस्थियां, मांसपेशियों आदि का मुख्य संघटक है। यह शारीरिक परिमाण के लिए उत्तरदायी है। पृथ्वी तत्व की अधिकता मोटापे का कारण बनती है जबकि इसकी अल्पता शारीरिक वनज में कमी का कारण बनती है। पृथ्वी का सम्बन्ध गंध से भी है इसलिए यह नासिका से सम्बन्धित है।

आकाश :– आकाश एक क्रियाशील तत्व है जो कि शरीर के छिद्रो में व्याप्त है जैसे कि खोपड़ी के छिद्र, कर्ण छिद्र, मुख, नासिका छिद्र, छाती सम्बन्धी जैसे फेफड़े, दिल से सम्बन्धित आकाश तत्व शरीर में रिक्त स्थान का निर्माण करते है जिससे बाकी सभी तत्व कार्य कर सकें। इसका सम्बन्ध आवाज/ध्वनि तथा सुनने की शक्ति से भी है।

शारीरिक स्वास्थ्य इन पांचो तत्वों के सही अनुपात में होने व क्रियाशील होने पर निर्भर करता है।

इन पंचमहाभूतों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि दोनों ही पद्धतियों के मनीषियों ने प्रकृति एवम् प्राकृतिक वातावरण से प्राप्त होने वाले तत्वों के द्वारा उपचार करने को प्रधानता प्रदान करते है। जिसे प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा का मूल सिद्धान्त है कि रोग मल संचय के कारण पैदा होते है ठीक इसी प्रकार आयुर्वेद भी रोगो का मूल कारण मल के कुपित होने को मानता है।

''सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ।''

प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्तों के आधार पर प्राकृतिक चिकित्सा एवम् आयुर्वेद के सम्बन्धों को निम्न प्रकार समझ सकते है।

1. सभी रोग एक है कारण व चिकित्सा भी एक है। इसको दोनों पद्धतियां ही समान रूप से स्वीकार करती है।
2. रोग का कारण कीटाणु नहीं, यदि शरीर में विजातीय द्रव्य न हो तो दोनों ही पद्धतियां मानती कि निर्मल शरीर में लाखों कीटाणु होने पर भी रोग पैदा नहीं हो सकते।
3. तीव्र रोग शत्रु नहीं मित्र होते है – यह ऊपर हम वर्णन कर चुके है कि जब शरीर में मल संचय की शुरूआत होती है। उसी वक्त प्रतिरोधक क्षमता विजातीय द्रव्य को बाहर निकालती है। तीव्र रोग के रूप में/आयुर्वेद भी आहार के ठीक से न पचने के कारण आमवात रूपी विष को बाहर निकालने के लिए तीव्र रोगो के रूप में लक्षित करता है।
4. **प्रकृति स्वंय चिकित्सक है :–** प्राकृतिक चिकित्सा का एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि प्रकृति स्वंय ही शरीरस्थ रोगों को दूर करने के लिए चिकित्सा का दायित्व निभाती है। जब मनुष्य अपव्यय का सेवन करता है, उससे शरीर में विषाक्त विजातीय तत्व उत्पन्न होते है। प्रकृति उसे बाहर फेंकने का यत्न करती है। आयुर्वेद ने भी प्रकृति के इस तथ्य को स्वीकारा है। रोगों में जब तक आम विष निकलते है तब तक उनको रोकने का प्रयास उपद्रव को जन्म देता है। ऐसा स्वीकारा है अतिसार, वमन, रक्तपित्त, रक्तार्श में जब तक आम रूप दोष और मल निकलते रहते है तब तक उन्हे रोकना निषेध है फिर भी आयुर्वेद प्रकृति को सहयोग करते हुये अत्यधिक अवस्था में औषध प्रयोग में कोई दोष नहीं मानता।
5. **चिकित्सा रोग की नहीं रोगी के पूरे शरीर की होती है :–** चिकित्सा की अन्य पद्धतियों में भिन्न–भिन्न रोगों की भिन्न–भिन्न चिकित्सा पर जोर दिया जाता है, परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में रोगी के समूचे शरीर की चिकित्सा करके उसे निरोगी बनाया जाता है।

   आयुर्वेद का भी यही मानना है कि रोग कोई भी हो वह वात, पित्त, कफ के बिना नहीं हो सकता। अतः रोगी में वात–पित्त–कफ के लक्षणों के आधार पर चिकित्सा करने पर रोगी को लाभ होता है।
6. **रोग निदान की विशेष आवश्यकता नहीं :–** प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान भिन्न–भिन्न रोगों के निदान निश्चय के जाल में पड़े बिना मल निष्कासन की चिकित्सा सभी रोगों में देता है। जब सभी रोग विजातीय द्रव्यों के संख्य से होते है तो निदान की विधियों में बहकने एवं भटकने को वह सही नहीं मानता। आयुर्वेद इस सिद्धांत से समानता रखता हुआ भी भिन्न–भिन्न रोगों में भिन्न–भिन्न निदान पूर्व रूप, लक्षण, सम्प्राप्ति, उपशय, अनुपशय का आधार लेकर रोग का निदान करने को महत्वपूर्ण

मानता है तथा रोग के अनुसार उस रोग विशेष की विशिष्ट चिकित्सा भी करता है। सभी रोगों में दोष, धातु मल आदि की विकृति के कारण भिन्न–भिन्न रोग उत्पन्न होते है। आयुर्वेद रोग का त्रिविध, षडविध उपायों से निदान करता है। इससे भी आगे उसे निदान के आधुनिक साधनों के उपयोग से भी परहेज नहीं है।

7. **जीर्ण रोग के रोगियों के आरोग्य लाभ में समय लग सकता है :–** जीर्ण रोग के रोगियों में केवल मल संचय ही अधिक नहीं होता अपितु रोगी जो विषाक्त औषधियों का सेवन कर लेता है उससे उसकी जीवनी शक्ति क्षीण हो जाती है। इसलिए जीर्ण रोगों में आरोग्य लाभ में समय लग सकता है।

आयुर्वेद का भी यह मानना है कि जीर्ण रोगों में दोष उत्तरोतर धातुओं में प्रवेश कर जाते है। जिसके कारण उनको कोष्ठ तक लाकर निकालने में समय लगता है।

8. **प्राकृतिक चिकित्सा से दबे रोग उभरते है :–** प्राकृतिक चिकित्सा विजातीय मल के विषों को शरीर से बाहर निकालती है। जब विजातीय द्रव्य बाहर निकलते है तब रोग के लक्षणों का कुछ समय के लिए बढ़ जाना स्वाभाविक है उसको प्राकृतिक चिकित्सा में रोग का उभार (Healing Crisis) कहते है।

आयुर्वेद शोधन एवं शमन दोनो प्रकार की चिकित्सा में विश्वास करता है। शमन चिकित्सा के द्वारा प्रकुपित दोषों को लंघन, दीपन, पाचन तथा औषध प्रयोग से सम अवस्था में लाकर रोग का उपचार करता है। जहां दोष धातुओं में लीन होते वहां पंचकर्म उपचारों का सहारा लेकर दोषों और मलों को बाहर निकालते है। पंचकर्म के उपचार के पूर्व स्नेहन एवं स्वेदन के द्वारा दोषों को कोष्ठ में लाकर वमन, विरेचन आदि कर्मो से सुखपूर्वक बाहर निकाला जाता है। अतः रोग उभार का आयुर्वेद में विशेष महत्व नहीं है।

9. **मन शरीर तथा आत्मा तीनों की चिकित्सा साथ–साथ :–** शरीर मन तथा आत्मा तीनों की स्वस्थ अवस्था का नाम ही पूर्ण स्वास्थ्य है। प्राकृतिक उपचार में इन तीनों की स्वास्थ्य उन्नति पर बार–बार ध्यान रखा जाता है।

आयुर्वेद में भी स्वस्थ की परिभाषा में कहा है –

समदोष : समानिग्नश्च समधातु मल–क्रियः ।
प्रसन्नात्मेन्द्रिय मन स्वस्थ इत्यभिधीयते :।

यह सूत्र स्पष्ट करता है कि स्वस्थ व्यक्ति में दोष, धातुओं, मल एवं अग्नि की समानता के साथ मन, इन्द्रिय एवं आत्मा का प्रसन्न रहना आवश्यक है इस प्रकार दोनो ही शरीर, मन और आत्मा की स्वस्थता को ही सच्चा स्वास्थ्य मानते है।

10. **प्रकृत्योपचार में उत्तेजक औषधियों के दिये जाने का प्रश्न ही नहीं :–** प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान औषधियों के प्रयोग को सही नहीं मानता क्योकि औषधियां आहार की अपेक्षा तीक्ष्ण होती है और शरीर में विजातीय तत्वों को बढ़ा सकती है। आजकल काष्ट औषधियों के प्रयोग को प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत लिया जा सकता है परन्तु वे औषधियां ताजी हो, अनुत्तेजक हो, अकेली अथवा दो तीन से अधिक मिश्रण वाली न हो।आयुर्वेद समस्त निसर्ग में औषधियों के रोग शामक स्वरूप को ढूंढ निकालने एवं उसका प्रयोग करने में विश्वास करता है।

''अमंत्रमक्षरं नास्ति नास्ति द्रव्यमनौषधम्।

अयोग्यो पुरूषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभ।"

आयुर्वेद काष्ठादि औषधियों का प्रयोग तो करता ही है इसके अतिरिक्त विष औषधियों को शोधन करके उनके उचित प्रयोग द्वारा भी रोगी को रोगमुक्त करता है। विष औषधियों का प्रयोग बड़ी सावधानी एवं सूक्ष्म मात्रा में ही करता है। आयुर्वेद यह मानता है कि जो औषध एक रोग को दबाकर या मिटाकर दूसरे रोग को उत्पन्न कर दे वह सच्ची औषध नहीं है। सच्ची औषध वही है जो रोग को बिना किसी दुष्प्रभाव के मिटावे।

इस तरह हम देखते है कि प्राकृतिक चिकित्सा एवं आयुर्वेद में यत् किंचित होते हुये भी आयुर्वेद और प्राकृतिक चिकित्सा सिद्धांत अति निकट है एवं दोनो ही एक दूसरे के पूरक है। आयुर्वेद के मतानुसार त्रिदोष, धातुयें एवं मल पंच भौतिक है। इनकी समावस्था शरीर को स्वस्थ रखती है। इनकी विषमावस्था रोगों का कारण बनती है। शरीर व मन के रूग्ण होने पर पंच भौतिक औषध–द्रव्यों से ही युक्तिपूर्वक चिकित्सा भी की जाती है। प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में भी प्रकृति में उपलब्ध मिट्टी, जल सूर्य किरण आदि युक्ति पूर्वक प्रयोग से रोगों का उपचार किया जाता है। इस आधार पर ही प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद के सिद्धान्तो से सर्वाधिक निकट है। दोनो चिकित्सा पद्धतियों में समानता होने पर भी रोग निदान के सिद्धान्तों में तथा चिकित्सा में अनेक भिन्नतायें भी है, जो दोनो पद्धतियों के मौलिक चिन्तन को स्पष्ट करती है, एवं दोनो पद्धतियों को स्वतन्त्र रूप से स्थापित करती है।

18.6 सारांश :–

इस इकाई में प्राकृतिक वातावरण में उत्पन्न हुई दो चिकित्सा पद्धतियों की समानता असामनता के विषय में विस्तृत अध्ययन किया कि प्राकृतिक चिकित्सा मूलतः दस सिद्धान्तों पर आधारित चिकित्सा पद्धति है। जबकि आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति वात, कफ और पित्त के समनवय पर आधारित है जो इनके सन्तुलन बनाये रखने का आधार प्रदान करती है। प्राकृतिक चिकित्सा के सभी दस सिद्धान्तों तथा पंचमहाभूत के पांचों तत्वों को आधार बनाते हुये इन दोनों चिकित्सा पद्धतियों का मूल्यांकन करते हुये यह जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया कि इनमें क्या समानता है तथा क्या भिन्नता पाई जाती है। मूल रूप से औषधि सेवन के अतिरिक्त इनमें समानता व एकरूपता ही पाई जाती है। दूसरा सबसे बड़ा अन्तर यह देखा गया कि आयुर्वेद चिकित्सा शल्य चिकित्सा के कारण हिंसक कहलाती है। वहीं पर प्राकृतिक चिकित्सा अहिंसक चिकित्सा प्रणाली है। फिर भी कुछ परिस्थितियों में उभार अवश्य दिखाई पड़ते है। अतः आज के मानसिक तनाव एवम् आध्यात्मिक रोगों में प्राकृतिक चिकित्सा एवम् योग का मुख्य स्थान है।

18.7 सन्दर्भ ग्रंथ

स्वस्थवृत विज्ञान – प्रो0 रामहर्ष सिंह
प्राकृतिक आर्युविज्ञान – राकेश जिन्दल
वृहद प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ0 ओ0पी0 सक्सेना

18.8 निबंधात्मक प्रश्न

प्र0–1 प्राकृतिक चिकित्सा एवम् आयुर्वेद चिकित्सा की तुलनात्मक व्याख्या कीजिए ?
प्र0–2 प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्तों का वर्णन करें ?
प्र0–3 पंचतत्वों की चिकित्सा में आवश्यकता पर प्रकाश डालिए ?